इकाई-01
ब्रिटिश संविधान

संरचना

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 ब्रिटिश संविधान के विकास के प्रमुख चरण
1.2.1 ऐंग्लो-सैक्शन काल
1.2.2 नार्मन काल
1.2.3 प्लैण्टेगैनट और लंकास्ट्रियन काल
1.2.4 ट्यूडर काल : पुनः कठोर राजतन्त्र की स्थापना
1.2.5 स्ट्रअर्ट काल
1.2.6 हैनोवर काल
1.3 ब्रिटिश संविधान के प्रमुख स्रोत
1.3.1 अधिकार पत्र
1.3.2 संसदीय अधिनियम
1.3.3 न्यायिक निर्णय
1.3.4 सामान्य विधि
1.3.5 संविधान पर टीकाएं
1.3.6 प्रथाएं और परम्पराएं
1.4 ब्रिटिश संविधान का स्वरूप
1.5 ब्रिटिश संविधान की विशेषताएं
1.5.1 विकसित संविधान
1.5.2 अलिखित संविधान
1.5.3 एकात्मक संविधान
1.5.4 विधि का शासन
1.5.5 लचीला संविधान
1.5.6 सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर
1.5.7 संसद की सर्वोच्चता
1.5.8 मिश्रित संविधान
1.5.9 संसदीय शासन प्रणाली
1.5.10 सीमित राजतन्त्र
1.5.11 अवरोध व सन्तुलन के लिए स्थान
1.5.12 द्विदलीय पद्धति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.6 ब्रिटिश संविधान का महत्त्व
1.7 ब्रिटिश संविधान की आधुनिक प्रवत्तियाँ
1.7.1 लिखित कानूनों को अपनाने की प्रवृत्ति
1.7.2 अधिकाधिक लोकतन्त्रीकरण की प्रवृत्ति
1.7.3 संसद की शक्ति का ह्रास और मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि
1.7.4 उपनिवेशवाद का पतन और राष्ट्रमण्डल में ब्रिटेन की बदलती हुई स्थिति
1.7.5 राजनीतिक दलों में सहमति की बढ़ती हुई प्रवृत्ति
1.8 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में ब्रिटिश संविधान के विकास, स्त्रोत, स्वरूप, महत्त्व और आधुनिक प्रवृत्तियों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- ब्रिटेन के अलिखित संविधान द्वारा ब्रिटिश शासन व्यवस्था की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- सिद्धान्त में राजतन्त्र और व्यवहार में लोकतन्त्र के अन्तर का विश्लेषण का अध्ययन करेंगे,
- ब्रिटिश संविधान संयोग और विवेक का शिशु के रूप में मूल्यांकन करेंगे,
- ब्रिटेन को संसदीय शासन व्यवस्था के जनक के रूप में समझ सकेंगे,
- वर्तमान में ब्रिटिश संविधान के महत्त्व की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- ब्रिटिश संविधान की आधुनिक प्रवत्तियों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

विश्व के संविधानों में ब्रिटिश संविधान का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके पीछे सदियों की संघर्ष और प्रगति की कहानी छिपी हुई है। यह प्राचीन परम्पराओं का समूह है। गत पाँच शताब्दियों से इसका विकास धारा प्रवाह हुआ है। रूस, फ्रांस की क्रान्तियों अथवा हिटलर और मुसोलिनी के उदय जैसी आकस्मिक घटनाओं ने इसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न नहीं किया है। ब्रिटेन के इस वर्तमान संविधान की नींव सदियों पुरानी है, और यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि इस प्रकार का गौरव विश्व के किसी भी अन्य संविधान को प्राप्त नहीं है। इस संविधान की जड़ें सदियों पुराने इतिहास में निहित है। इसका जो रूप आज हमारे सामने उपस्थित है, वह ब्रिटिश लोगों की राजनीतिक चेतना का परिणाम है। 1215 का मैग्ना कार्टा, 1628 के अधिकारों की याचिका, 1689 ई. के अधिकारों का बिल, ब्रिटिश संविधान के ऐसे दस्तावेज है, जिनकी कानूनी स्थिति कुछ भी नहीं थी फिर भी इन अधिकार पत्रों में मूलभूत संवैधानिक सिद्धान्त निहित हैं। इसके विकास की गाथा का सार यही है कि निरंकुश राजतन्त्र को शान्तिपूर्ण ढ़ग से वैधानिक राजतन्त्र के रूप में रूपान्तरित कर दिया गया है। इसलिए इस सन्दर्भ में ऑग तथा जिंक ने लिखा है कि– 'इंग्लैण्ड की राजनीतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं के प्रस्तर–बिन्दु राष्ट्रीय इतिहास के उस राज–मार्ग पर बिखरे हुए है जो भूतकाल में चौदह सौ वर्ष तक की लम्बाई में फैला हुआ है।' यही कारण है कि ब्रिटिश संविधान का वर्तमान सदैव अतीत की नींव पर खड़ा है। इसी कारण इस संविधान को विश्व का अनूठा संविधान कहा जाता है।

1.2 ब्रिटिश संविधान के विकास के प्रमुख चरण

ब्रिटिश संविधान क्रमिक विकास का परिणाम है। इसका निर्माण किसी संविधान सभा ने नहीं किया, वरन् राजनीतिक चेतना की सजगता के साथ–साथ इसका विकास हुआ है। यह एक विकसित संविधान है। इसने चौदह सौ वर्षों के आधार पर अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया हैं। शान्तिपूर्ण विकास ब्रिटिश संविधान की एक अनूठी विशेषता है। उसमें आकस्मिक परिवर्तन नहीं हुए है। अपितु यह संविधान विकासमय हैं। संवैधानिक विकास की दृष्टि से ब्रिटिश संविधान के इतिहास को अग्रलिखित 6 युगों में विभाजित किया जा सकता है—

1.2.1 ऐंग्लों-सैक्शन काल : सीमित राजतन्त्र की स्थापना - संवैधानिक विकास का प्रारम्भ ऐंग्लों-सैक्शन काल से समझा जा सकता है। और यहीं से ब्रिटिश संविधान की नींव पड़ी। इस युग में राजतन्त्र और स्थानीय शासन की नींव पड़ी।

1.2.2 नार्मन काल : राजकीय निरंकुशता और सबल केन्द्रीय सरकार का उदय - नार्मन देश के विलयम ऑफ नार्मण्डी ने ब्रिटेन पर विजय प्राप्त कर नार्मन राज्य की स्थापना की। नार्मनों ने ऐंग्लो-सैक्शन काल की स्थानीय संस्थाओं को समाप्त नहीं किया, अपितु उनमें आवश्यक परिवर्तन किया, जिससे केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली बन सके। चर्च को भी राजकीय नियंत्रण में लाया गया। देश-भर में सामान्य कानून को लागू किया गया, जिससे इंग्लैण्ड में केन्द्रीकृत शासन की स्थापना हुई।

1.2.3 प्लैण्टेगैनट और लंकास्ट्रियन काल : वैधानिक संस्थाओं का उदय - नार्मन काल में स्थापित शासन व्यवस्था को हेनरी प्रथम द्वारा सुधार किया गया। शासन कार्य में कुशलता के लिए क्यूरिया रेजिस के प्रशासन और न्याय सम्बन्धी कार्यों में विभाजन कर 'प्रिवी कौंसिल' और 'एक्सचेकर' के रूप में संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ। इसी काल में सम्राट् जॉन इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा। सामन्तों ने इस अयोग्य, अदूरदर्शी और अत्याचारी शासक के अत्याचारों से दु:खी होकर उसके विरूद्ध विद्रोह कर दिया। 15 जून, 1215 ई. को रेनीमेड नामक स्थान में उसे एक अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया। यह अधिकार पत्र ही 'मैग्नाकार्टा' के नाम से विख्यात है। इस प्रकार मैग्नाकार्टा के द्वारा राजा की निरंकुशता का अंत कर मर्यादित राजतन्त्र और विधि के शासन की स्थापना हुई। मैग्नाकार्टा का संविधानवाद के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संसद का उदय—मैग्नाकार्टा में यद्यपि प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं उठाया गया, तथापि इसके बाद आँशिक रूप में यह सिद्धान्त प्रचलित हो गया। इसी के साथ-साथ आधुनिक संसद, (Modern Parliament) के बीज ब्रिटिश संविधान में दृष्टिगोचर होने लगे। सन् 1295 ई. में एडवर्ड प्रथम ने एक संसद बुलाई जिसका नाम आदर्श संसद, (Model Parliament) रखा गया। इस संसद में 572 सदस्य थे। जिसमें बैरन और क्लर्जी का संगठन 'लार्डसभा' से जाना जाने लगा। जन साधारण का संगठन 'कॉमन सभा' के नाम से जाना जाने लगा। यह संयोग ही है कि ब्रिटिश संसद में दो सदन बन गए। इस प्रकार द्विसदनात्मक संसद का प्रादुर्भाव हुआ।

WITAN	— ANGLOSAXON
GREAT COUNCIL	— NORMAN
PARLIAMENT HOUSE OF LORDS I HOUSE OF COMMONS	— TUDOR & STUART

WITAN : TREAT COUNCIL : PARLIAMENT

1.2.4 ट्यूडर काल : पुन: कठोर राजतन्त्र की स्थापना - 1485 ई. में हेनरी ट्यूडर सत्तारूढ़ हुआ। ट्यूडर सम्राट् अधिक शक्तिशाली और योग्य थे। ट्यूडर सम्राटों ने देश में निरपेक्ष राजतन्त्र की स्थापना की। इस वंश के शासन काल में संसद की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। जनता ने ट्यूडर शासकों की निरंकुशता को प्रसन्नतापूर्वक इसलिए स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने देश में सुख, शांति और समृद्धि की स्थापना की। साथ ही उनके शासन में राजकीय शक्ति पोप के नियन्त्रण से मुक्त हो गयी।

1.2.5 स्टूअर्ट काल : लोकतन्त्र की आधारशिला की स्थापना - स्टूअर्ट राजाओं ने 1603 से 1714 ई. तक राज्य किया। इस अवधि में राजा और संसद एक-दूसरे के विरोधी थे। ब्रिटेन में यह माँग की जाने लगी कि राजाओं की शक्ति को मर्यादित कर ब्रिटेन में वैधानिक राजतन्त्र स्थापित किया जाए। स्टूअर्ट काल में बहुत कुछ संसदीय लोकतन्त्र की आधारशिला रख दी गई। इसी अवधि में सन् 1688 ई. की गौरवपूर्ण क्रान्ति के बाद ब्रिटेन में निरंकुश राज्य समाप्त हो गया और संसद की प्रभुता स्थापित हो गई। राजा को कानून के अधीन कर दिया गया। इस काल में हुए निम्नलिखित संवैधानिक उपबन्ध उल्लेखनीय हैं-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अधिकार पत्र, 1689 – इस अधिकार पत्र में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बातें सम्मिलित की गई-

- संसद की पूर्व–स्वीकृति के बिना राजा कोई नवीन कर नहीं लगा सकता,
- राजा को वर्ष में कम से कम एक बार संसद की बैठक बुलानी पड़ेगी,
- संसद की पूर्व–स्वीकृति के बिना राजा कोई सेना नहीं रख सकता,
- संसद में जनता के प्रतिनिधियों को भाषण की स्वतन्त्रता प्राप्त होगी।

1.2.6 हैनोवर काल : संसदीय जनतन्त्र का विकास – हैनोवर वंश के शासन काल में संसद की सर्वोच्चता स्थापित हो गई। यहीं से संसदीय लोकतन्त्र का विकास प्रारम्भ हुआ, जिसने बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक पूर्णता प्राप्त कर ली। अत: संसदीय जनतन्त्र विकास के विविध चरणों को निम्न रूपों में सम्मिलित किया जा सकता है—

1. राजा की वास्तविक शक्तियों का पतन – राजपद पर संसद की सर्वोच्चता तो 1689 ई. के अधिकार–पत्र से ही स्थापित हो गयी थी, किन्तु हैनोवर वंश के सिंहासनारूढ़ होने के पहले तक राजा का मन्त्रियों की नियुक्ति और पदच्युति में पर्याप्त हाथ रहता था। हैनोवर काल से राजा के इस अधिकार का पतन होता गया और ये अधिकार संसद में केन्द्रित हो गये।

2. प्रधानमंत्री व मन्त्रीमण्डलीय प्रणाली का विकास – हैनोवर काल से पूर्व तक मन्त्रीमण्डलीय बैठकों की अध्यक्षता सम्राट् ही करता था। जार्ज राजा अंग्रेजी नहीं जानते थे, अत: उन्होंने मन्त्रीमण्डल की बैठकों में भाग लेना बन्द कर दिया। सम्राट ने ह्विंग पार्टी के नेता सर राबर्ट वाल्पोल को केबिनेट की अध्यक्षता का कर्त्तव्य सौंपा बाद में उसे प्रधानमंत्री कहा जाने लगा।

3. लोकसदन का लोकतन्त्रीकरण – यद्यपि 17वीं सदी में ही संसद ने सर्वोच्चता प्राप्त कर ली थी, किन्तु अब भी वह पर्याप्त शक्तिशाली नहीं हो पायी थी, क्योंकि वह जनता के अत्यन्त छोटे भाग का प्रतिनिधित्व करती थी अत: सन् 1832 ई. के सुधार कानून द्वारा मताधिकार का विस्तार हुआ। 1867 ई. के सुधार कानून द्वारा मजदूरों को भी मताधिकार प्रदान किया गया। सन् 1928 ई. में वयस्क मताधिकार का प्रचलन हुआ। इस प्रकार विभिन्न अधिनियमों द्वारा कॉमनसभा का लोकतन्त्रीकरण हुआ।

4. लार्ड सभा की शक्तियों का पतन – 18वीं सदी तक लोकसदन पर लॉर्ड सभा का प्रभुत्व था किन्तु ज्यों–ज्यों कॉमनसभा का लोकतन्त्रीकरण होता गया, लॉर्डसभा के अधिकारों में कमी आती गई। लार्डसभा वंशानुगत संस्था होने के कारण राष्ट्र का दर्पण नहीं हो सकती थी। 1832 ई. का सुधार अधिनियम लॉर्डसभा की इच्छा के विरूद्ध पारित हुआ था और इसी समय से लॉर्डसभा की शक्तियां कम होनी प्रारम्भ हो गयी। 1911 और 1949 ई. के संसदीय अधिनियमों द्वारा उसकी शक्तियाँ कम कर दी गई।

1.3 ब्रिटिश संविधान के स्त्रोत

इंग्लैण्ड में संविधान बनाने के लिए कभी कोई संविधान सभा नहीं बुलाई गयी, बल्कि संविधान का विकास अनेक स्त्रोतों से हुआ है। इस सन्दर्भ में मुनरो ने कहा 'ब्रिटिश संविधान का एक प्रलेख नहीं है, सैंकड़ों प्रलेख है, वह एक स्त्रोत से नहीं, बल्कि अनेक स्त्रोतों से निकाला गया है।' ब्रिटिश संविधान अनेक परम्पराओं, परिनियमों, न्यायिक निर्णयों आदि से मिलकर बना है। इन्हें ही संविधान के तत्त्व एवं स्त्रोत कहा जाता है। ये तत्त्व प्रधानत: निम्नलिखित है:–

- अधिकार पत्र
- संसदीय अधिनियम
- न्यायिक निर्णय
- सामान्य विधि
- टीकाएँ
- परम्पराएँ

1.3.1 अधिकार पत्र – ये वे ऐतिहासिक समझौते हैं जो संकटकाल में राजा और प्रजा के बीच निश्चित हुए थे। जब राजाओं ने अपनी शक्ति का दुरूपयोग किया तो जनता की ओर से अपने अधिकारों की रक्षा के लिए आन्दोलन किए गए जिसके फलस्वरूप राजाओं व प्रजा के बीच अनेक समझौते हुए जिनमें राजा की शक्ति तथा प्रजा के अधिकारों को परिभाषित करने का प्रयास किया गया। वास्तव में ये समझौते वे संवैधानिक सीमा–चिह्न है, जिनके माध्यम से इंग्लैण्ड का लोकतन्त्रीकरण होने में सहायता मिली है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ब्रिटिश संवैधानिक समझौतों में 1215 ई. का मैग्नाकार्टा, 1628 ई. का अधिकार याचिका पत्र और 1689 ई. का अधिकार पत्र सबसे प्रमुख है। इन्हें ब्रिटिश संविधान की 'बाइबिल' कहा जाता है।

1.3.2 संसदीय अधिनियम – ब्रिटिश संविधान यद्यपि एक अलिखित संविधान है, लेकिन अलिखित संविधानों में भी कानूनों का अंश होता है और संसदीय अधिनियम ब्रिटिश संविधान का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। ये वे स्त्रोत है जिनके द्वारा संसद ने समय–समय पर राजा की शक्ति को नियन्त्रित किया है। इन ससंदीय विधियों में कुछ प्रमुख ये है – बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम 1679, समझौता अधिनियम 1701, स्कॉटलैण्ड के मिलने का अधिनियम 1737, 1832, 1867, 1884, के सुधार अधिनियम, 1911 और 1949 के संसदीय अधिनियम आदि।

1.3.3 न्यायिक निर्णय – ब्रिटिश संवैधानिक नियमों का तीसरा स्रोत न्यायालयों में सुने जाने वाले अभियोगों के सम्बन्ध में न्यायाधीशों के निर्णय हैं। ब्रिटिश संविधान में यद्यपि अमरीकी संविधान की भांति 'न्यायिक पुनरावलोकन' की व्यवस्था नहीं है, लेकिन न्यायालयों ने संविधान के विकास में पर्याप्त योगदान दिया है। उदाहरणत: संसदीय विधि की सर्वोच्चता के सिद्धान्त का वैधानिक स्रोत न्यायिक निर्णय हैं। इसी कारण डायसी ने कहा कि– ''ब्रिटिश संविधान न्यायाधीशों द्वारा निर्मित है।''

1.3.4 सामान्य विधि – सामान्य विधि से तात्पर्य उन वैधानिक नियमों से हैं, जिनका निर्माण संसद अथवा सम्राट द्वारा नहीं हुआ है, वरन् जो रीति–रिवाज और परम्पराओं पर आधारित है और जिन्हें न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। मुनरो के शब्दों में– ''उन नियमों का समूह है जिनका संसद–विधि से पृथक विकास हुआ और अन्तत: जिन्हें सारे राज्य में मान्यता मिली।''

1.3.5 संविधान पर टीकाएं – संविधान पर लिखी गयी टीकाओं को भी संविधान का एक स्त्रोत समझा जाता है, क्योंकि कोई महत्त्वपूर्ण संवैधानिक समस्या उपस्थित होने पर संसद, न्यायालय और सभी सम्बद्ध पक्ष इन टीकाओं का आश्रय लेते है। इनमें प्रमुख एन्सन द्वारा लिखित 'लॉ एण्ड कस्टम ऑफ दि कॉन्स्टीट्यूशन,' बेजहॉट द्वारा लिखित 'इंगलिश कॉन्स्टीट्यूशन' एवं डायसी द्वारा लिखित 'संविधान की विधि' है।

1.3.6 प्रथाएं और परम्पराएं – ब्रिटिश संविधान का सबसे महत्त्वपूर्ण स्त्रोत रूढ़ियाँ, प्रथाएँ या परिपाटियाँ है, जिन्होंने संविधान की कार्य–विधि को बहुत अधिक प्रभावित किया है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण होगा कि इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था संवैधानिक अभिसमयों पर ही आधारित है। इन्हें संविधान की आत्मा कहा जा सकता है। परम्पराएँ अलिखित होती हैं किन्तु इन्हें लिखित कानूनों के समान ही मान्यता प्राप्त होती है। ब्रिटिश संविधान की प्रमुख परम्पराएँ निम्नलिखित है–

- सम्राट् मन्त्रिमण्डल बैठक की अध्यक्षता नहीं करेगा।
- कॉमन सभा में बहुमत दल का नेता प्रधानमंत्री होगा।
- कॉमन सभा का अध्यक्ष अपने चुनाव के बाद राजनीति से अवकाश ले लेगा।
- मन्त्रिमण्डल अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होगा।

1.4 ब्रिटिश संविधान का स्वरूप

ब्रिटिश संविधान का स्वरूप अनूठा है। इस संविधान को भारत या संयुक्त राज्य अमरीका की भांति निर्मित संविधान नहीं कहा जाता है। यह संविधान अलिखित है जबकि अन्य सभी देशों के संविधान लिखित हैं। इंग्लैण्ड का संविधान एक लिखित प्रलेख के रूप में नहीं पाया जाता, वह अनेक रीति–रिवाजों तथा परम्पराओं द्वारा निर्मित है। ब्रिटिश नागरिक अपने अलिखित संविधान के प्रति वैसी ही आस्था रखते हैं, जैसी अन्य देशों के लोग अपने लिखित संविधानों के प्रति। ब्रिटिश संविधान किसी विशेष समय, किसी संविधान सभा द्वारा नहीं बनाया गया। उसका क्रमिक विकास हुआ है। इसलिए इस संविधान को ''संयोग और विवेक का शिशु'' कहा जाता है।

1.5 ब्रिटिश संविधान की विशेषताएँ

ब्रिटिश संविधान विश्व का सबसे प्राचीन और एकमात्र अलिखित संविधान है। आज के अधिकांश संविधान बहुत कुछ ब्रिटिश संविधान के ही प्रक्षिप्त अंश है। ब्रिटिश संविधान की विशेषताओं का उल्लेख अग्र रूपों में किया जा सकता है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.5.1 विकसित संविधान – ब्रिटिश संविधान एक विकसित संविधान है। अमेरिका या भारत के संविधानों की तरह इसका निर्माण निश्चित व्यक्ति समूह या संविधान सभा द्वारा नहीं हुआ बल्कि यह क्रमिक विकास का परिणाम है। इसने अपना वर्तमान स्वरूप युगों के विकास के बाद प्राप्त किया है। यह समय और संयोग की सन्तान है। जिस प्रकार कीचड़ में से एक सुन्दर कमल खिलता है, उसी प्रकार निरंकुश राजतन्त्र में से ब्रिटेन में एक प्रजातन्त्र विकसित हुआ है।

ब्रिटेन में 9वीं शताब्दी में राजतन्त्र की स्थापना हुई, 16वीं शताब्दी में संसद का विधिवत् चलन प्रारम्भ हुआ, 17वीं शताब्दी में संसदीय प्रभुसत्ता स्थापित हुई और तत्पश्चात् सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का निरन्तर लोकतन्त्रीकरण होता गया। इस प्रकार ब्रिटिश संविधान को हम एक ऐसा विशाल भवन कह सकते हैं जिसके विभिन्न भाग अलग-अलग पीढ़ियों के प्रयत्नों का परिणाम है। अत: ब्रिटिश संविधान बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढ़ालते हुए और अपने स्वरूप में परिवर्तन करते हुए निरन्तर प्रगतिशील रहा हैं।

1.5.2 अलिखित संविधान – वर्तमान समय में विश्व में ब्रिटेन ही एक ऐसा देश है जिसका संविधान अलिखित है। अंग्रेज लोग सिद्धान्तवादी कम और व्यवहारवादी अधिक होते हैं और इसी कारण उनमें अपने संविधान को लिपिबद्ध करने के प्रति सदैव अनिच्छा रही है। इसलिए बहुत से लोग ब्रिटिश संविधान को अलिखित ही मानते है। यह अलिखित इस अर्थ में भी है कि कभी भी यह 'संविधान सभा' द्वारा नहीं बनाया गया और इसके अनुच्छेद नहीं लिखे गए है। इसी कारण डी. टॉकविल ने कहा है- ''इंग्लैण्ड में संविधान जैसी कोई चीज नहीं है।''

1.5.3 एकात्मक संविधान – ब्रिटिश संविधान एकात्मक है। शासन की समस्त शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार में निहित है। सारे देश का शासन एक ही स्थान-देश की राजधानी से संचालित होता है। सम्पूर्ण देश के लिए एक ही कार्यपालिका, एक ही व्यवस्थापिका और एक ही न्यायपालिका है। यद्यपि प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से केन्द्रीय सरकार के द्वारा स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों की स्थापना की गयी और इन स्थानीय इकाइयों को पर्याप्त शक्तियाँ भी प्राप्त है, लेकिन शासन-व्यवस्था एकात्मक होने के कारण इन स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों को अपना अस्तित्व और शक्तियाँ संविधान से नहीं, वरन् केन्द्र सरकार से प्राप्त होती है और स्वाभाविक रूप से उनका अस्तित्व उसकी इच्छा पर निर्भर करता हैं।

1.5.4 विधि का शासन – यह ब्रिटिश संविधान का मूलभूत सिद्धान्त है। ''विधि के शासन'' का आशय यह है कि इंग्लैण्ड के शासन का संचालन किन्हीं विशेष व्यक्तियों द्वारा नहीं, वरन् विधि के द्वारा ही किया जाता है, जिस पर अंग्रेज बहुत अधिक गर्व करते हैं। डायसी ने विधि के शासन को लक्ष्य करते हुए कहा है कि- ''विधि के शासन के अनुसार प्रत्येक सरकारी कर्मचारी, प्रधानमंत्री से लेकर एक सामान्य सिपाही और कर संग्रह करने वाले अधिकारी तक, अपने अवैध कार्यों के लिए देश के कानून के प्रति उसी प्रकार से उत्तरदायी हैं जैसे कोई अन्य सामान्य नागरिक।'' अत: ब्रिटिश संविधान में विधि का शासन नागरिकों की स्वतन्त्रता का महान् प्रतीक है, जिसे ब्रिटिश जनता ने शताब्दियों के संघर्ष के उपरान्त प्राप्त किया है।

1.5.4.1 लचीला संविधान

ब्रिटिश संविधान विश्व का सबसे अधिक लचीला संविधान है। इसमें संवैधानिक कानून और साधारण कानून में कोई अन्तर नहीं किया गया है। संसद संवैधानिक कानून को उसी प्रक्रिया द्वारा निर्मित एवं संशोधित कर सकती है जिस तरह से साधारण कानून को इस दृष्टि से ब्रिटिश संविधान अमेरीका जैसे कठोर संविधानों से भिन्न है। लचीला होने के कारण ब्रिटिश संविधान में यह विशेषता है कि अवसर आने पर परिस्थितियों के अनुकूल इसमें सुगमता और शीघ्रता से परिवर्तन हो सकता है।

1.5.6 सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर – ऑग और जिंक ने कहा है कि ''सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर सभी संविधानों में पर्याप्त रूप से पाया जाता है परन्तु जिस मात्रा में यह ब्रिटिश शासन व्यवस्था का ताना-बाना बन गया है वैसा अन्यत्र किसी शासन व्यवस्था में नहीं।'' ब्रिटिश संविधान की यह अद्भूत विशेषता है कि जैसा दिखाई देता है वैसा है नहीं, और जैसा है वैसा दिखाई नहीं देता। ब्रिटिश संविधान के सिद्धान्त और व्यवहार का यह अन्तर किसी एक क्षेत्र में नहीं, बल्कि निम्नलिखित क्षेत्रों में दिखाई देता हैं:-

1. सिद्धान्तत: इंग्लैण्ड में निरंकुश राजतन्त्र है। संवैधानिक दृष्टि से ब्रिटिश सम्राट सर्वोपरि है। उसी में सम्पूर्ण शक्ति निहित है। प्रशासन का सम्पूर्ण कार्य सम्प्रभु के नाम से होता है। सम्राट् ही जल, थल और वायु सेना का स्वामी है। परन्तु व्यवहार में, सम्राट् इन शक्तियों का उपयोग नहीं करता। उसकी समस्त शक्तियाँ संसद के हाथों में आ गई है। राजा मन्त्रिमण्डल के हाथ की कठपुतली है। राजा केवल शक्ति का प्रतीक है, वास्तविक शक्ति उसके हाथ से निकल चुकी है। वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल में केन्द्रित हो गई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. सिद्धान्ततः संसद सर्वोच्च है, किन्तु व्यवहार में संसद मन्त्रिमण्डल के हाथ की कठपुतली है। मन्त्रिमण्डल इस बात को निर्धारित करता है कि कौन–कौन सी विधियाँ पारित की जायेंगी, कौन–कौन से संशोधन किये जायेंगे और कौन–कौन सी संन्धियाँ की जायेंगी। यही कारण है कि मन्त्रिमण्डल संसद पर छाया रहता हैं।

3. ब्रिटिश शासन व्यवस्था में सिद्धान्त रूप में शक्ति का पृथक्करण सिद्धान्त विद्यमान हैं। वहाँ विधायी शक्ति संसद में, कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल में और न्यायिक शक्ति न्यायालय में है, जबकि वास्तव में वहाँ शासन की शक्ति पूर्णतः केन्द्रीयभूत हैं। ब्रिटिश संविधान शक्ति पृथक्करण को पूरी तरह मान्यता नहीं देता है। रैम्जेम्योर के अनुसार वहाँ व्यवस्थापिका व कार्यपालिका शक्तियों का मिश्रण है।

1.5.7 संसद की सर्वोच्चता – ब्रिटिश संसद संवैधानिक व्यवस्था की केन्द्र है। संसद की विधि निर्माण करने की शक्ति असीम हैं। उसकी विधायी क्षमता पर कोई संवैधानिक सीमायें नहीं है। संसद जो भी कानून बना देती है, वह अंतिम है, उसे सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। ब्रिटिश संसद की इस असीम शक्ति को लक्ष्य करते हुए डी. लोम्बे ने लिखा है,– ''संसद स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के अतिरिक्त अन्य सब कुछ कर सकती है।''

1.5.8 मिश्रित संविधान – ब्रिटिश संविधान वस्तुतः एक मिश्रित संविधान हैं। इसमें राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और प्रजातन्त्र के तत्त्व निहित है। राजतन्त्र के प्रतीक के रूप में ब्रिटेन का सम्राट् है जिसके द्वारा उत्तराधिकार के आधार पर अपना पद प्राप्त किया जाता है। लॉर्ड सभा कुलीनतन्त्रीय संस्था है जिसके अधिकांश सदस्य कुलीन वर्ग में से आते हैं। लोकसदन लोकतन्त्रीय संस्थाओं का प्रतीक है।

1.5.9 संसदीय शासन प्रणाली – ब्रिटेन संसदात्मक शासन प्रणाली का घर है। संसदात्मक शासन के तीनों ही लक्षण (दोहरी कार्यपालिका व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में घनिष्ठ सम्बन्ध तथा कार्यपालिका के कार्यकाल की अनिश्चितता) ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत पूर्ण अंशों में विद्यमान हैं।

ब्रिटिश सम्राट कार्यपालिका का नाममात्र का प्रधान है और प्रधानमंत्री तथा केबिनेट कार्यपालिका की वास्तविक शक्ति की प्रतीक है। इंग्लैण्ड में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्यवस्थापिका अर्थात् संसद में जिस दल का बहुमत होता है उसी दल की सरकार बनती है और वह तब तक कार्य करती रहती है, जब तक संसद का विश्वास रहता है। संसद का विश्वास खो देने पर उसे त्यागपत्र दे देना होता है। कार्यपालिका व्यवस्थापिका में से चुनी जाती है।

1.5.10 सीमित राजतन्त्र – बीसवीं शताब्दी, लोकतन्त्र की शताब्दी है। फिर भी लोकतन्त्र की जननी, संसदों की जननी, ब्रिटेन में राजतन्त्र एक जीवित वास्तविकता है। इसका कारण यह है कि ब्रिटिश लोग स्वभाव से रूढ़िवादी है, क्रान्तिकारी नहीं। वे प्राचीन संस्थाओं में सुधार करना चाहते हैं, उन्हें समाप्त करना नहीं चाहते। वर्तमान समय में ब्रिटेन में सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं करता। शासन तो मन्त्रिमण्डल करता है।

1.5.11 अवरोध व सन्तुलन के लिए स्थान – इंग्लैण्ड का संविधान अवरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त पर आधारित है। वहाँ किसी भी शक्ति को पूर्ण अधिकार नहीं है, वरन् प्रत्येक शक्ति पर दूसरी शक्ति का नियन्त्रण है। संसद के दोनों सदन कोई भी नियम पारित कर सकते हैं, परन्तु उसके लागू होने के लिए सम्राट की स्वीकृति आवश्यक है। इसी प्रकार सम्राट की कोई भी आज्ञा तब तक मान्य नहीं होगी जब तक उस पर किसी मंत्री के हस्ताक्षर नहीं हो जाते। इसी तरह जहाँ मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है, वहाँ प्रधानमंत्री को अधिकार है कि वह सम्राट से कहकर लोकसभा भंग करा दे। इस प्रकार शासन के प्रत्येक अंग पर दूसरे अंग का किसी न किसी रूप में नियन्त्रण है।

1.5.12 द्विदलीय पद्धति – ब्रिटेन में राजनीतिक दलों के संगठन की स्वतन्त्रता है, किन्तु व्यवहार में पिछली लगभग तीन शताब्दियों से ब्रिटिश राजनीति में लगभग दो ही राजनीतिक दलों की प्रमुखता रही है। ब्रिटेन के दो प्रमुख दल हैं : अनुदार और मजदूर दल। द्विदलीय पद्धति के कारण ही ब्रिटेन में एक ही राजनीतिक दल की सरकार का निर्माण होता है और वह राजनीतिक स्थायित्व प्रदान करती हैं। उदारदल का अस्तित्व तो है, परन्तु उक्त दो दलों के सामने उसका गौण महत्व है। अब तक अनुदार दल तथा मजदूर दल ही सरकार का गठन करते रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.6 ब्रिटिश संविधान का महत्त्व

संविधानों की दुनिया में ब्रिटिश संविधान का ही अत्यधिक महत्त्व है। मुनरो ने लिखा है – ''ब्रिटिश संविधान संविधानों का जनक है और ब्रिटिश संसद संसदों की जननी है। अन्य देशों की विधान सभाओं की चाहे कोई भी संज्ञा हो, पर उनका उद्‌गम स्रोत एक ही है।'' एशिया, अफ्रीका आदि दूरस्थ प्रदेशों में फैले ब्रिटेन के उपनिवेशों के सम्बन्धों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था पर तथा ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था का प्रभाव उन उपनिवेशों की व्यवस्था पर सदैव पड़ता रहा है। इसके अतिरिक्त जहाँ–जहाँ ब्रिटेन का साम्राज्य रहा है और बाद में यदि वहाँ के लोगों को स्वतन्त्रता मिली तो वहाँ प्राय: ब्रिटिश पद्धति पर आधारित संसदीय शासन प्रणाली को ही अपनाया गया है। यही कारण है कि ब्रिटिश संविधान को 'मातृ संविधान' कहा जाता है।

1.7 ब्रिटिश संविधान की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

ब्रिटेन के लॉर्ड हेलशम ने 14 अक्टूबर, 1976 को रिचर्ड डिब्लबी व्याख्यान में ब्रिटिश संविधान की आधुनिक सन्दर्भ में जो मूल्यांकन किया वह पढ़ने और समझने योग्य है। अपने भाषण में लॉर्ड हेलशम ने ब्रिटिश संविधान की कमजोरियों और उन्हें दूर करने के उपायों पर प्रकाश डाला और यह विचार प्रकट किया कि अब– ''समय आ गया है कि संविधान लिखा रहे।'' यह सत्य है कि ब्रिटिश शासन व्यवस्था में कुछ आधुनिक प्रवृत्तियाँ शासन के स्वरूप को बदल रही है। ये मुख्यत: इस प्रकार है:–

1.7.1 लिखित कानूनों को अपनाने की प्रवृत्ति – ब्रिटिश संविधान मुख्यत: अलिखित है, किन्तु अब इसमें परिवर्तन करने के लिए अधिकांशत: लिखित कानूनों का सहारा लेने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। सन् 1911 और 1949 के संसदीय अधिनियम, सन् 1948 का जनप्रतिनिधित्व अधिनियम। ये सब अधिनियम ब्रिटिश संविधान के लिखित स्वरूप की ओर इंगित करते हैं।

1.7.2 अधिकाधिक लोकतन्त्रीकरण की प्रवृत्ति – ब्रिटिश शासन व्यवस्था में लोकतन्त्र का निरन्तर विकास हुआ है और गत कुछ शताब्दियों में लोकतन्त्रीकरण की प्रवृत्ति को विशेष स्थान मिला है। उदाहरणार्थ सन् 1949 ई. में लॉर्ड–सभा की शक्तियों को एकदम कम कर दिया गया, सन् 1948 में लोकसभा में विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधित्व समाप्त कर दिया गया और स्त्रियों को लॉर्ड–सभा की सदस्यता का अधिकार दिया गया। अब यह विचार बल पकड़ता जा रहा है कि लॉर्ड सभा की शक्तियों को और कम कर दिया जाए और उसकी सदस्यता का आधार आनुवंशिकता न होकर वैयक्तिक गुण हों।

1.7.3 संसद की शक्ति का ह्रास और मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि – ब्रिटिश संविधान की यह एक प्रमुख आधुनिक प्रवृत्ति है कि संसद् की शक्ति का पतन हो रहा है और मन्त्रिमण्डलीय शक्ति में निरन्तर वृद्धि हो रही है। मन्त्रिमण्डल देश की वास्तविक प्रशासनिक और विधायिनी शक्ति का प्रयोग करने लगा है जिससे अब उसकी निरंकुशता अधिक यथार्थ दिखलाई देती है।

1.7.4 उपनिवेशवाद का पतन और राष्ट्रमण्डल में ब्रिटेन की बदलती हुई स्थिति – ब्रिटिश उपनिवेशों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विकास हुआ और लगभग उपनिवेश देश स्वतन्त्र हो गए हैं। राष्ट्रमण्डल के सम्बन्ध में सन् 1930 तक इसमें ब्रिटेन का पूर्ण प्रभुत्व था और सन् 1948 तक इसका नाम 'ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल' था, लेकिन सन् 1949 ई. में भारत और पाकिस्तान, घाना आदि गणतन्त्रों को इसकी सदस्यता प्रदान की गई और इसका नाम केवल 'राष्ट्रमण्डल' कर दिया गया। राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष यद्यपि ब्रिटिश सम्राट् है, किन्तु यह नाम मात्र का प्रधान है और राष्ट्रमण्डल में ब्रिटेन की स्थिति 'समान भागीदार' की है। अब ब्रिटेन राष्ट्रमण्डल के निर्णयों को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं है।

1.7.5 राजनीतिक दलों में सहमति की बढ़ती हुई प्रवृत्ति – ब्रिटेन के दोनों प्रमुख दलों में संवैधानिक सिद्धान्त के सम्बन्ध में अधिक सहमति और निकटता बढ़ने की प्रवृत्ति हो रही है। राष्ट्रीय मुद्दों पर भी राष्ट्रीय सहमति दिखाई देती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.8 सारांश

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि – ब्रिटिश संविधान विश्व का एकमात्र अलिखित तथा अनूठा संविधान है, जिसमें राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और लोकतन्त्र का सर्वोत्तम और कल्याणकारी मिश्रण है। परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को बदल लेने की इसमें क्षमता है। इसी कारण ब्रिटेन के संवैधानिक विकास की विशिष्टता का वर्णन एन्सन ने काव्यमव शैली में किया है– ''यह संविधान विभिन्न प्रकार की भवन–निर्माण सामग्री द्वारा निर्मित एक ऐसा महल है जिसमें समय–समय पर विभिन्न मालिकों ने अपनी–अपनी आवश्यकतानुसार दालान, बरामदें, खम्भे, शयनकक्ष तथा अतिथिकक्ष आदि बना दिए हैं। इसके निर्माण में अनेकों का हाथ है।'' इसलिए इस संविधान को 21वीं शताब्दी का एक सर्वाधिक प्रजातान्त्रिक और प्रगतिशील संविधान कहा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश संविधान ''संयोग और विवेक का शिशु है। (लिस स्ट्रेची) इस कथन का विश्लेषण कीजिए।
2. ब्रिटिश संविधान की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. ''ब्रिटिश संविधान विकास का परिणाम है, निर्माण का नहीं।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
4. ''इंग्लैण्ड में संविधान नाम की कोई वस्तु नहीं है। (डी. टॉकविल) कथन की व्याख्या कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश संविधान के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
2. मैग्नाकार्टा से क्या तात्पर्य है।
3. ब्रिटिश संविधान का विकास किन–किन चरणों में हुआ?
4. ब्रिटिश संविधान के क्या स्त्रोत हैं?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. किस देश के संविधान को 'विवेक एवं संयोग की सन्तान' कहा जाता है?
2. ब्रिटेन में किस क्रान्ति को गौरव पूर्ण क्रान्ति कहा जाता है?

इकाई-02
अभिसमय

संरचना

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 अभिसमयों का अर्थ एवं परिभाषा
2.3 अभिसमयों का स्वरूप
2.4 अभिसमय और कानून में अन्तर
2.5 ब्रिटेन के अभिसमयों का वर्गीकरण
    2.5.1 राजा से सम्बन्धित अभिसमय
    2.5.2 कैबिनेट से सम्बन्धित अभिसमय
    2.5.3 संसद से सम्बन्धित अभिसमय
    2.5.4 राष्ट्रमण्डल से सम्बन्धित अभिसमय
2.6 अभिसमयों का महत्त्व
    2.6.1 अभिसमयों द्वारा ब्रिटिश संविधान के विकास में सहायता
    2.6.2 अभिसमयों द्वारा ब्रिटिश संविधान के क्रियान्वयन में योगदान
    2.6.3 शासन व्यवस्था को श्रेष्ठतम रूप प्रदान करना
    2.6.4 राष्ट्रमण्डल को सफल बनाने में सहायक
2.7 सारांश

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में अभिसमय के विकसित होने के कारण, अर्थ एवं परिभाषा, अभिसमय और कानून में अन्तर, संवैधानिक अभिसमयों का वर्गीकरण और अभिसमयों के महत्त्व का उल्लेख किया गया है। इस प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप:

- अभिसमयों के द्वारा वैधानिक कानून को अमली जामा पहनाने की प्रक्रिया को समझ सकेंगे,
- ब्रिटिश अभिसमयों द्वारा प्रथाओं और परम्पराओं के महत्त्व को समझ सकेंगे,
- अभिसमयों ने किस प्रकार ब्रिटिश शासन व्यवस्था को बदलती हुई सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल प्रगतिशील बनाए रखा – मूल्यांकन करेंगे।

2.1 प्रस्तावना

विश्व की लगभग सभी राजनीतिक व्यवस्था में अभिसमयों अथवा वैधानिक परम्पराओं का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। संविधान के लिखित या अलिखित सभी स्वरूपों में इन्होंनें उसके विकास में भारी योगदान दिया है। ब्रिटेन को तो 'अभिसमयों की शास्त्रीय भूमि' कहा जाता है। वास्तव में, ब्रिटिश संविधान के जन्म, जीवन और मरण की कहानी अभिसमयों की कहानी है। यदि ब्रिटिश संविधान से अभिसमयों को निकाल दिया जाये अथवा उनका अध्ययन न किया जाये तो वह पंगु बन जायेगा और उसका अध्ययन अपूर्ण और अव्यवहारिक होगा। इसका कारण यह है कि ब्रिटेन में अभिसमय शासन का अभिन्न अंग है। उसकी सम्पूर्ण शासन पद्धति अभिसमयों पर आधारित है। ऑग और जिंक ने कहा कि ''परम्पराएँ कानून के सूखे ढ़ाँचे पर माँस चढ़ाने का कार्य करती हैं, कानूनी संविधान को कार्यरूप देती हैं तथा उसे प्रगतिशील समाज व राजनीतिक विचारों के अनुकूल बनाए रखती हैं।'' यही कारण हैं कि ब्रिटिश शासन का हृदय अभिसमयों पर आधारित है। इन्हें अच्छी तरह समझे बिना ब्रिटिश संविधान का अध्ययन अधूरा रहेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.2 अभिसमयों का अर्थ एवं परिभाषा

अभिसमय रीति-रिवाजों, प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, आदतों, स्वभाव, समझौतों, अभ्यासों एवं चलन का ऐसा समूह है, जो शासन को सरलता एवं सुविधापूर्वक चलाने में सहायक हैं। ये परम्पराएं विधि नहीं है, इन्हें न्यायालयों द्वारा मान्यता नहीं दी जाती अर्थात् इनका उल्लंघन होने पर न्यायालय कोई दण्ड नहीं दे सकता। परन्तु ये परम्पराएँ इंग्लैण्ड के राजनीतिक जीवन में इतनी गहरी पैठ बना चुकी हैं कि उनका उतनी ही दृढ़ता से पालन होता है जितना संसद द्वारा पारित कानूनों का। विभिन्न लेखकों ने परम्पराओं की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। डायसी ने परम्पराओं को परिभाषित करते हुए लिखा हैं- "ये ढंग निर्धारित करने वाले नियम हैं, जिस ढंग से सम्राट् के स्वेच्छाचारी अधिकारों का प्रयोग किया जाना चाहिए," जे.एस.मिल इनको संविधान के 'अलिखित सूत्र' कहता हैं।

2.3 अभिसमयों का स्वरूप

संविधान का स्वरूप चाहे कैसा भी हो, सभी प्रकार के संविधानों में समय, परिस्थिति और आवश्यकतानुसार अभिसमयों का विकास होता हैं। ब्रिटिश संविधान को बहुत सीमा तक अभिसमयों पर आधारित संविधान ही कहा जा सकता हैं। वहाँ अभिसमय कानून द्वारा न सुरक्षित होते हुए भी कानून की तरह ही मान्य होते हैं। समाज में उनको मान्यता प्राप्त होती है जिससे लोग सामान्यत: उनका उल्लघंन करने का साहस नहीं करते हैं। ब्रिटेन में तो इन अभिसमयों और वैधानिक परम्पराओं पर ही शासन-विधान का अधिकांश ढाँचा निर्भर हैं। अभिसमयों के कारण ही ब्रिटिश संविधान विश्व का सबसे लचीला संविधान हैं।

2.4 अभिसमय और कानून में अन्तर

संविधान की विधियों और संविधान की परम्पराओं में सुनिश्चित विभाजन रेखा खींचना कठिन हैं। इसका कारण यह है कि दोनों ही संविधान के अभिन्न अंग हैं। ब्रिटिश नागरिक भी दोनों के प्रति समान निष्ठा रखते हैं और दोनों का समान रूप से पालन किया जाता हैं। लेकिन कानून और अभिसमयों में महत्त्वपूर्ण भेद होता हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. अभिसमय के स्रोत रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, प्रथायें, आदत और व्यवहार हैं, जबकि कानून का स्रोत व्यवस्थापिका (संसद) होती है।
2. अभिसमय, परम्पराएँ अलिखित होती हैं और कानून लिखित होते हैं।
3. अभिसमय को न्यायालय का संरक्षण प्राप्त नहीं होता अर्थात् परम्पराएँ न्यायालय द्वारा लागू नहीं की जाती हैं, जबकि कानून न्यायालय द्वारा लागू किए जाते हैं।
4. अभिसमय को निर्मित नहीं किया जाता, इसका क्रमिक विकास होता हैं। कानून को किसी व्यक्ति, सभा या संस्था द्वारा निर्मित किया जाता हैं।
5. अभिसमय का क्षेत्र समाज हैं जबकि कानूनों का क्षेत्र राज्य हैं।

वास्तव में, कानून और अभिसमय में कोई स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन हैं। दोनों ही शासन-व्यवस्था के आधारभूत तत्व हैं। दोनों का पालन समान रूप से होता हैं। दोनों अनेक बार साथ-साथ चलते हैं। मूल बात केवल यह हैं कि दोनों के पालन के आधार भिन्न-भिन्न हैं। कानून का पालन इसलिए होता हैं कि उसके पीछे राज्य की प्रभुत्व शक्ति होती है, जबकि अभिसमय का पालन इसलिए होता है कि उसके पीछे 'उपयोगिता' और 'जनमत' का बल होता हैं। ब्रिटिश लोग अभिसमयों के पालन के अभ्यस्त हो गये हैं।

2.5 ब्रिटेन के अभिसमयों का वर्गीकरण

ब्रिटेन में संवैधानिक अभिसमयों का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हैं। यहाँ ब्रिटिश संवैधानिक अभिसमयों की पूरी सूची देना सम्भव नहीं हैं। इनमें से प्रमुख अभिसमयों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता हैं :-

2.5.1 राजा से सम्बन्धित अभिसमय— समय-समय पर राजा से सम्बन्धित निम्नलिखित अभिसमय विकसित हुए हैं -

1. ब्रिटिश सम्राट् लोकसदन में बहुमत दल के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित करेगा और उसी को प्रधानमंत्री नियुक्त करेगा।
2. सम्राट् मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता नहीं करेगा।
3. सम्राट् संसद को प्रतिवर्ष एक बार अवश्य आहूत करता हैं।
4. सम्राट प्रधानमंत्री के परामर्श पर कॉमन सभा को भंग करता हैं।
5. सम्राट् संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित किए गए विधेयकों पर अपने निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.5.2 कैबिनेट से सम्बन्धित अभिसमय—ब्रिटेन में कैबिनेट भी अभिसमयों का परिणाम रही है। इसके बारे में निम्नलिखित अभिसमय पाये जाते हैं –

1. कैबिनेट सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी हैं।
2. बहुमत दल का नेता प्रधानमंत्री बनता है।
3. प्रधानमंत्री लोकसभा का सदस्य होना चाहिए, लार्डसभा का नहीं।
4. कैबिनेट की कार्यवाही और निर्णय गुप्त रखे जाते हैं।
5. किसी भी मंत्री के विरूद्ध लोकसदन में अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता हैं।
6. प्रधानमंत्री कैबिनेट का गठन करता है।

2.5.3 संसद् से सम्बन्धित अभिसमय — संसद की शक्तियों का विकास भी अभिसमयों के द्वारा हुआ है। इसके बारे में निम्नलिखित अभिसमयों का प्रचलन हैं—

1. संसद् एक सर्वोच्च संस्था हैं।
2. संसद् का अधिवेशन वर्ष में एक बार अवश्य होना चाहिए।
3. लोकसदन का अध्यक्ष निर्दलीय और निष्पक्ष होना चाहिए।
4. संसद में कानून बनने से पहले प्रत्येक विधेयक के तीन वाचन आवश्यक हैं।
5. वित्त या धन विधेयक सबसे पहले लोकसदन में शुरू किया जाए।
6. एक बार अध्यक्ष हमेशा अध्यक्ष, अर्थात् एक बार स्पीकर बनने के बाद वह उस समय तक अपने पद पर बना रह सकता हैं जिस समय तक वह बने रहना चाहता हैं।
7. लार्ड सभा जब अपील न्यायालय के रूप में कार्य करती हैं तो केवल लॉ लार्ड्स ही उसमें भाग लेते हैं।

2.5.4 राष्ट्रमण्डल से सम्बन्धित अभिसमय— राष्ट्रमण्डल के बारे में भी अनेक अभिसमय विकसित हुए हैं, जो निम्नलिखित रुप से हैं —

1. राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलनों का उद्‌घाटन ब्रिटिश सम्राज्ञी करती हैं।
2. किसी भी उपनिवेश के सम्बन्ध में संसद् तभी कानून बनाएगी, जब उपनिवेश की ओर से लिखित पत्र प्राप्त हो।
3. राष्ट्रमण्डल सम्बन्धी विषयों में राजा को अपने राष्ट्रमण्डलीय विभाग के मन्त्री से परामर्श करना चाहिए।

ब्रिटिश संविधान में अभिसमयों की संख्या बहुत अधिक हैं। साथ ही उनका महत्त्व भी बहुत ही अधिक हैं। ब्रिटेन की समूची मन्त्रीमण्डलीय शासन प्रणाली संवैधानिक परम्पराओं पर ही आधारित हैं। प्रत्येक अंग्रेज इन्हें आदर की दृष्टि से देखता हैं। इसके अतिरिक्त इन अभिसमयों का रूप प्रगतिशील है, अत: वे समय की प्रगति के साथ और लोगो के व्यवहार के अनुरूप बदलते व विकसित होते रहते हैं।

2.6 अभिसमयों का महत्त्व

ब्रिटिश संविधान में अभिसमयों का बहुत महत्त्व हैं। वस्तुस्थिति यह है कि परम्पराओं या अभिसमयों के बिना इंग्लैण्ड का संविधान क्रियान्वित ही नहीं किया जा सकता। अभिसमय संविधान को पूर्ण बनाते हैं और साथ ही व्यवहारिक भी। उनके अभाव में संविधान, समुचित रूप से क्रियाशील नहीं हो पाता। ब्रिटिश शासन विधान एक अस्थिपंजर जैसा हैं और परम्पराएँ मॉंस के समान हैं। अभिसमय संविधान को बदलती हुई सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल ढ़ालती हैं। अत: ब्रिटिश संविधान के क्रियान्वयन में परम्पराएँ महत्त्वपूर्ण योगदान करती हैं। अभिसमय 'संविधान की आत्मा' है। इसी कारण डायसी ने लिखा हैं कि– ''जो व्यक्ति ब्रिटिश संविधान का अध्ययन करना चाहता हैं उसको परम्पराओं पर उतना ही ध्यान देना चाहिए जितना संविधान की लिखित विधियों पर।'' ब्रिटिश संविधान में अभिसमयों का महत्त्व निम्नलिखित रूपों में बताया जा सकता है :–

2.6.1 अभिसमयों द्वारा ब्रिटिश संविधान के विकास में सहायता - ब्रिटिश संविधान बहुत कुछ अभिसमयों की उपज हैं। इंग्लैण्ड में लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था का प्रचलन हैं। राजतन्त्र से लोकतन्त्र का यह रूप इंग्लैण्ड को यकायक ही प्राप्त नहीं हो गया हैं,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वरन् इसके लिए उसने एक लम्बा रास्ता तय किया हैं। संविधान के इस विकास का श्रेय जहां मैग्नाकार्टा, पिटीशन ऑफ राइटस, बिल ऑफ राइटस जैसे – कुछ अधिकार पत्रों को दिया जा सकता हैं, वहां राजतन्त्र का लोकतन्त्रीयकरण अभिसमयों के द्वारा ही हुआ हैं।

सम्राट् मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता नहीं करेगा, सम्राट् लोकसदन के बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री पद प्रदान करेगा और मन्त्रिमण्डल उसी समय तक अपने पद पर रहेगा जब तक उसे लोकसदन का विश्वास प्राप्त है आदि, अभिसमय पर आधारित हैं। इस तरह कानून द्वारा नहीं बल्कि संवैधानिक अभिसमय द्वारा राजाओं के असाधारण अधिकार धीरे–धीरे संसद हाथ में आते गए। फलत: देश का निरंकुश राजतन्त्र आधुनिक लोकतन्त्रीकरण के मार्ग पर अग्रसर हुआ।

2.6.2 अभिसमयों द्वारा ब्रिटिश संविधान के क्रियान्वयन में योगदान – अभिसमय न केवल संविधान के विकास में सहायक हुए है, वरन् उसे कार्यरूप भी प्रदान करते है। ब्रिटेन में कुछ ऐसे अभिसमय है जो कानूनी सम्प्रभु और राजनीतिक सम्प्रभु के बीच सामंजस्य बनाए रखते है। राजा कानूनी सम्प्रभु है और मन्त्रिमण्डल तथा संसद् व जनता राजनीतिक सम्प्रभु है। ऐसी स्थिति में विशुद्ध कानूनी दृष्टिकोण अपनाने पर शासन के विभिन्न पक्षों में विरोध उत्पन्न हो जायेगा और अव्यवस्था फैल जायेगी। अत: ऐसी स्थिति को टालने का महान् कार्य आज केवल एक अभिसमय पर आधारित है और वह यह है कि राजा मन्त्रिमण्डल के परामर्श को मानता है और इस परम्परा के कारण ही राजनीतिक सम्प्रभु और कानूनी सम्प्रभु के बीच सामंजस्य बना हुआ है।

2.6.3 शासन व्यवस्था को श्रेष्ठतम रूप प्रदान करना – ब्रिटेन में कुछ संवैधानिक अभिसमय ऐसे है जिनसे शासन–कार्य का स्तर उत्पन्न होने में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ, यह अभिसमय है कि कानून बनने से पहले प्रत्येक विधेयक के तीन वाचन होने चाहिए। इस अभिसमय से विधेयक पर निश्चित रूप से सुधारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसी तरह एक अभिसमय यह है कि लॉर्ड सभा जब अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करें तो उसमें सिर्फ कानूनी लॉर्ड ही न्यायालय के रूप में कार्य करें। इससे न्यायिक कार्य ठीक प्रकार से सम्पादित होता है और इस बात की आशंका नहीं रहती कि अनभिज्ञ सदस्य इस कार्य को सम्पादित करेंगे।

2.6.4 राष्ट्रमण्डल को सफल बनाने में सहायक – अभिसमयों ने राष्ट्रमण्डल को लचीलापन देकर उसे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप बनाया है और अभिसमयों के आधार पर ही राष्ट्रमण्डल के सदस्यों की सम्राट् के प्रति श्रद्धा भावना को बनाये रखना सम्भव हो सका है। वर्तमान में भी इस संगठन का अस्तित्व बरकरार रहना अभिसमयों की ही देन है।

2.7 सारांश

इस प्रकार ब्रिटेन के संविधान में अभिसमयों का बहुत अधिक महत्त्व है। अभिसमयों ने संविधान को न केवल कार्यरूप प्रदान किया है बल्कि ब्रिटिश शासन व्यवस्था को श्रेष्ठतम रूप दिया है। जेनिंग्स ने ठीक ही लिखा है कि– ''अभिसमय परिवर्तित सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के अनुकूल शासन व्यवस्था को ढालते है और शासक वर्ग को शासन तन्त्र संचालित करने की योग्यता प्रदान करते हैं।''

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश संविधान में अभिसमयों से आप क्या समझते हैं ?अभिसमयों का पालन क्यों होता है ?
2. अभिसमय ''कानून के सूखे ढाँचे को मांस चढ़ाने का कार्य करते हैं'' इस कथन की दृष्टि से अभिसमयों के उपयोग एवं महत्त्व की विवेचना कीजिए।
3. इंगलैण्ड की संसदीय सरकार की कार्यप्रणाली में अभिसमयों की भूमिका का परीक्षण कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अभिसमय और विधि में क्या अन्तर है ?
2. ब्रिटिश संविधान में अभिसमयों का महत्त्व समझाइए।
3. ब्रिटेन में प्रचलित अभिसमयों का वर्गीकरण कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. किस देश के संविधान में परम्पराओं या अभिसमयों का सर्वाधिक महत्त्व है ?
2. ब्रिटिश सम्राट से संबंधित दो परम्पराएं बताइये।
3. ब्रिटेन में परम्पराओं का पालन क्यों होता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-03

राजा का पद - राजा और मुकुट

संरचना

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 राजा और राजमुकुट का अर्थ
3.3 राजा और राजमुकुट में अन्तर
3.3.1 राजमुकुट एक संस्था, राजा एक व्यक्ति
3.3.2 राजमुकुट स्थाई, राजा अस्थाई
3.3.3 राजमुकुट सामूहिक, राजा वैयक्तिक
3.3.4 राजमुकुट अमूर्त, राजा मूर्तिमान
3.3.5 राजमुकुट जन-इच्छा का प्रतीक, राजा राजतन्त्र का प्रतीक
3.4 राजा (राजमुकुट) की शक्तियाँ
3.4.1 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ
3.4.2 विधायी शक्तियाँ
3.4.3 न्यायिक शक्तियाँ
3.4.4 धार्मिक शक्तियाँ
3.4.5 उपाधि सम्बन्धी शक्तियाँ
3.5 राजा की वास्तविक स्थिति
3.5.1 राजा कोई गलती नहीं कर सकता
3.5.2 राजा राज करता है, शासन नहीं करता
3.5.3 राजा के विशेषाधिकार
3.6 राजपद का औचित्य
3.6.1 ऐतिहासिक महत्त्व की संस्था
3.6.2 राजपद का लोकतन्त्रीकरण
3.6.3 राजा की राजनैतिक निष्पक्षता
3.6.4 ब्रिटिश जाति का रूढ़िवादी स्वभाव
3.6.5 राजपद, सुरक्षा का प्रतीक
3.6.6 लोकप्रिय संस्था
3.6.7 राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक
3.6.8 अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों का विकास
3.6.9 सूचनाओं का भण्डार
3.6.10 संसदीय प्रजातन्त्र में राजपद की उपयोगी भूमिका
3.6.11 आर्थिक औचित्य
3.7 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में राजा का पद, राजा और राजामुकुट में अन्तर, राजपद का औचित्य और राजा की वास्तविक स्थिति का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप ब्रिटेन में सिद्धान्ततः निरंकुश राजतन्त्र, स्वरूप में सीमित राजतन्त्र और व्यवहार में लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करेंगे :

- ब्रिटेन में राजा के पद की प्रतिष्ठा को समझ सकेंगे,
- राजतन्त्र के लोकतन्त्रीकरण के सूत्रों को जान पायेंगे,
- राजा और राजमुकुट के अन्तर को समझने से आपको ब्रिटिश संविधान के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में पाए जाने वाले अन्तर की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- राजपद का वर्तमान में औचित्य को समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

ब्रिटेन में संसदीय शासन व्यवस्था का प्रचलन है। इस शासन व्यवस्था में कार्यपालिका के दो प्रधान होते हैं – औपचारिक प्रधान और वास्तविक प्रधान। ब्रिटेन में सम्राट कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है जिसके पास अब वास्तविक शक्तियाँ नहीं रही है। वास्तविक शक्तियों का प्रयोग अब प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। व्यावहारिक स्थिति यही है, वैसे सैद्धान्तिक रूप में मन्त्रिमण्डल को सम्राट की तुलना में गौण स्थिति प्राप्त है। ब्रिटेन में राजा का पद अत्यन्त प्राचीन है और इतिहास के विभिन्न चरणों के संवैधानिक विकास के फलस्वरूप इस पद की स्थिति में जितना परिवर्तन हुआ है, उतना अन्य किसी पद में नहीं हुआ है। वर्तमान में राजा वास्तविक शासक नहीं हैं, वह शासन का केवल संवैधानिक प्रधान है। वह राज्य करता है, पर शासन नहीं। राजतन्त्र का लोकतन्त्रीकरण हो चुका है।

3.2 राजा और राजमुकुट का अर्थ

राजा वह व्यक्ति होता है जो एक समय विशेष में राज्य के प्रमुख पद पर आसीन होता है। दूसरी ओर राजमुकुट राज्य–शक्ति का वह प्रतीक है जिसे राजा अपने सिर पर धारण करता है। प्राचीन काल से ही राजमुकुट धारण करने और इस प्रकार राजा बनने की परम्परा चली आ रही है। ब्रिटिश इतिहास में प्राचीन काल में राजा शासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था और राज्य की सभी शक्तियों का वास्तविक रूप में उपभोग करता था। लेकिन राजा को ये अपरिमित शक्तियाँ राजतिलक होने के साथ ही प्राप्त होती थीं, उसके पूर्व नहीं। दूसरे शब्दों में, राजा इन शक्तियों का अधिकारी तब होता था जब वह सिंहासनारूढ़ होकर राजमुकुट पहनने का अधिकारी होता था। अर्थात् राजा की शक्तियाँ व्यक्तिगत रूप में न होकर राजमुकुटधारी राजा की होती हैं।

राजमुकुट का शाब्दिक अर्थ है– ''वह टोपी जिसे सम्राट् राजपद के चिह्न स्वरूप पहनता है।'' संवैधानिक दृष्टि से यह वह संस्था है जिसमें सम्राट, मन्त्रिमण्डल, संसद और लोकसेवक सभी शामिल हैं। व्यावहारिक दृष्टि से यह शासन का प्रतीक है। यह सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति है। यह एक स्थायी संस्था है। मुनरो के अनुसार– ''राजमुकुट एक कृत्रिम एवं कानूनी व्यक्ति है जो न कभी शरीर धारण करता है और न कभी मरता है।''

3.3 राजा और राजमुकुट में अन्तर

ब्रिटिश संविधान को भंली–भाँति समझने के लिए सम्राट और राजमुकुट के भेद को समझना अति आवश्यक है। ग्लैडस्टन के अनुसार– ''अंग्रेजी संविधान के साहित्य में अनेक सूक्ष्म भेद है, पर उनमें से उतना अधिक महत्त्वपूर्ण कोई नहीं है, जितना महत्त्वपूर्ण राजा और राजमुकुट में भेद है।'' यथार्थ में राजा वह व्यक्ति होता है, जो इन शक्तियों का प्रयोग करता है जिनका प्रतीक राजमुकुट होता है, जबकि राजमुकुट शासन का प्रतीक है। प्राचीन काल में भी यही अन्तर था, पर उस समय उसका कोई वैधानिक महत्त्व नहीं था क्योंकि उस समय राजा व राजमुकुट में कोई अन्तर नहीं था। राजा ही राजमुकुट था, तथा राजमुकुट ही राजा था और राजमुकुट की सभी शक्तियों का प्रयोग राजा स्वयं करता था। परन्तु राजतन्त्र के लोकतन्त्रीकरण के फलस्वरूप राजा व राजमुकुट का बड़ा महत्त्व हो गया है। दोनों का अन्तर निम्नलिखित प्रकार से है :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.3.1 राजमुकुट एक संस्था, राजा एक व्यक्ति – राजमुकुट एक संस्था जबकि राजा एक व्यक्ति है, जो राजपद को सुशोभित करता है और राजमुकुट रूपी संस्था में निहित शक्तियों का प्रयोग करता है। राजमुकुट वह संस्था है जो शासन की प्रतीक है इसमें व्यवस्थापन, कार्यपालन और न्याय तीनों से सम्बन्धित शक्तियाँ सम्मिलित है। राजा इस संस्था का एक अंग मात्र है।

3.3.2 राजमुकुट स्थाई, राजा अस्थाई :– राजमुकुट एक संस्था के रूप में सदैव अमर हैं जिसका नाश नहीं होता, परन्तु राजा एक जीवित प्राणी के रूप में नाशवान है। राजमुकुट सदा से चला आ रहा है और सदा चलता रहेगा, लेकिन राजा एक व्यक्ति के रूप में सदा नहीं रहता। एक राजा मरता है तो दूसरा उसका स्थान ग्रहण कर लेता हैं, इस तरह राजाओं के आने–जाने का क्रम चलता रहता है, परन्तु राजमुकुट अविनाशी है। इसी कारण इंग्लैण्ड में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि– ''सम्राट मर गया, सम्राट चिरंजीव हो।'' इसका भी यह अर्थ है कि यद्यपि सम्राट व्यक्ति के रूप में मर गया है परन्तु उसका राजमुकुट सदा अमर रहें।

3.3.3 राजमुकुट सामूहिक, राजा वैयक्तिक – राजमुकुट का रूप सामूहिक है, जबकि राजा का वैयक्तिक। राजमुकुट एक बहुल कार्यकारिणी है, जिसमें संसद, मन्त्रिमण्डल और लोकसेवा के सदस्य सम्मिलित है। इसके अलावा राजा वैयक्तिक कार्यपालक है। राजमुकुट के सामूहिक रूप को बतलाते हुए वेड एवं फिलिप्स का कथन है कि– ''राजमुकुट शब्द से शासन की सम्पूर्ण शक्ति के योग का बोध होता है और वह कार्यपालिका का पर्यायवाची है। राजमुकुट की कुछ शक्तियों के प्रयोग में राजा से व्यक्तिगत विवेक से काम में लेने के लिए कहा जा सकता है।''

3.3.4 राजमुकुट अमूर्त्त, राजा मूर्तिमान – राजमुकुट एक अमूर्त्त अवधारणा या संस्था है। वह हमें दिखाई नहीं देता। वह एक अदृश्य है। राजा एक शरीरधारी व्यक्ति है।

3.3.5 राजमुकुट जन–इच्छा का प्रतीक, राजा राजतन्त्र का प्रतीक – राजमुकुट लोकतन्त्र का प्रतीक है। जन–इच्छा का प्रतीक है तथा वह जन–इच्छा को अभिव्यक्त करता है। वह जन–इच्छा से प्रभावित एवं परिवर्तित होता है। इसके विपरीत राजा राजतन्त्र का प्रतीक है। उसका पद वंशानुगत है। राजा ध्वजमात्र शासक है जिसे 'स्वर्णिम शून्य' कहा गया है।

3.4 राजा (राजमुकुट) की शक्तियाँ – सिद्धान्त रूप में ब्रिटिश सम्राट को अत्यन्त व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है, किन्तु व्यावहारिक रूप में यह शक्तियाँ राजमृकुट में निहित है। राजमुकुट में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका की सभी शक्तियाँ निहित है। इसकी व्यापक शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखित वर्गों में किया जा सकता है–

3.4.1 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ – ब्रिटेन में सारी कार्यपालिका शक्ति राजमुकुट में निहित है। उसी के नाम पर सारी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किया जाता है।

1. प्रशासन का निर्देशन : अमरीका में राष्ट्रपति शासन के प्रत्येक कार्य को कार्यान्वित करता है तथा उसका निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण करता है, उसी प्रकार ब्रिटेन में राजमुकुट शासन की समस्त शक्तियों का संचालन करता है। इस नाते वह समस्त राष्ट्रीय कानूनों को क्रियान्वित करता है और सब प्रशासनिक विभागों और सरकरी कर्मचारियों के कार्यों की निगरानी करता है। वही उच्च कार्यपालिका, प्रशासनिक अधिकारियों, न्यायाधीशों तथा सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति करता है। राजमुकुट ही राष्ट्रीय कोष का नियन्त्रण और संचालन करता है। राष्ट्रीय बजट उसकी ओर से प्रस्तुत किया जाता है और संसद की स्वीकृति के बाद उसी के द्वारा कार्यरूप में लाया जाता है।

2. वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन : शासक के प्रमुख के रूप में राजमुकुट ही ब्रिटेन के वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन करता है। समस्त वैदेशिक कार्यों, नीतियों एवं सम्बन्धों का संचालन उसी के नाम से होते है। विदेशों में सभी राजदूतों और कूटनीतिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति वही करता है। वह दूसरे देशों के राजदूतों तथा अन्य कूटनीतिक प्रतिनिधियों के प्रमाण–पत्रों को स्वीकार करता है तथा उनका स्वागत करता है। वह अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में अपने प्रतिनिधि भेजता है।

3. युद्ध, शांति और तटस्थता की घोषणा करता है– राजमुकुट संसद की अनुमति के बिना युद्ध की घोषणा कर सकता हैं परन्तु युद्ध का संचालन तभी सम्भव है जब संसद उसके लिए आवश्यक धनराशि स्वीकृत कर दे। अत: संसद की अनुमति के बिना युद्ध की घोषणा निरर्थक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. उपनिवेश एवं राष्ट्रमण्डल सम्बन्धी अधिकार – राजमुकुट ही ब्रिटिश उपनिवेशों व सुदूरस्थ अधीन प्रदेशों के शासन का वास्तविक अध्यक्ष है। सम्राट (साम्राज्ञी) राष्ट्रमण्डलीय देशों का औपचारिक प्रधान है, सम्राट मन्त्रिमण्डलीय परामर्श से उपनिवेशों के सर्वोच्च शासकों की नियुक्ति करता है और वे राजमुकुट के प्रतिनिधि कहलाते हैं, परन्तु यह सब केवल औपचारिक है। स्पष्ट है कि कार्यकारी क्षेत्र में राजा (राजमुकुट) की शक्तियाँ बड़ी व्यापक है। इसलिए ऑग ने राजमुकुट की सामूहिक शक्ति की तुलना अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियों से की है।

3.4.2 विद्यायी शक्तियाँ – विद्यायी शक्तियाँ सम्राट सहित संसद में निहित होती है। कोई भी विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकता जब तक उस पर राजा की स्वीकृति प्राप्त न हो जाए। राजा को वर्तमान संसद के दोनों सदनों से पारित किसी भी विधेयक को स्वीकृति प्रदान करने या उसका निषेध करने का अधिकार है परन्तु सन् 1707 ई. के पश्चात् राजा अथवा सम्राज्ञी द्वारा निषेध शक्ति का प्रयोग कभी नहीं किया गया है।

राजमुकुट संसद का अधिवेशन बुलाता है, उसका उद्‌घाटन करता है और लोकसभा को भंग कर सकता है। वह 'वंशानुगत' एवं 'जीवन पर्यन्त' दोनों प्रकार के पीयरों को नियुक्त करता है। राजमुकुट इस अधिकार का प्रयोग भी प्रधानमंत्री के परामर्श पर करता है।

3.4.3 न्यायिक शक्तियाँ – सम्राट को न्याय का स्त्रोत कहा जाता है। ब्रिटेन में सभी न्यायालय राजमुकुट द्वारा स्थापित किए गए है। सारा न्यायिक कार्य राजमुकुट के नाम पर ही चलता है। राजमुकुट ही न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। राजमुकुट प्रिवी–कौंसिल की न्याय समिति के परामर्श से उपनिवेशों से आई हुई अपीलों का निर्णय करता है। समस्त अधिकारियों को राजमुकुट के नाम से दण्डित किया जाता है। राजमुकुट को यह विशेषाधिकार है कि वह ऐसे अपराधियों को क्षमा कर सकता है जो फौजदारी मामलों में दोषी होते है। राजमुकुट फौजदारी मामले में मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधी तक को क्षमादान दे सकता है।

3.4.4 धार्मिक शक्तियाँ – राजमुकुट को विभिन्न धार्मिक शक्तियाँ भी प्राप्त है। ब्रिटेन में एंग्लीकन और प्रेसबिटेरियन चर्च राज्य के अवयव के रूप में होते हैं, तथा उनका नियन्त्रण राजमुकुट व संसद द्वारा होता है। इंग्लैण्ड के स्थापित चर्च का प्रमुख होने के नाते वह कैंटरबरी तथा यार्क के ऑर्क–बिशपों तथा अन्य चर्चों के पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है। राजा की अनुमति से ही 'चर्च ऑफ इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय सभा' की समस्त कार्यवाहियाँ सम्पादित होती है। सम्राट चर्च के अन्तर्गत अनुशासन सम्बन्धी विषयों का सर्वोच्च अधिकारी है। धार्मिक न्यायालय के निर्णयों के बिरूद्ध अपीलें भी राजमुकुट की प्रिवी–कौंन्सिल के सम्मुख आती हैं।

3.4.5 उपाधि सम्बन्धी शक्तियाँ – राजमुकुट को 'सम्मान का स्रोत' भी कहा जाता है। वहीं नागरिकों को राजनीतिक व सामाजिक सम्मान और उपाधियाँ प्रदान करता है। ये उपाधियाँ वर्ष में दो बार विशेष सेवा के लिए प्रदान की जाती है।

उपर्युक्त शक्तियाँ और अधिकार वैधानिक दृष्टि से राजमुकुट में निहित होते हैं। प्राचीन काल में ये समस्त कार्य सम्राट स्वयं करता था, किन्तु अब इनको राजमुकुट द्वारा सम्पादित किया जाता है। यथार्थत: राजमुकुट की शक्तियों के संरक्षक संसद के प्रति उत्तरदायी मन्त्री ही होते है।

3.5 राजा की वास्तविक स्थिति

सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्राट की जिन शक्तियों का उल्लेख किया गया है व्यवहार में उन शक्तियों का प्रयोग सम्राट द्वारा नहीं, वरन् केबिनेट द्वारा ही किया जाता है। दूसरे शब्दों में, राजमुकुट रूपी संस्था में राजा की वास्तविक स्थिति क्या है? वह केवल मात्र एक 'स्वर्णिम शून्य' अथवा 'रबर की मुहर' है। फाइनर के शब्दों में- ''वह विशाल गगनचुम्बी तथा वैभवपूर्ण अट्टालिका है जिसके अन्दर राजनीतिक शक्ति का शून्य है।'' इंग्लैण्ड में राजा की वास्तविक स्थिति को समझने के लिए निम्नलिखित शीर्षकों पर विचार किया जा सकता है।

3.5.1 राजा कोई गलती नहीं कर सकता – यह कथन कि- ''सम्राट कोई गलती नहीं करता'' ब्रिटिश संविधान में सम्प्रभु की वास्तविक स्थिति को अभिव्यक्त करता है। इसका अर्थ है कि सम्प्रभु की शक्तियाँ उसकी निजी शक्तियाँ नहीं, उसकी शक्तियाँ राजमुकुट की शक्तियाँ हैं। वास्तव में इस उक्ति के दो रूप हैं – कानूनी और राजनीतिक। कानूनी रूप से राजा अपने कार्यों के लिए कानून के ऊपर है क्योंकि वह स्वयं स्व–विवेक से कोई कार्य नहीं करता बल्कि मन्त्रियों के परामर्श से ही सब काम करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राजनीतिक दृष्टि से आशय है कि यदि राजा कोई राजनीतिक भूल करें या किसी अपराध का परामर्श दे तो भी उसके विरूद्ध कुछ नहीं किया जा सकता। उस भूल के लिए सम्बन्धित विभाग का मन्त्री ही उत्तरदायी ठहराया जाएगा और वह स्वयं को कानूनी या संवैधानिक अपराध के दोष से बचा नहीं सकेगा।

'राजा कोई गलती नहीं कर सकता' इस कथन के विविध अर्थ निम्नलिखित प्रकार से हैं :-

1. **राजा कानून के ऊपर है** – ब्रिटेन में सम्प्रभु कानून का स्रोत है। वह न्याय का भी स्रोत है। उस पर किसी भी विधि के अन्तर्गत दोष आरोपित नहीं किया जा सकता। राजा पर न किसी न्यायालय में अभियोग लगाया जा सकता है और न किसी न्यायलय द्वारा उसे अपराधी घोषित किया जा सकता है। वह न्यायालयों के क्षेत्र में उन्मुक्त है। उसे कानून से ऊपर माना गया है।

2. **राजा के प्रत्येक कार्य के लिए अन्य व्यक्ति उत्तरदायी रहता हैं** – राजा के समस्त कार्यों के लिए कोई न कोई मंत्री अवश्य उत्तरदायी रहता है। दूसरे शब्दों में, राजा की किसी भी भूल का उत्तरदायित्व स्वाभाविक रूप से उस मन्त्री पर होता है जिसके परामर्श से उसने यह भूल की। इस प्रकार यह कथन मन्त्रियों के उत्तरदायित्व की स्थापना करता है, जो ब्रिटिश शासन प्रणाली की आधारशिला है।

3. **राजा दूसरों को भी गलत काम करने के लिए अधिकृत नहीं कर सकता** – राजा स्वयं कोई भूल नहीं कर सकता तो वह दूसरों से भी कोई गलत कार्य नहीं करा सकता अथवा किसी भी व्यक्ति को गलती करने के लिए अधिकृत नहीं कर सकता। इस प्रकार यदि कोई मन्त्री कोई कानूनी या संवैधानिक अपराध करता है तो वह यह कहकर अपनी रक्षा नहीं कर सकता कि उसने यह काम राजा की आज्ञानुसार किया है। दूसरे शब्दों में, कोई भी अधिकारी अपने द्वारा किए गए किसी अवैधानिक कृत्य के लिए राजा की कानूनी उन्मुक्ति की शरण नहीं ले सकता। कोई भी अपराधी यह बात कहकर अपनी सफाई नहीं दे सकता कि राजा के कहने से उसने यह गलती की हैं।

4. **शक्ति-शून्यता** – वास्तविक शक्ति की दृष्टि से सम्प्रभु निःशक्त है। वह शक्ति शून्य है। वह मिट्टी का महादेव है। वह रबड़ की मोहर है। जेनिंग्स ने लिखा है कि सम्प्रभु "महत्ता का प्रतीक है, क्षमता का नहीं।" सम्प्रभु अपनी राजनीतिक क्षमता में कोई गलती नहीं कर सकता और जैसा कि ब्लैकस्टोन ने कहा है– "वह गलती करने का विचार भी नहीं कर सकता।"

5. **राजा के कार्य को सदैव सही माना जाता है** – इंग्लैण्ड में राजा के पद को प्रतिष्ठा और गरिमा से युक्त माना जाता है। ऐसी स्थिति में यदि वह गलती कर भी ले तो उसे गलती नहीं माना जाता। राजा के कार्य को सदैव सही माना जाता है।

3.5.2 राजा राज करता है, शासन नहीं करता – 'राजा राज करता है, शासन नहीं करता।' इसका अभिप्राय यह है कि वैधानिक दृष्टि से तो राजा के पद का आज भी प्राचीन काल जैसा ही महत्त्व है, लेकिन वास्तव में वह अब उन शक्तियों का प्रयोग नहीं करता जिनका प्राचीन काल में प्रयोग किया जाता था। लोकतन्त्र के विकास के फलस्वरूप राजा आज केवल संवैधानिक अथवा नाममात्र का 'शासन प्रमुख' रह गया है। उसकी उक्त सभी वास्तविक शक्तियाँ 'राजमुकुट' नामक अमूर्त संस्था में निहित हो गई है। 'राजमुकुट' की किसी भी शक्ति का प्रयोग राजा या रानी व्यक्तिगत रूप से नहीं करते। इसका प्रयोग उत्तरदायी मन्त्रियों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार यह कहना सच है कि राजा के हाथों में शासन की कोई शक्ति नहीं है, अर्थात् राजा शासन नहीं करता, परन्तु राजा राज करता है। शासन तो मन्त्रिपरिषद् करती है।

3.5.3 राजा के विशेषाधिकार – राजा की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन करने की दिशा में उसके विशेषाधिकारों का अध्ययन भी सहायक होगा। यद्यपि उसे शासन सम्बन्धी कोई कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं है, फिर भी वह अपने विशेषाधिकारों के क्षेत्र में अपने विवेक से महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। अतः ब्रिटेन में राजा को निम्नलिखित विशेषाधिकार प्राप्त है :-

1. **प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति का विशेषाधिकार** – राजा वैधानिक रूप से सरकार का प्रमुख होने के नाते वह अपने विवेक से उपर्युक्त व्यक्ति को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त कर सकता है। परन्तु इस सम्बन्ध में राजा पर यह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रतिबन्ध है कि वह लोकसदन में बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करें। फिर भी जब किसी दल का स्पष्ट बहुमत न हो, कोई सर्वमान्य नेता न हो, कई लोग प्रधानमंत्री पद के प्रत्याशी हो, तो राजा स्वविवेक का प्रयोग करते हुए किसी को भी प्रधानमंत्री नियुक्त कर सकता है। सन् 1894 ई. में रानी विक्टोरिया ने उस स्थिति में लॉर्ड रोजबरी को प्रधानमंत्री बनाया जब उस पद के कई प्रत्याशी थे। वह प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति करता है।

2. **लोकसदन को भंग करने का अधिकार** – यदि प्रधानमंत्री राजा से लोकसदन को भंग करने की प्रार्थना करें तो राजा प्रधानमंत्री की प्रार्थना पर कम-से-कम एक बार तो लोकसदन को भंग कर ही देता है। यह एक परम्परा है। किन्तु अनुचित कारणों से प्रधानमंत्री लोकसदन के विघटन का सुझाव दे तो राजा स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है। लेकिन अब यह परम्परा सी बन गई है कि राजा ने विगत वर्षों में प्रधानमंत्री की सलाह पर लोकसदन को भंग कर दिया है।

3. **लॉर्ड बनाने का विशेषाधिकार** – राजा का एक उल्लेखनीय विशेषाधिकार लोगों को 'पीयर' बनाने से सम्बन्धित है। यदि लॉर्ड सभा लोकसदन द्वारा पारित किए गए विधेयक का विरोध करें तो राजा प्रधानमंत्री के परामर्श पर लॉर्ड सभा के विरोध को दबाने के लिए नए पीयरों का निर्माण कर सकता है। पर यदि वह ऐसा न करना चाहे तो प्रधानमंत्री से यह कह सकता है कि विधेयक को विषय बनाकर पुन: आम चुनाव करवाए जाएँ।

4. **विधेयकों पर स्वीकृति देने या न देने का विशेषाधिकार** – किसी विधेयक को पारित करने के बाद संसद उसे राजा की सम्मति के लिए भेजती है। उस विधयेक पर स्वीकृति देना या न देना राजा का विशेषाधिकार माना जाता है। किन्तु राजा का यह विशेषाधिकार वर्तमान परिस्थितियों में अवास्तविक ही है। संसद द्वारा पारित प्रस्ताव पर वह अपनी स्वीकृति प्रदान कर देता है।

राजा की शक्ति और उसके व्यावहारिक प्रयोग के विषय में जो कुछ ऊपर कहा गया है, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि अन्तिम रूप से राजा एक संवैधानिक प्रमुख है जो केवल राज्य करता है, शासन नहीं। अपने विशेषाधिकारों के विषय में भी वह स्व-विवेक से कार्य करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र नहीं है और उसे अपने मन्त्रियों के परामर्शानुसार ही कार्य करना पड़ता है। परन्तु फिर भी अपने बुद्धि-बल, विवेक, व्यक्तित्व, अनुभव और निष्पक्ष व्यवहार तथा पद की श्रेष्ठता आदि के कारण वह शासन को आवश्यकतानुसार प्रभावित करने की क्षमता अवश्य रखता है।

3.6 राजपद का औचित्य

इक्कीसवीं शताब्दी लोकतन्त्र की शताब्दी है। बीसवीं शताब्दी में दो विश्व युद्धों ने राजतन्त्र की कब्र खोद दी थी। इस पर भी ब्रिटेन में राजतन्त्र एक जीवित वास्तविकता है। वहाँ यह पहले से भी अधिक लोकप्रिय, सुदृढ़ एवं सुरक्षित संस्था है। विश्व के दूसरे किसी देश में शायद ही किसी शक्तिविहीन राजपरिवार को ऐसी अन्ध श्रद्धा मिलती हो जैसी ब्रितानी राजपरिवार को मिलती है। राजपरिवार के उत्सव राष्ट्रीय उत्सव बन जाते है। इंग्लैण्ड वालों ने राजपरिवार को अपने भाग्य का प्रतीक मान लिया है। वहाँ राजतन्त्र ऐतिहासिक परम्परा का आधार है। यह राष्ट्रीय एकता, सुदृढ़ता, स्थिरता एवं सुरक्षा का प्रतीक है। यह राष्ट्रमण्डलीय एकता की कड़ी हैं। यह दलीय भावनाओं से पृथक एवं स्वतन्त्र है। इसके उचित विकल्प का अभाव है। इन सभी कारणों से ब्रिटिश राजतन्त्र ब्रिटेन में ''सुरक्षित एवं सम्मानित'' ही नहीं अपितु ब्रिटिशवाशी ऊँचें स्वर में 'राजा चिरंजीवी हो' के नारे लगाते है।

ब्रिटेन में राजतन्त्र के विद्यमान होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:-

3.6.1 ऐतिहासिक महत्त्व की संस्था – ब्रिटेन में राजपद लगभग साढ़े ग्यारह सौ वर्षों से भी अधिक की प्राचीन धरोहर है। ब्रिटेनवासी जिस राजतन्त्र के सम्पर्क में शताब्दियों से रहते आए हैं, उनसे अलग होने की बात सोचना भी उन्हें अस्वाभाविक लगता है। स्वभाव से रूढ़ीवादी और परम्परावादी ब्रिटिश जनता के लिए राजपद एक ऐतिहासिक परम्परा है, यह संस्था अतीत को वर्तमान से तथा वर्तमान को अतीत से जोड़ने वाली कड़ी है।

3.6.2. राजपद का लोकतन्त्रीकरण – वर्तमान समय में इंग्लैण्ड में राजपद के बने रहने का सबसे बड़ा कारण है 'राजपद का लोकतन्त्रीकरण'। ब्रिटेन के निरंकुश राजतन्त्र ने लोकतन्त्र के उदय और प्रसार में बाधक बनने की चेष्टा नहीं की, वरन् अपना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शांतिपूर्ण लोकतन्त्रीयकरण हो जाने दिया है। यदि ब्रिटिश राजा रूस के जारों और फ्रांस के लुई चौदहवें की तरह विवेकहीन व्यवहार करते तो ब्रिटेन का राजतन्त्र भी कभी का समाप्त हो गया होता। लेकिन इंग्लैण्ड के राजाओं ने बदलती हुई परिस्थितियों को समझा और राजतन्त्र को लोकतन्त्र के रूपान्तरण में सहायता की। उनकी कार्यशैली ने देश में लोकतंत्र को शक्तिशाली बनाया है।

3.6.3 राजा की राजनैतिक निष्पक्षता – इंग्लैण्ड में राजा किसी राजनैतिक दल का साथी नहीं है। विविध दल जब शक्ति प्राप्त करके सरकार बनाते है तो उनका समान रूप से स्वागत करता है। राजा वंशानुगत होने के कारण इन दलगत भावनाओं से ऊपर उठा होता है। अपनी श्रेष्ठ स्थिति के कारण, एक महान् गौरवपूर्ण राजगद्दी का अधिपति होने के कारण, वह एक सर्वथा भिन्न आदर्श एवं गरिमामय वातावरण कार्य करता है। परिणाम स्वरूप वह सदैव पक्षपात–रहित होकर काम करता है। इससे वह राजनीतिक विवादों में नहीं उलझता है।

3.6.4 ब्रिटिश जाति का रूढ़ीवादी स्वभाव – अंग्रेज स्वभाव से रूढ़ीवादी और पुरातन प्रिय है। वे क्रांति अथवा मूल परिवर्तवादी नहीं। राष्ट्र की प्राचीन संस्थाओं और ऐतिहासिक परम्पराओं की मौलिकता और प्राचीनता को कायम रखकर भी उन्हें आधुनिकतम परिस्थितियों के अनुकूल ढ़ाल लेना, ब्रिटिश जनता का स्वभाव है। यही कारण है कि ब्रिटिश मानस राजतन्त्र जैसी गौरवपूर्ण प्राचीनतम राजनीतिक संस्था के विनाश की कल्पना भी नहीं कर सकता है। अंग्रेजों ने अपनी स्वभावगत विशेषता के कारण राजतन्त्र को बनाए रखा है।

3.6.5 राजपद सुरक्षा का प्रतीक – अंग्रेजों की भावनाओं के अनुसार राजा उनकी एकता, दृढ़ता और सुरक्षा का प्रतीक है। उन्हें यह अनुभूति होती है कि राजपद के बिना उनके देश का सामजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढ़ाँचा ढह जाएगा। ब्रिटिश जनता इस संस्था के कारण चैन की नींद सोती है।

3.6.6 लोकप्रिय संस्था – ब्रिटेन में राजतन्त्र एक लोकप्रिय संस्था है। हर्बर्ट मोरिसन ने कहा है कि– ''सम्प्रभु ब्रिटिश लोगों के हृदय और मस्तिष्क में अत्यधिक लोकप्रिय बन गया है।'' वह ब्रिटिश समाज के सभी वर्गों, सभी राजनीतिक दलों की श्रद्धा एवं भक्ति का पात्र है। ब्रिटिश लोग राजतन्त्र में पितृ भाव देखते हैं। इसके विद्यमान होने से वे अपने आपको सुरक्षित समझते हैं।

3.6.7 राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक – ब्रिटेन का राजा दूर–दूर बिखरे हुए राष्ट्रमण्डलीय देशों के बीच एकता का अपरिहार्य प्रतीक है। ब्रिटिश लोग राजतन्त्र में राष्ट्रीय गौरव की अनुभूति करते हैं। ब्रिटिशवासियों की धारणा है कि राजतन्त्र सरकार को बोधगम्य बनाता है। साधारण से साधारण नागरिक भी इसे समझ सकता है। सम्प्रभु राष्ट्र को साकार बनाता है।

3.6.8 अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों का विकास – राजपद का अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में पहले साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से भी बड़ा महत्त्व था। राजतन्त्र ब्रिटिश साम्राज्य के लिए औचित्य प्रदान करता था। ब्रिटेनवासी सुदूर प्रदेशों को जीतने के लिए उत्साहित रहते थे, और साम्राज्य के संपोषण में योग देते थे। अंग्रेज लोग 'साम्राज्यिक मुकुट में उपनिवेश विजय' तथा 'साम्राज्यिक परिवार में नया सदस्य' जोड़ने में गर्व का अनुभव करते थे। ब्रिटेन का राजा विभिन्न देशों से उत्तम सम्बन्ध बनाए रखने में भी बड़ी सहायता पहुँचाता है। यदा–कदा की जाने वाली ब्रिटिश राजाओं की मैत्री–यात्राएँ ब्रिटिश प्रतिष्ठा में वृद्धि करती है। वह देश के लिए अन्य देशों की सद्भावना अर्जित करता है।

3.6.9 सूचनाओं का भण्डार – ब्रिटिश साम्राज्ञी इतनी सुसूचित होती है कि वह किसी भी मन्त्रिमण्डल का सही मार्गदर्शन करने की स्थिति में होती हैं। उन्हें मन्त्रिमण्डल की बैठकों की कार्यवाही की सूची एवं बैठकों के विवरण प्राप्त होते रहते हैं। वह प्रधानमंत्री से किसी भी विषय पर विशिष्ट सूचनायें प्राप्त कर सकती है। उन्हें राष्ट्रमण्डल, राजदूतों एवं उपनिवेशों के गवर्नरों से सूचनायें प्राप्त होती रहती है।

3.6.10 संसदीय प्रजातन्त्र में राजपद की उपयोगी भूमिका – संसदीय प्रजातन्त्र में कार्यपालिका के वास्तविक प्रधान के साथ–साथ एक औपचारिक प्रधान की भी आवश्यकता होती है। इस औपचारिक प्रधान को कुछ विशेष कार्य करने होते है जैसे एक प्रधानमंत्री के त्यागपत्र के बाद दूसरे प्रधानमंत्री को पदग्रहण करने के लिए आमन्त्रित करना, व्यवस्थापिका का अधिवेशन बुलाना और स्थगित करना, लोकप्रिय सदन को विघटित करना, आदि। ब्रिटेन में संसदीय प्रजातन्त्र है और इस कारण इस प्रकार के औपचारिक प्रधान की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन में यदि राजपद को समाप्त किया जाए तो भारतीय राष्ट्रपति जैसे किसी निर्वाचित प्रधान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की व्यवस्था करनी होगी। नये सिरे से निर्वाचित प्रधान की व्यवस्था सम्भव नहीं है। इस संस्था को समाप्त करने से अनेक संवैधानिक, संस्थागत तथा प्रक्रियागत प्रश्न खड़े हो जायेंगे।

3.6.11 आर्थिक औचित्य – राजपद को अस्तित्व में रखने का आर्थिक औचित्य भी है। ब्रिटिश–शासन के लिए यह एक मंहगी संस्था नहीं है। इस पर राष्ट्रीय बजट के एक प्रतिशत का बीसवाँ भाग भी खर्च नहीं होता, लेकिन उसकी तुलना में राजनीतिक चेतना के रूप में आय की मात्रा बहुत अधिक है। ब्रिटिश राजा आय का भी स्रोत है क्योंकि राज परिवार से सम्बन्धित उत्सवों, फिल्मों आदि से काफी आय होती है। इसलिए व्यय के आधार पर राजतन्त्र के विरूद्ध तर्क नहीं दिया जा सकता है। वर्तमान में इस संस्था के समाप्त होने के कोई आसार नहीं है।

3.7 सारांश

वस्तुतः विश्व में कोई भी राजपद इतना सुरक्षित अथवा जनता द्वारा सम्मानित नहीं है जितना कि ब्रिटेन का, और इसके प्रति जनता की आस्था सतत् रूप में बनी हुई है। यही कारण है कि ज्यों–ज्यों प्रजातन्त्र की प्रगति हो रही है, त्यों–त्यों वहाँ राजतन्त्र की जड़े और भी मजबूत होती जा रही है। तभी तो अंग्रेज बड़े विश्वास के साथ यह कहते है कि– ''संसार में केवल पाँच राजा रहेंगे – चार राजा खेलने वाले ताशों के और एक इंग्लैण्ड का राजा।'' निकट भविष्य में भी यह संस्थान बनी रहेगी।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''ब्रिटेन का राजा राज करता है, शासन नहीं।'' इस कथन को दृष्टि में रखते हुए ब्रिटेन के राजा की स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. इंग्लैण्ड में राजतन्त्र की उपयोगिता का वर्णन कीजिए।
3. राजा और राजमुकुट में अन्तर कीजिए। ब्रिटेन में राजमुकुट की शक्तियाँ क्या है ?
4. ब्रिटिश सम्राट की स्थिति की विवेचना कीजिए। इंग्लैण्ड में राजपद का क्या औचित्य है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''ब्रिटिश सम्राट स्वर्णिम शून्य है।'' व्याख्या कीजिए।
2. राजा और राजमुकुट में अन्तर कीजिए।
3. ब्रिटिश सम्राट के प्रभाव के कारणों का वर्णन करों।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजमुकुट किसे कहते है ?
2. राजमुकुट की शक्तियों के स्रोत क्या हैं ?
3. संवैधानिक राजतन्त्र में सम्राट के तीन प्रमुख अधिकार कौन–कौन से हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-04

ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद्

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मन्त्रिपरिषद् की जननी : प्रिवी कौन्सिल

- 4.2.1 प्रिवी कौन्सिल की उत्पत्ति एवं विकास
- 4.2.2 प्रिवी कौन्सिल का संगठन
- 4.2.3 प्रिवी कौन्सिल की बैठकें एवं कार्य

4.3 मन्त्रिपरिषद् का अर्थ

4.4 मन्त्रिपरिषद् का उदय एवं विकास

4.5 मन्त्रिपरिषद् की विशेषताएँ

- 4.5.1 प्रधानमंत्री का नेतृत्व
- 4.5.2 राजनीतिक सजातीयता
- 4.5.3 कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ सम्बन्ध
- 4.5.4 मंत्रिपरिषद् को लोकसदन के विघटन कराने का अधिकार
- 4.5.5 मंत्रियों का सामूहिक उत्तरदायित्व
- 4.5.6 निजी उत्तरदायित्व
- 4.5.7 गोपनीयता
- 4.5.8 एकता

4.6 मन्त्रिपरिषद् का गठन

4.7 मन्त्रिपरिषद् के कार्य एवं शक्तियाँ

- 4.7.1 विधायी कार्य
- 4.7.2 कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य
- 4.7.3 वित्त सम्बन्धी कार्य
- 4.7.4 समन्वयकारी कार्य
- 4.7.5 समस्याओं का निवारण
- 4.7.6 अन्य कार्य

4.8 क्या ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् अधिनायक है ?

- 4.8.1 विरोधी दल का अस्तित्व
- 4.8.2 संसद का नियन्त्रण
- 4.8.3 जनमत का भय
- 4.8.4 सम्राट का विरोध

4.9 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत मन्त्रिपरिषद का अर्थ, महत्त्व, उदय, विकास, विशेषतायें, गठन, कार्य-प्रणाली और शक्तियों का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- मन्त्रिपरिषद् की जननी प्रिवी कौन्सिल को समझ सकेंगे,
- मन्त्रिपरिषद् के विकासात्मक चरणों को समझ सकेंगे,
- मन्त्रिपरिषद् का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व सिद्धान्त को समझ सकेंगे,
- मन्त्रिपरिषद् के कार्यों तथा शक्तियों को समझ सकेंगे,
- मन्त्रिपरिषद् का वर्तमान में महत्त्व के बारे में जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

ब्रिटेन में संसदीय शासन व्यवस्था है। संसदीय शासन में कार्यपालिका का एक औपचारिक प्रधान होता है तथा दूसरा वास्तविक प्रधान। सत्ता का प्रयोग औपचारिक प्रधान के नाम से किया जाता है, किन्तु वास्तविक रूप में सत्ता का प्रयोग औपचारिक प्रधान नहीं वरन् वास्तविक प्रधान करता है। ब्रिटेन में सम्राट कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है और मन्त्रिपरिषद् कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान। प्रसिद्ध ब्रिटिश विधिवेत्ता डायसी के शब्दों में, ''यद्यपि शासन का प्रत्येक कार्य सम्राट के नाम पर किया जाता है, परन्तु इंगलैण्ड की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिपरिषद् में निहित है।'' ब्रिटिश शासन व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद्, शाही परामर्शदाताओं का ऐसा समूह है जिसका चयन, राजा के नाम पर, प्रधानमन्त्री करता है। मन्त्रिपरिषद् प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कार्य करती है। प्रधानमंत्री के अरितत्व पर ही उसका अरितत्व बना रहता है। उसके त्यागपत्र देने के साथ ही उसका अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। मन्त्रिपरिषद् के सभी सदस्य संसद के सदस्य होते हैं। उनका सम्बन्ध कॉमन सभा या लोकसदन में बहुमत दल से होता है। मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से कॉमन सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। यह उसी समय तक अपने पद पर बनी रहती है जिस समय तक इसे उसका विश्वास प्राप्त रहता है। जब यह विश्वास समाप्त हो जाता है तो इसे त्यागपत्र देना पड़ता है।

ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् शासन व्यवस्था का केन्द्र एवं गौरव है। यह उसका हृदय एवं प्राण है। यह राष्ट्रीय नीतियों एवं योजनाओं का निर्माण करती है। इसीलिए कार्टर रैने और हर्ज ने मन्त्रिपरिषद् को ''लघु व्यवस्थापिका'' की संज्ञा दी है। बैजहांट का मत है कि मन्त्रिपरिषद् ''स्वयं में व्यवस्थापिका है।'' मन्त्रिपरिषद् सारी शासन प्रणाली को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य करती है तथा कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका को जोड़ती है। इसी कारण सर जॉन मैरियट का कहना है ''कि मन्त्रिपरिषद् वह धुरी है जिस पर सम्पूर्ण प्रशासन चक्र घूमता है।''

4.2 मन्त्रिपरिषद् की जननी : प्रिवी कौन्सिल :-

प्रिवी कौन्सिल एक संवैधानिक यन्त्र है, जिसके द्वारा राजा के अधिकांश औपचारिक कार्य सम्पन्न होते हैं। इस प्राचीन संस्था से ही 'मन्त्रिपरिषद् ' की उत्पत्ति हुई थी। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों तक प्रिवी कौंसिल शासन के क्षेत्र में वास्तविक शक्ति रखती थी वह एक विचार-विमर्श करने वाली संस्था थी। किन्तु धीरे-धीरे उसकी समस्त वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रिपरिषद् में हस्तान्तरित हो गई। परन्तु कार्य और शक्ति की दृष्टि से यह इतनी नगण्य हो गई है कि अब यह एक औपचारिक और नाममात्र की संस्था रह गई है।

4.2.1 प्रिवी कौंसिल की उत्पत्ति एवं विकास :- प्रिवी कौंसिल की उत्पत्ति नोर्मन काल में 'क्यूरिया रेजिस' (Curia Regis) से हुई जो राजा की एक परामर्शदात्री संस्था थी। क्यूरिया रेजिस के कार्य धीरे-धीरे बहुत बढ़ गए। फलतः इसकी दो शाखाएँ हो गई। प्रशासकीय कार्य करने वाली शाखा प्रिवी कौंसिल कहलाई। यह राजा को परामर्श भी देती थी और उसके दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक कार्यों में सहायता भी दिया करती थी। राजा इसके सदस्यों को उच्च वर्गों से चुनता था। ट्यूडर वंश के शासनकाल में प्रिवी परिषद् राजाओं की निरंकुशता की शक्तिशाली माध्यम बन गई और यह उन सभी कार्यों को करने लगी जिन्हें आज मन्त्रिपरिषद् करती है। कालान्तर में इसके आकार का इतना अधिक विस्तार हो गया कि राजा के लिए पूरी प्रिवी परिषद् से परामर्श करना अव्यावहारिक हो गया। चार्ल्स द्वितीय ने प्रिवी कौंसिल के कुछ विश्वसनीय सदस्यों की एक समिति बनाई जिसका नाम 'कबाल' (Cabal) पड़ा। शनैःशनैः इस 'कबाल' अर्थात् अन्तरंग सभा के हाथों में वास्तविक शक्ति आ गई और इसने मन्त्रिपरिषद् का रूप धारण कर लिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.2.2 प्रिवी कौंसिल का संगठन :- प्रिवी परिषद् के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। वह बदलती रहती है। वर्तमान समय में प्रिवी परिषद् में लगभग 334 सदस्य हैं जिनकी नियुक्ति राजा प्रधानमंत्री के परामर्श से करता है। सभी वर्तमान एवं भूतपूर्व मंत्री, राजनीतिक जीवन में ख्याति-प्राप्त व्यक्ति, गणमान्य वैज्ञानिक साहित्यकार, चर्च के अधिकारी, अवकाश प्राप्त न्यायाधीश और प्रशासक आदि प्रिवी परिषद् के सदस्य बना दिए जाते हैं। व्यक्ति अपनी विद्वत्ता एवं योग्यता के कारण ही इसके पदाधिकारी हो पाते हैं। इस परिषद् की सदस्यता जीवन पर्यन्त रहती है और सदस्यों को 'महामान्य' की उपाधि से विभूषित किया जाता है।

4.2.3 प्रिवी कौंसिल की बैठकें एवं कार्य :- प्रिवी कौंसिल की बैठकें केवल औपचारिक अवसरों पर बुलाई जाती हैं। इसकी बैठकें राजा की मृत्यु या नये राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर बुलाई जाती हैं। प्रिवी कौंसिल की बैठकों में प्राय: चार या पांच सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य हैं। इसकी बैठकें प्राय: बंकिंघम महल में या अन्य किसी स्थान पर सम्प्रभु की उपस्थिति में होती हैं। कौंसिल के निर्णय सपरिषद् राजा के आदेशों के रूप में उद्घोषित होते हैं।

कार्य :- प्रिवी कौंसिल के वर्तमान कार्य मिश्रित से है, तथापि वह मुख्यत: कार्यपालिका सम्बन्धी कर्त्तव्यों का निर्वहन करती है। यह मन्त्रिपरिषद् के निर्णयों पर औपचारिक स्वीकृति देती है। चूंकि राजा मन्त्रियों के परामर्श पर काम करता है, अत: प्रिवी कौन्सिल के निर्णय सत्तारूढ़ शासन की नीतियों को प्रकट करते हैं। प्रिवी कौन्सिल जो भी कार्य करती है, वह संसदीय अधिनियमों के अधिकार के अन्तर्गत प्रसारित 'सपरिषद् आदेशों' और उद्घोषणाओं के रूप में व्यक्त किए जाते हैं।

प्रिवी कौन्सिल के मुख्य कार्य निम्नखिलित हैं-

1. मन्त्रिपरिषद् द्वारा पहले से ही लिये गये निर्णयों को बिना विचार-विमर्श के सपरिषद् आदेशों अथवा उद्घोषणाओं के रूप में औपचारिक स्वीकृति प्रदान करना।
2. मन्त्री अथवा अन्य उच्च पदाधिकारी प्रिवी कौन्सिल के समक्ष अपने पदों की शपथ ग्रहण करते हैं।
3. कौन्सिल विशेष समस्याओं का अध्ययन करने हेतु विशिष्ट समितियों की स्थापना कर सकती है।
4. कौन्सिल ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (B.B.C.) की नीति निर्धारित करती है।
5. प्रिवी कौन्सिल विधि खोजों एवं अनुसंधान के कार्यों का प्रबन्ध करती है तथा उनका अधीक्षण करती है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि वास्तव में इन आदेशों सम्बन्धी निर्णय मन्त्रिपरिषद् द्वारा लिए जाते हैं, किन्तु ये प्रिवी कौन्सिल के नाम से जारी किए जाते हैं। प्रिवी कौन्सिल कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो स्वयं नीति निर्धारित करे और शासन कार्य चलाएँ। इसके कार्य विभिन्न विभागों ने ले लिए हैं और उन्हीं पर अलग-अलग उनका उत्तरदायित्व है। दूसरे शब्दों में, प्रिवी कौन्सिल के समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व मन्त्रिपरिषद् पर रहता है। वह परिषद् प्राचीन काल में शक्ति की प्रतीक थी, परन्तु आज उस शक्ति के गौरव की प्रतीक है।

4.3 मन्त्रिपरिषद् का अर्थ

मन्त्रिपरिषद्, वह राजनीतिक समिति है जो प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करती है। लोकसदन के बहुमत दल के नेता को राजा के द्वारा प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है और प्रधानमंत्री सिद्धान्तत: संसद सदस्यों में और व्यवहार में सामान्यतया अपने ही राजनीतिक दल के संसद सदस्यों में से अपने सहयोगी मन्त्रियों का चुनाव करता है। प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ही राजा द्वारा मन्त्रियों की नियुक्ति की जाती है। मन्त्रिमण्डल को परिभाषित करते हुए मुनरों ने लिखा है ''मन्त्रिपरिषद् राजमुकुट के नाम पर प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किए हुए उन राजकीय परामर्शदाताओं की समिति को कहा जा सकता है जिन्हें लोकसदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो''

4.4 मन्त्रिपरिषद् का उदय एवं विकास

ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् अन्य ब्रिटिश संवैधानिक संस्थाओं की भांति ही दीर्घकालीन विकास का परिणाम रही है और यह परम्पराओं तथा अभिसमयों पर आधारित है। सन् 1937 ई. तक 'मन्त्रिपरिषद्' शब्द संसद द्वारा पारित किसी विधि में प्रयुक्त नहीं हुआ था। सन् 1937 ई. के 'क्राउन-मन्त्री अधिनियम' में इसका संयोग वश ही नाम आया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वर्तमान मन्त्रिपरिषद् के बीज एंग्लो-सेक्सन आर. नॉर्मन एँजियन काल की विटनेजमोट तथा क्यूरिया रेजिस में देखे जा सकते हैं। नॉर्मन-एँजियन काल में विटनेजमोट का स्थान एक अन्य उच्चस्तरीय समिति मैग्नम कांसिलियम ने ले लिया। इसके साथ ही एक अन्तरिम समिति, 'क्यूरिया रेजिस' की स्थापना हुई। ये दोनों ही परिषदें राजा की परामर्श-दात्री संस्थाएँ थीं। क्यूरिया रेजिस अथवा लघु परिषद् के कार्य धीरे-धीरे बहुत बढ़ गए। अत: इसमें से एक लघुतर समिति की उत्पत्ति हुई जिसे प्रिवी परिषद् कहा गया। आगे चलकर इसकी भी सदस्य संख्या के बढ़ जाने पर राजा कुछ प्रमुख और निजी सदस्यों से महल के किसी छोटे कमरें में विचार-विमर्श करने लगा। इस समिति को समयोपरान्त 'मन्त्रिपरिषद्' की संज्ञा दी गई।

4.5 मन्त्रिपरिषद् की विशेषताएँ

ब्रिटेन मन्त्रिमण्डलात्मक व्यवस्था का मातृ देश है और अन्य देशों ने इस व्यवस्था को ब्रिटेन से ही ग्रहण किया है। अत: ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के विकास की संक्षिप्त कहानी से इसकी विशेषताओं का बहुत कुछ आभास मिल जाता है, तथापि हम इसकी प्रमुख विशेषताओं पर यहाँ विस्तार से विचार करना चाहेंगे। ये विशेषताऐं निम्नलिखित हैं -

4. 5. 1 प्रधानमंत्री का नेतृत्व :- प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल का नेता होता है, यद्यपि सभी मन्त्री समान-पदी है तथा उनके अधिकार भी समान है, प्रधानमंत्री की स्थिति विशिष्ट होती है। उसे समकक्षों में 'प्रथम' का स्थान प्राप्त होता है। वह शासन की एकता का प्रतीक होता है और अन्य मन्त्री उसकी बात का सम्मान करते हैं। अर्थात् प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल का निर्माता, पोषणकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता है। मन्त्रिपरिषद् के सदस्य उसके विश्वासपर्यन्त तक ही अपने पद पर बने रह सकते हैं।

4. 5. 2 राजनीतिक सजातीयता :- ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् के सभी सदस्य एक ही राजनीतिक दल से सम्बन्ध रखते हैं। समान दलीय आधार उन्हें एक सूत्र में बाँधता है। राजनीतिक विचारों की एकता उनमें समान दृष्टिकोण उत्पन्न करती है। दलीय सदस्यता उनमें कार्य, प्रयोजन और उद्देश्य की एकता उत्पन्न करती है। इस तरह मन्त्रिपरिषद् के सदस्य सार्वजनिक विषयों पर प्राय: समान दृष्टिकोण अपनाते हैं।

4.5.3 कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ सम्बन्ध :- संसदीय प्रणाली में सामान्यतया यही होता है कि मन्त्रिपरिषद् का निर्माण संसद सदस्यों में से ही होता है। यदि गैर संसद सदस्य को मंत्री बनाया जाता है तो उसे छ: माह में संसद की सदस्यता प्राप्त करनी होती है अन्यथा मन्त्रिपद से वंचित होना पड़ता है। अपनी दोहरी स्थिति के कारण मन्त्री कार्यपालिका सम्बन्धी और संसदीय दोनों कार्यों का निर्वाह करते हैं। ब्रिटेन में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका एक दूसरे पर निर्भर करती हैं। वे न केवल एक-दूसरे से मिलकर कार्य करती हैं बल्कि वे एक-दूसरे के पूरक के रूप में भी कार्य करती हैं। इसी कारण मन्त्रिपरिषद् अपने प्रत्येक कार्य के लिए वह संसद के प्रति उत्तरदायी होती हैं।

4. 5. 4 मन्त्रिपरिषद् को लोकसदन विघटन करने का अधिकार :- मन्त्रिमण्डल को यह अधिकार है कि वह लोकसदन को विघटित करा दे। अपने किसी कार्य के लिए यदि मन्त्रिमण्डल संसद का विश्वास प्राप्त न कर सके या मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत किसी विधेयक को संसद पारित न कर सके और यदि मन्त्रिमण्डल यह समझे कि उसे राष्ट्र का समर्थन प्राप्त है तो वह लोकसदन को भंग कराके पुन: निर्वाचन करा सकता है। सम्राट मन्त्रिपरिषद् की सिफारिश पर लोकसदन को विघटित कर देता है।

4.5.5 मन्त्रियों का सामूहिक उत्तरदायित्व :- यह ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है। यह उसकी कार्य विधि का आधार है। लार्ड मार्ले ने कहा है कि ''मन्त्रिमण्डल का प्रथम चिह्न संयुक्त एवं अविभाज्य उत्तरदायित्व है।'' सामूहिक उत्तरदायित्व का अर्थ है, टीम भावना, पारस्परिक सहयोग, पारस्परिक विश्वास और सामान्य मोर्चे की भावना। मन्त्रिमण्डल अपनी नीतियों, कार्यों, योजनाओं और प्रशासन संचालन के लिए संसद के प्रति और संसद के माध्यम से निर्वाचक मण्डल के प्रति, सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। मन्त्रिमण्डल को संसद के समक्ष अपनी नीतियों और कार्यों को स्पष्ट करना पड़ता है। यदि संसद मन्त्रिमण्डल की नीतियों का समर्थन नहीं करती अथवा सरकार किसी महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर पराजित हो जाती है तो मन्त्रिमण्डल के पास दो विकल्प हैं - 1. प्रधानमंत्री राजा को परामर्श देकर संसद को तत्काल भंग करा दे अथवा 2. मन्त्रिमण्डल अपना त्यागपत्र दे दे। अर्थात् सामूहिक उत्तरदायित्व सिद्धान्त में ''मंत्री एक साथ तैरते और एक साथ डूबते हैं।'' उनका ''उत्थान और पतन'' एक साथ होता है। वे ''सब एक के लिए और एक सबके लिए होता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.5.6 निजी उत्तरदायित्व :- मन्त्रिमण्डल के सदस्य सामूहिक उत्तरदायित्व के अतिरिक्त प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग की भूलों के लिए भी उत्तरदायी होते हैं। यदि किसी मन्त्रालय की भूलें गम्भीर हों तो उसके मन्त्री को त्यागपत्र देना पड़ता है। उदाहरणत: एटली मन्त्रिमण्डल के वित्तमन्त्री ह्यूग डेल्टन को 1947 ई. में इसलिए त्यागपत्र देना पड़ा कि बजट के संसद में प्रस्तुत होने से पूर्व उसके कुछ अंश एक पत्र में प्रकाशित हो गये थे। मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपने गलत आचरण के लिए स्वयं ही उत्तरदायी होते हैं।

4.5.7 गोपनीयता :- मन्त्रिमण्डल की बैठके, उसकी कार्यवाही के विवरण, विषयों पर किया गया विचार-विमर्श एवं उन पर व्यक्त किये गये विचारों को गुप्त रखा जाता है। किसी भी मन्त्री को मन्त्रिमण्डल की गोपनीयता के सिद्धान्त की उल्लंघना करने अथवा उसका रहस्योद्घाटन करने का अधिकार नहीं है। प्रिवी कौन्सिल की शपथ जहाँ मन्त्रियों को गोपनीयता बनाये रखने के लिए वचनबद्ध करती है वहाँ 1920 ई. का राजकीय गोपनीय अधिनियम गोपनीयता की उल्लंघना को दण्डनीय अपराध बनाता है। यदि मन्त्रिपरिषद का कोई सदस्य गोपनीयता के सिद्धान्त का उल्लंघन करता है तो उसे बर्खास्त किया जा सकता है।

4.5.8 एकता :- मन्त्रिमण्डल एक एकता है, एक इकाई है। यह विशेषता मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को बाध्य करती है कि वे संसद के समक्ष अपना संयुक्त पक्ष प्रस्तुत करें, सदन में एकता बनाये रखें और सार्वजनिक रूप से (संसद के अन्दर व बाहर) सरकार की नीतियों का समर्थन करें। कोई मन्त्री मन्त्रिमण्डल का सदस्य होकर उसके विरूद्ध नहीं हो सकता। अथवा नीतिगत मामलों में विरोधी वक्तव्य नहीं दे सकता। अगर वह ऐसा करता है तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता है।

4.6 मन्त्रिपरिषद् का गठन

ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् का निर्माण राजा (रानी) करता है परन्तु यह केवल औपचारिक है, क्योंकि वह अपनी इच्छा से इसका निर्माण नहीं कर सकता। सर्वप्रथम राजा प्रधानमंत्री को नियुक्त करता है और तब उसके परामर्श पर वह अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है। प्रधानमंत्री सामान्यत: लोकसदन के बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है। यदि लोकसदन में किसी भी दल का बहुमत नहीं होता है तो प्रधानमंत्री पद पर उस व्यक्ति को आसीन किया जाता है जो संयुक्त मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने में समर्थ हो। हर नया प्रधानमंत्री अपने मन्त्रियों की सूची तैयार करता है, उसे राजा के सम्मुख प्रस्तुत करता है और राजा आवश्यक परामर्श आदि देने के बाद सदैव ही इस सूची को स्वीकार कर लेता है। मन्त्रियों के चयन में कुछ प्रचलित अभिसमयों, नियमों और व्यवहार की दृष्टि से प्रधानमंत्री को निम्नलिखित बातों को ध्यान रखना पड़ता है-

1. मन्त्रियों का चयन अपने ही दल के सदस्यों में से करें।
2. सभी क्षेत्रीय हितों की तुष्टि करने का प्रयास करें।
3. मन्त्रियों का चयन संसद के दोनों सदनों में से करें।
4. दल के वरिष्ठ सदस्यों को मन्त्रिमण्डल में शामिल करें।

अत: मन्त्रिपरिषद् के सभी सदस्य संसद के सदस्य, होते हैं। यदि कोई मन्त्री संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं होता तो उसे छ: माह के अन्दर संसद का सदस्य बनना पड़ता है अन्यथा उसे त्यागपत्र देना पड़ता है।

4.7 मन्त्रिपरिषद् के कार्य एवं शक्तियाँ

ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् कार्यों व अधिकारों की दृष्टि से सर्वोच्च नियन्त्रक शक्ति है। राजपद के सब अधिकारों, शक्तियों और कर्त्तव्यों का प्रयोग राजा के नाम से मन्त्रिपरिषद् ही करती है। इस शक्तिवान संस्था की शक्ति का आधार कानूनी न होकर, परम्परागत है। कानूनी दृष्टि से मन्त्रिपरिषद् राजा की परामर्शदात्री समिति मात्र है जबकि परम्परा अथवा अभिसमयों की दृष्टि से वह वास्तविक कार्यपालिका बन गई है। राजतन्त्र के लोकतन्त्रीकरण की प्रक्रिया में राजा के पद की शक्तियाँ जैसे-जैसे कम होती गई, मन्त्रिपरिषद् की शक्तियां वैसे-वैसे बढ़ती गयी हैं। आज जैसा कि सर जॉन मैरियट कहते हैं, ''यह एक ऐसा केन्द्र बिन्दू है, जिसके चारों ओर समस्त राजनीतिक यन्त्र घूमता है।'' ग्लेडस्टन के अनुसार ''मन्त्रिपरिषद् वह सूर्य पिण्ड है जिसके चारों ओर अन्य पिण्ड घूमते रहते हैं।'' हाल्डैन समिति के प्रतिवेदन में मन्त्रिपरिषद् को 'सम्पूर्ण शासन तन्त्र का मुख्य आधार' बताया गया है। अत: मन्त्रिपरिषद् के कार्यों एवं शक्तियों की व्यवस्था निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.7.1 विधायी कार्य :- विधि या कानून बनाने के सम्बन्ध में समस्त शक्तियाँ व्यवस्थापिका को प्राप्त हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में संसद पर मन्त्रिपरिषद् नियन्त्रण रखती है। मन्त्रिपरिषद् कानून-निर्माण में पहल करती है और हर कदम पर कानून का स्वरूप निर्धारित करती है। अर्थात् मन्त्रिमण्डल सारे कार्यों की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता है। विधेयक पेश करना, उसकी व्याख्या करना और उसे पारित कराना मन्त्रिमण्डल का ही कार्य है। यह अक्षरश: सत्य है कि आजकल व्यवहार में, विद्यायनी मामलों में मन्त्रिपरिषद् संसद को संचालित तथा निर्देशित करती है। वह संसद का नेतृत्व करती है। इसलिए आज मन्त्रिपरिषद् विधायकी कार्य के मामले में संसद पर पूर्णतया हावी हो गई है। कार्टर, रैने और हर्ज ने मन्त्रिपरिषद् को 'लघु व्यवस्थापिका' की संज्ञा दी है।

4.7.2 कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य :- मन्त्रिपरिषद्, इंग्लैण्ड की वास्तविक कार्यपालिका है। मन्त्रिपरिषद् आन्तरिक तथा बाह्य दोनों क्षेत्रों में शासन की नीति निर्धारित करती है। सन् 1918 ई. में 'शासन यन्त्र समिति' के अनुसार कार्यपालक-क्षेत्र में मन्त्रिपरिषद् के तीन मुख्य कार्य हैं-

1. संसद में प्रस्तुत की जाने वाली नीति का अन्तिम निर्धारण,
2. संसद द्वारा निर्धारित नीति के अनुरूप राष्ट्रीय कार्यपालिका का सर्वोच्च नियन्त्रण,
3. राज्य के विभिन्न विभागों के अधिकारियों की सीमा का निर्धारण और उनमें सदा सामंजस्य बनाए रखना।

मन्त्रिगण विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते है। अपने विभागों का संचालन करना और उनकी गतिविधियों पर नजर रखना उनका ही दायित्व होता है। मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय नीतियों का निर्माता है। बार्कर ने कहा है कि ''मन्त्रिमण्डल नीति का चुम्बक है।'' वह समस्त राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करता है और उन पर निर्णय देता है। मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को सम्बन्धित विभाग क्रियान्वित करते हैं। अपने निर्णयों को वैधानिक रूप देने के लिए वह प्रशासनिक विधियों और संसदीय विधियों के निर्माण का मार्ग चुनता है। मन्त्रिमण्डल, विधि-निर्माण के क्षेत्र में संसद का नेतृत्व करता है। स्पष्ट है कि मन्त्रिमण्डल का कार्यपालक कार्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

4.7.3 वित्त सम्बन्धी कार्य :- वित्तीय क्षेत्र में भी मन्त्रिमण्डल की शक्तियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। मन्त्रिमण्डल ही राज्य के समस्त व्यय के लिए उत्तरदायी होता है और समस्त व्यय के लिए आवश्यक संसाधन जुटाना उसी का काम है। वार्षिक राजकीय बजट (Budget) को प्रस्तुत करना मन्त्रिमण्डल का अधिकार है। वित्त मंत्री सम्पूर्ण देश के लिए वार्षिक बजट बनाता है और उसे संसद के समक्ष रखता है। आगामी वर्ष में किस मद पर कितना व्यय होगा और इस व्यय के लिए साधन कैसे जुटाए जायेंगे -यह सब वही तय करता है। कौनसे नये कर लगाना, पुराने करों को समाप्त करना अथवा उनकी वर्तमान दरों को घटाना-बढ़ाना इत्यादि वित्त-मंत्री का ही दायित्व है।

4.7.4 समन्वयकारी कार्य :- मन्त्रिमण्डल सरकार के विभिन्न विभागों को एक सूत्र में बांधता है, उनके अधिकार क्षेत्र की सीमायें निर्धारित करता है, उनके मतभेदों एवं अन्तर्विरोधों को दूर करती है। कार्य की पुनरावृति को रोकता है, नीतियों एवं योजनाओं की कार्यान्विति में उत्पन्न होने वाली असंगतियों को दूर करता है,

4.7.5 समस्याओं का निवारण :- मन्त्रिमण्डल को अकस्मात् उत्पन्न होने वाली राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं का तत्काल निवारण करना पड़ता है। उसे अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण स्पष्ट करना पड़ता है।

4.7.6 अन्य कार्य :- मन्त्रिमण्डल द्वारा और भी अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं, यथा- 1. मुख्यत: गृहमंत्री के परामर्श पर राजा द्वारा क्षमा के अपने विशेषाधिकार का प्रयोग और प्रधानमंत्री के परामर्श पर उपाधियों का वितरण किया जाता है, 2. देश-विदेश में सभी महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ राजा द्वारा मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर की जाती है, 3.महत्त्वपूर्ण न्यायालयों के न्यायाधीश राजा द्वारा लॉर्ड चॉसलर (जो मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है) के परामर्शानुसार नियुक्त किए जाते हैं।

वास्तव में, मन्त्रिपरिषद् के अधिकार और कार्य बहुत ही व्यापक है, वह उन सभी कार्यों को करती है जो वैधानिक दृष्टि से सम्राट के अधिकार बताये जाते हैं। विधायनी, कार्यपालिका तथा वित्तीय सभी क्षेत्रों में उसे महान् शक्तियाँ प्राप्त हैं। देश के समूचे प्रशासन पर उसका नियन्त्रण रहता है। लॉवेल ने मन्त्रिपरिषद् की केन्द्रीय स्थिति का सही वर्णन करने के लिए 'चक्रों के भीतर चक्र' की उपमा का प्रयोग किया है। उसके अनुसार '' सरकार का शासन-यन्त्र चक्रों के भीतर चक्र वाला है, बाहरी घेरे में कॉमन्स

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सभा में बहुमत रखने वाला दल आता है, अगले घेरे में मन्त्रिपरिषद् आता है जिसमें उस दल के सर्वाधिक सक्रिय सदस्य होते हैं और सबसे छोटा घेरा मन्त्रिमण्डल का होता है जिसमें दल के वास्तविक नेता या नायक होते हैं।''

4.8 क्या ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् अधिनायक है ?

मन्त्रिपरिषद् के कार्यों और उसकी शक्तियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विधि–निर्माण और प्रशासन दोनों ही क्षेत्रों में मन्त्रिपरिषद् प्रधान है। रेम्जेम्योर का विचार है कि इतनी व्यापक और विशाल शक्ति से युक्त होने के कारण मन्त्रिपरिषद् वास्तव में अधिनायक बन गयी है क्योंकि अपने बहुमत के बल पर वह अपने एकमात्र अंकुश संसदीय नियन्त्रण से भी मुक्त हो गया है। संसद का परम्परागत सिद्धान्त है कि वह जनता की ओर से जनता के हित में सरकार को सीमित और नियन्त्रित करे, परन्तु लोकसदन में बहुमत का नेतृत्व करने के कारण मन्त्रिपरिषद् की शक्तियाँ इतनी बढ़ गई हैं कि वह संसद की नियन्त्रण शक्ति के अधीन नही रही है, अपितु बहुमत के बल पर संसद का मनोवांछित प्रयोग करती है। दलीय संगठन और अनुशासन इतना कठोर एवं दृढ़ होता है कि संसद के सदस्यगण प्राय: सचेतकों की अवज्ञा करने का साहस नहीं करते। इस प्रकार संसद मन्त्रिपरिषद् के प्रस्तावों का बहुधा यथावत् समर्थन करने के लिए विवश रहती है।

यह सच है कि रैम्जेम्योर, लार्ड हेवर्ट आदि ने यह मत प्रतिपादित किया है कि इंग्लैण्ड में मन्त्रिपरिषद् का अधिनायकतन्त्र है। परन्तु लॉवेल, जैनिंग्स, लॉस्की आदि ने इस मत का खंडन किया है उनके अनुसार मन्त्रिपरिषद् पूर्ण अधिनायक न आज है और न कभी बन सकती है। व्यवहार में, मन्त्रिपरिषद् की शक्ति संसद से अधिक अवश्य है, पर वह अधिनायक की तरह परमसत्तावान नही है। लॉस्की का मत है कि दल की शक्ति के कारण मन्त्रिपरिषद् की शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि अवश्य हो गई है, किन्तु उसे तानाशाह कभी नहीं कहा जा सकता। अत: मन्त्रिपरिषद् पर निम्नलिखित अंकुश हैं तथा वह अधिनायक नहीं है–

4.8.1. विरोधी दल का अस्तित्व :– ब्रिटेन में शक्तिशाली विरोधी दल का अस्तित्व मन्त्रिपरिषद् की शक्ति पर एक बहुत ही प्रभावशाली प्रतिबन्ध है। मन्त्रिपरिषद् किसी भी परिस्थिति में अपने विरोधियों की न्यायसंगत आलोचनाओं की अवहेलना नहीं कर सकती। यदि वह ऐसा करेगी तो लोकमत उसके विरूद्ध हो जायेगा। संसद के अन्दर तथा बाहर, विरोधी दल का अंकुश रहता है।

4.8.2. संसद का नियन्त्रण :– संवैधानिक रूप से ब्रिटिश संसद के पास ऐसे हथियार हैं जिन्हें वह तलवार की तरह मन्त्रिपरिषद् के सिर पर लटका सकती है और आवश्यकता पड़ने पर उसका काम तमाम कर सकती है। प्रश्नों के द्वारा मन्त्रियों को गलत काम करने से रोका जा सकता है। संसदीय आलोचना द्वारा जनमत उसके विरूद्ध किया जा सकता है। कटौती प्रस्ताव व काम–रोको प्रस्तावों द्वारा मन्त्रिपरिषद् की त्रुटियाँ बताई जा सकती हैं। निन्दा और अविश्वास के प्रस्तावों द्वारा उसे त्यागपत्र देने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

4.8.3. जनमत का भय :– मन्त्रिपरिषद् अधिनायकत्व के मार्ग में एक प्रभावपूर्ण अवरोध जनमत की शक्ति है। ब्रिटिश जनता राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही जागरूक है, अत: कोई भी मन्त्रिपरिषद् तानाशाही का मार्ग नहीं अपना सकती। यदि ऐसा किया गया तो न केवल संसद में जनप्रतिनिधियों के हाथों उसके पराजित होने का भय है बल्कि निर्वाचन में भी उसकी पराजय निश्चित है। प्रबल बहुमत वाली सरकार को भी जनमत के आगे झुकना पड़ता है। सन् 1940 ई. में जनमत ने ही चेम्बरलेन की सरकार को त्यागपत्र देने के लिए विवश किया था।

4.8.4. सम्राट का विरोध :– सम्राट भी मन्त्रिपरिषद् की तानाशाही पर प्रबल नियन्त्रण रखती है। सम्राट शासन–नीति और सरकार के कार्यों की आलोचना कर सकता है। सम्राट मन्त्रियों को चेतावनी दे सकता है। यदि मन्त्रियों ने चेतावनी के विपरीत कार्य किया और राष्ट्र पर कोई संकट आ गया तथा जनता को ज्ञात हो गया कि सम्राट की चेतावनी के उपरान्त भी यह कार्य किया गया है, तो वह आगमी चुनाव में मन्त्रियों से प्रतिशोध लिए बिना नहीं रहेगी ।

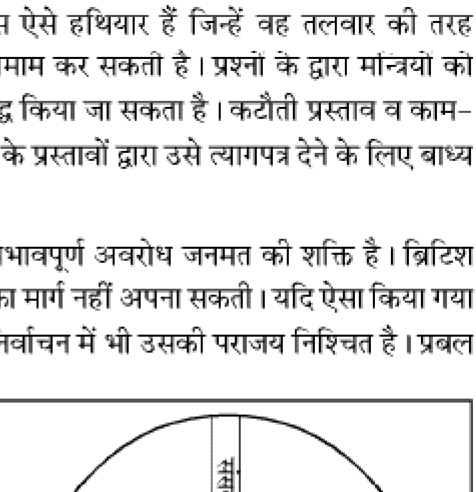

ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् की तानाशाही नहीं

4. 9. सारांश :–

निष्कर्ष रूप में, कहा जा सकता है कि ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् संसद से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अधिक शक्तिशाली अवश्य है, किन्तु अधिनायक नहीं है। मन्त्रिपरिषद् का अधिनायकतन्त्र संवैधानिक है, निरंकुश नही, उत्तरदायी है, स्वेच्छाचारी नहीं। मन्त्रिपरिषद् बहुमत के मद में चूर होकर विरोधी दल या जनमत की अवहेलना नहीं कर सकती। सदन की प्रचलित प्रथाएं भी बहुमत दल के शासक को अधिनायकवादी होने से बचाती हैं। विरोधी दल को शासक-दल पर अंकुश रखने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। निष्कर्षत: मन्त्रिपरिषद् जनमत की उपेक्षा नहीं कर सकती। सरकार जनता की इच्छा को व्यावहारिक रूप देने का साधन है। अत: मन्त्रिपरिषद् ''वह धुरी है जिसके चारों ओर समस्त शासन-यन्त्र घूमता है।''

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् की रचना एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए।
2. ''ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् वह धुरी है जिस पर सम्पूर्ण राजनीतिक मशीनरी घूमती है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. ''वर्तमान युग में लोकसदन मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण नहीं रखता, बल्कि मन्त्रिमण्डल ही लोकसदन पर नियन्त्रण रखता है।'' इसकी व्याख्या कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रिवी कौन्सिल पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. क्या ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डलीय अधिनायकत्व है ? स्पष्ट करो।
3. ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् की चार विशेषताओं का वर्णन करों।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मन्त्रिपरिषद तथा मन्त्रिमण्डल में अन्तर लिखो।
2. इंग्लैण्ड में संयुक्त मन्त्रिमण्डल कब-कब बने ?
3. ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् की उत्पत्ति किससे हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-05
ब्रिटिश प्रधानमंत्री

संरचना

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 प्रधानमंत्री पद का विकास
    5.2.1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति
    5.2.2 प्रधानमंत्री पद के लिए योग्यताएँ
5.3 प्रधानमंत्री के कार्य और शक्तियाँ
    5.3.1 मन्त्रिमण्डल का निर्माण
    5.3.2 मन्त्रिमण्डल का संचालन
    5.3.3 मन्त्रिमण्डल का अंत
    5.3.4 नीतियों का निर्माता
    5.3.5 सम्राट को परामर्श देना
    5.3.6 दल का नेता
    5.3.7 कॉमन सभा को भंग करने की शक्ति
    5.3.8 राष्ट्र का नायक
    5.3.9 आपातकालीन अधिकार
    5.3.10 लोकसदन का नेतृत्व
5.4 क्या ब्रिटिश प्रधानमंत्री को अधिनायक कहना उपयुक्त होगा ?
5.5 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.0 उद्देश्य

इस खंड के अन्तर्गत ब्रिटिश प्रधानमंत्री पद का विकास, नियुक्ति और शक्तियों का उल्लेख किया गया है।

इस पद की वास्तविक स्थिति जानने के लिए आप –

- ब्रिटिश प्रधानमंत्री पद के विकासमय रूप को समझ सकेंगे,
- प्रधानमंत्री पद की गरिमा एवं प्रतिष्ठा को समझ सकेंगे,
- संसदीय शासन में वास्तविक कार्यपालिका शक्तियों के स्रोत की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- क्या ब्रिटिश प्रधानमंत्री अधिनायक वाद का प्रतीक है, की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में प्रधानमंत्री ही व्यवहारत: सर्वोच्च कार्यपालिका का अध्यक्ष है। सम्राट एक वैकल्पिक प्रधान है, जिसकी सम्पूर्ण शक्तियों का प्रयोग वास्तव में मन्त्रिमण्डल करता है। शक्तियों का यह प्रयोग अन्ततोगत्वा प्रधानमंत्री के हाथ में रहता है। संकट काल में तो उसकी शक्तियों का इस सीमा तक प्रसार हो जाता है कि वर्तमान अधिनायकों की शक्तियों को भी लांघ देता है। यही कारण है कि आजकल कुछ क्षेत्रों में ब्रिटिश सरकार को 'मन्त्रिमण्डल सरकार' के स्थान पर 'प्रधानमन्त्रीय सरकार' तक कहा जाने लगा है। फिर भी वह निरंकुश नहीं है क्योंकि उस पर अपने साथियों, संसद और जनता का निरन्तर अंकुश बना रहता है। इस प्रकार प्रधानमंत्री शासन व्यवस्था का केन्द्र है और उसकी स्थिति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। जेनिंग्स के अनुसार, ''प्रधानमंत्री केवल समकक्षों में प्रथम ही नहीं है और न केवल सितारों के बीच चन्द्रमां ही, बल्कि वह तो सूर्य के समान है जिसके चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते है।'' अत: प्रधानमंत्री को सम्पूर्ण शासन व्यवस्था की आधारशिला कहना अधिक उपयुक्त होगा।

5.2 प्रधानमंत्री पद का विकास

ब्रिटेन की अन्य संस्थाओं की भांति प्रधानमंत्री का पद भी अनौपचारिक है, उसका कोई कानूनी आधार नहीं है। इस पद का निर्माण नहीं हुआ। इसका धीरे-धीरे विकास हुआ है। अठारहवीं शताब्दी में, हेनोवेरियन वंश के सम्राट जार्ज जर्मन राष्ट्रीयता के थे। वे ब्रिटिश राजनीति, संस्थाओं एवं रीति-रिवाजों तथा अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ थे। अत: उन्होंने मन्त्रिमण्डल की बैठकों से अनुपस्थित रहना शुरू कर दिया। जार्ज 2 और जार्ज 3 ने मंत्रिमण्डल की बैठकों से अनुपस्थित रहने की परम्परा को जारी रखा। सम्राट को बैठकों की अध्यक्षता करने, सम्राट को बैठकों के विवरणों की सूचना देने एवं मन्त्रिमण्डल के परामर्श को सम्राट द्वारा स्वीकार करने के लिए एक प्रमुख मंत्री की आवश्यकता होती थी। इस प्रमुख मंत्री ने समय पाकर प्रधानमंत्री का पद ग्रहण कर लिया। इस प्रकार 1721 ई. में सर राबर्ट वालपोल प्रथम प्रधानमंत्री बना। इस पद का सबसे पहले उल्लेख सन् 1878 ई. में लार्ड बीकन्सफील्ड ने बर्लिन की सन्धि पर हस्ताक्षर करते वक्त किया। इसके बाद सन् 1937 ई. के क्राउन मंत्री अधिनियम में पहली बार कानूनी रूप में प्रधानमंत्री के पद को मान्यता प्रदान की गई।

5. 2. 1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति :- सैद्धान्तिक रूप में, प्रधानमंत्री की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है, किन्तु व्यवहार में लोकसदन के बहुमत दल के नेता को ही सम्राट के द्वारा प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया जाता है। केवल कुछ अपवादस्वरूप स्थितियों में राजा अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है। जब लोकसदन में किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत न हो। सन् 1916 तथा 1931 ई. में ऐसा ही हुआ था। दोनों समय संयुक्त सरकारें बनी थीं और राजा को स्वविवेक से निर्णय लेना पड़ा था। प्रधानमंत्री एस्क्वीथ के त्यागपत्र के बाद राजा ने बोनर लॉ को प्रधानमंत्री पद के लिए आमन्त्रित किया था। बोनर लॉ लोकसदन में दूसरे बड़े दल का नेता था। बाद में लॉयड जार्ज को प्रधानमंत्री उसी अवस्था में बनाया गया, जब लॉ ने इन्कार कर दिया। प्रधानमंत्री पद के सम्बन्ध मे अब यह सर्वमान्य धारणा बन गई है कि प्रधानमंत्री लोकसदन में से ही चुना जाए, इसका कारण यह है कि प्रधानमंत्री व उसका मन्त्रिमण्डल केवल लोकसदन के प्रति उत्तरदायी होता है।

5. 2. 2 प्रधानमंत्री पद के लिए योग्यताएँ :- यद्यपि प्रधानमंत्री पद के लिए कोई निश्चित योग्यता निर्धारित नहीं है, तथापि व्यवहारत: उसके लिए कुछ योग्यताओं और व्यक्तिगत गुणों का होना आवश्यक माना जाता है। प्रथम तो संवैधानिक प्रथाओं ने ही यह आवश्यक बना दिया है कि प्रधानमंत्री लोकसदन का सदस्य हो, प्रधानमंत्री लोकसदन के बहुमत दल का नेता होता है।

5. 3 प्रधानमंत्री के कार्य और शक्तियाँ

ब्रिटेन की शासन-व्यवस्था में प्रधानमंत्री की स्थिति निश्चित रूप से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रधानमंत्री के कार्य एवं शक्तियाँ अभिसमय पर आधारित हैं। उसके कार्यों एवं शक्तियों पर कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं है। जैनिंग्स ने इसी कारण प्रधानमंत्री को 'सम्पूर्ण विधान की आधारशिला' बताया है। अत: उसके समान व्यापक सत्ता विश्व में सम्भवत: किसी वैधानिक प्रधान को प्राप्त नहीं है। जब तक उसके दल का संसद में बहुमत रहता है, वह अनेक ऐसे कार्य कर सकता है जो अमेरिका का राष्ट्रपति भी नहीं कर सकता। यही कारण है कि प्रधानमंत्री सम्पूर्ण शासन सूत्र का केन्द्र है। उसे शासन की धुरी, गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र तथा देश का नीति निर्माता माना जाता है। प्रधानमंत्री की प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

5. 3. 1 मन्त्रिमण्डल का निर्माण :- प्रधानमंत्री पद की बागडोर सम्भालने के बाद उसका पहला कर्त्तव्य होता है मन्त्रिमण्डल का निर्माण करना। इसके लिए वह इसके सदस्यों की सूची तैयार करता है जिसे सम्राट विधिवत् स्वीकार कर लेता है। सम्राट द्वारा मन्त्रियों की नियुक्ति करना केवल एक औपचारिकता मात्र है। कौन व्यक्ति मन्त्रिमण्डल में लिया जाएगा, कौन कैबिनेट मंत्री के पद पर नियुक्त किया जाएगा, इसका निर्णय प्रधानमंत्री ही करता है। इस निर्णय में दलीय एकता एवं सुदृढ़ता, राजा की इच्छा, संवैधानिक अभिसमय, राजनीतिक स्थिति, आदि अनेक तत्त्व प्रभावशाली होते हैं, परन्तु अन्तिम निर्णय करना प्रधानमंत्री का अधिकार है। प्रधानमंत्री को अपने सहयोगियों के चयन में विभिन्न वर्गों, विभिन्न धर्मों, विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों तथा दल के प्रभावी राजनीतिज्ञों आदि के प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखना पड़ता है। लॉस्की ने ठीक ही कहा है, ''प्रधानमंत्री वह केन्द्र है जिस पर मन्त्रिमण्डल का जीवन व उसका अन्त निर्भर करता है।''

5. 3. 2 मन्त्रिमण्डल का संचालन :- प्रधानमंत्री न केवल मन्त्रिमण्डल का निर्माण करता है, बल्कि उसे जीवन और गति भी प्रदान करता है। वही अपने मन्त्रियों में विभागों का वितरण करता है। फिर भी कुछ सदस्य इतने प्रभावशाली और सशक्त हो सकते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हैं कि विभाग वितरण करते समय प्रधानमंत्री उनकी इच्छा का आदर करे, परन्तु साधारणत: विभागों के वितरण के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री का निर्णय अन्तिम होता है।

प्रधानमंत्री को यह देखना पड़ता है कि मन्त्रिमण्डल का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। समस्त प्रशासन का मुखियाँ होने के नाते वह सभी विभागों का निरीक्षण करता है। कभी-कभी जब मन्त्रियों मे परस्पर मतभेद उठ खड़े होते है, तो प्रधानमंत्री हस्तक्षेप कर मतभेदों को दूर करता है। इस प्रकार मन्त्रिमण्डलीय व्यवहार को सहयोग एवं सौहार्द्रपूर्ण बनाए रखने का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही है। वह सबको एक सूत्र में बांधकर उनमें परस्पर सहयोग बनाए रखता है।

5. 3. 3 मन्त्रिमण्डल का अन्त :- प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल का सिर्फ निर्माता एवं संयोजक ही नहीं होता, बल्कि संहारकर्त्ता भी होता है। मन्त्रियों के मन्त्रित्व की समाप्ति तथा मन्त्रिमण्डल के भंग करने के विषय में उसकी इच्छा का वस्तुत: पर्याप्त महत्व होता है। सब मन्त्रियों का भविष्य उसी के साथ बंधा हुआ होता है। प्रधानमंत्री के साथ ही अन्य मंत्री भी तैरते तथा डूबते हैं। उसके त्यागपत्र के साथ पूरा मन्त्रिमण्डल भंग हो जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल के निर्माण, जीवन और मरण का केन्द्र-बिन्दु है। वह मन्त्रिमण्डल रूपी मेहराब की आधारशिला है, परन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति की तरह वह मन्त्रिमण्डल का स्वामी नहीं है।

5. 3. 4 नीतियों का निर्माता :- सिद्धान्तत: देश का शासन-प्रमुख राजा है, पर व्यवहारत: शासन-प्रमुख के सभी अधिकारों का प्रयोग प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। प्रधानमंत्री ही राजा के नाम पर देश का पूरा शासन-तन्त्र संचालित करता है। देश की परराष्ट्र-नीति के सम्बन्ध में समस्त महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ उसी के द्वारा होती हैं, न कि विदेश मंत्री के द्वारा। परराष्ट्र मन्त्रालय चाहे प्रधानमंत्री के पास हो या किसी और के पास, परराष्ट्र सम्बन्धों का सुचारू संचालन उसका दायित्व समझा जाता है। वह देश की सभी नीतियों-गृह, वित्त, व्यापारिक, आयात-निर्यात नीति का भी निर्माता है।

5. 3. 5 सम्राट को परामर्श देना :- प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल और सम्राट के मध्य कड़ी का कार्य करता है। वह मन्त्रिमण्डल के निर्णयों और विचारों की सूचना राजा को देता है और वह उसके परामर्श को मन्त्रिमण्डल तक पहुँचाता है। आपातकाल में राजा सर्वप्रथम प्रधानमंत्री से ही सलाह लेता है। अत: प्रधानमंत्री सम्राट के निजी परामर्शदाता के रूप में भी कार्य करता है। सम्राट्, प्रधानमंत्री की सलाह को अत्यधिक महत्त्व देता है।

5. 3. 6 दल का नेता :- शासन का प्रधान होने के अतिरिक्त प्रधानमंत्री बहुमत दल का नेता होता है और उसकी सर्वोच्च शक्ति का रहस्य उसकी सुदृढ़ दलीय स्थिति ही है। दल से अलग होने पर प्रधानमंत्री की राजनीतिक मृत्यु हो सकती है। अत: प्रधानमंत्री दल पर अपने नियन्त्रण को बनाये रखने का निरन्तर प्रयास करता है। प्रधानमंत्री को जनमत का निरन्तर ध्यान रखना पड़ता है और नीतियों एवं कार्यक्रमों में वांछित परिवर्तनों को स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु जहाँ प्रधानमंत्री दल की उपेक्षा नहीं कर सकता, वहाँ दल भी प्रधानमंत्री की उपेक्षा नहीं कर सकता। प्रधानमंत्री दल का मूर्तरूप होता है। वह दल के संगठन एवं एकता का प्रतीक होता है।

5. 3. 7 कॉमन सभा को भंग करने की शक्ति :- संसद के अधिवेशनों को बुलाना, उनका सत्रावसान करना तथा उसे भंग करना सम्प्रभु का संवैधानिक अधिकार है। परन्तु उसके ये अधिकार औपचारिक मात्र हैं। व्यवहार में, इस अधिकार का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। प्रधानमंत्री के परामर्श पर सम्प्रभु संसद के अधिवेशनों को बुलाता है, उनका सत्रावसान करता है तथा कॉमन सभा को भंग करता है। कॉमन सभा को समय से पूर्व भंग कराने की शक्ति प्रधानमंत्री के हाथों में ऐसा अस्त्र है जिसके माध्यम से वह न केवल अपने दल के सदस्यों को नियन्त्रित करता है बल्कि विपक्षी दलों के सदस्यों पर भी नियन्त्रण स्थापित करता है।

5. 3. 8 राष्ट्र का नायक :- वस्तुत: निर्वाचन के द्वारा प्रधानमंत्री सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतीक बन जाता है। उसके व्यक्तित्व में दल की प्रतिष्ठा और शक्ति समाहित हो जाती है और तब उसे नेता पद से निकाल फेंकना अत्यधिक दुष्कर कार्य हो जाता है। राष्ट्र नायक के रूप में प्रधानमंत्री की स्थिति तब स्पष्ट होती है जब कई अवसरों पर प्रधानमंत्री के नाम पर ही चुनाव लड़ा जाता है। 1945 ई. का आम चुनाव अनुदार दल द्वारा प्रधानमंत्री चर्चिल के नाम पर लड़ा गया था और अनुदार दल का प्रमुख नारा था - "उसको (चर्चिल को) युद्ध का अधूरा काम पूरा करने दो।" प्रधानमंत्री के नाम पर ही संसदीय चुनाव लड़े जाते हैं।

5. 3. 9 आपातकालीन अधिकार :- ब्रिटिश संविधान में संकटकालीन स्थिति की स्पष्ट व्यवस्था नहीं है। प्राय: व्यवहार में संकट के समय ब्रिटिश प्रधानमंत्री के दायित्व और शक्तियों में वृद्धि हो जाती है। संकट के समय प्रधानमंत्री तानाशाह के रूप में कार्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

करता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण द्वितीय महायुद्ध के समय ब्रिटेन जैसे प्रजातान्त्रिक राज्य में चर्चिल ने हिटलर और मुसोलिनी के समान अधिनायकीय शक्तियों का प्रयोग किया, किन्तु यह प्रयोग संवैधानिक ढ़ग से हुआ। वास्तव में आपातकाल के समय ब्रिटेन में संवैधानिक अधिनायकत्व की स्थापना हो जाती है जिसका तानाशाह प्रधानमंत्री होता है।

5. 3. 10 लोकसदन का नेतृत्व :- लोकसदन में बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री पद प्राप्त होता है और उसके द्वारा शासन के साथ-साथ लोकसदन के नेता के रूप में भी कार्य किया जाता है। प्रधानमंत्री अपने मन्त्रियों के साथ संसद में सम्पूर्ण व्यवस्थापन कार्य का संचालन करता है। वह व्यवस्थापन के सम्बन्ध में नीति निर्धारित कर संसद का पथ-प्रदर्शन करता है। समस्त सरकारी विधेयक उसके निरीक्षण में तथा उसके परामर्श के अनुसार ही तैयार किये जाते हैं और वार्षिक आय-व्यय तैयार करने में भी प्रधानमंत्री का प्रमुख हाथ रहता है।

5. 4 क्या ब्रिटिश प्रधानमंत्री को अधिनायक कहना उपयुक्त होगा ?

ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में प्रधानमंत्री की स्थिति एक अधिनायक के समान है, केवल अन्तर यह है कि एक अधिनायक अथवा तानाशाह मनमाने तरीके से अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है जबकि प्रधानमंत्री स्थापित नियमों, परम्पराओं और अभिसमयों के अनुसार कतिपय प्रतिबन्धों के अधीन रहकर देश का शासन करता है और इन प्रतिबन्धों की अवहेलना करने पर उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। इसलिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री को अधिनायक कहना ठीक नहीं हैं। फाइनर के अनुसार इतना शक्तिशाली होने के उपरान्त भी प्रधानमंत्री 'सीजर' (निरंकुश) नहीं है। वह निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी है। किसी भी समय उसका प्रतिद्वन्द्वी उसका स्थान ले सकता है।

अत: प्रधानमंत्री को अधिनायक इस कारण भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसकी शक्तियाँ मौलिक नहीं हैं वरन् वे उसके दल के बहुमत पर निर्भर करती हैं। दल का बहुमत समाप्त होते ही उसकी शक्तियाँ हिम के समान पिघल जाती है। इंग्लैण्ड की जनता में व्यक्ति-पूजा की भावना केवल सम्राट के प्रति है, प्रधानमंत्री के प्रति नहीं। उसे सदैव संविधान के नियमों और प्रथाओं का सम्मान करना पड़ता है। इसी कारण प्रधानमंत्री को अधिनायक नहीं कहा जा सकता है। उसे लोकतान्त्रिक प्रधान कहा जा सकता है।

5. 5 सरांश

ब्रिटिश शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली है। वह शासन की धुरी है। प्रधानमंत्री की शक्ति तथा उसका महत्त्व जैसा जेनिंग्स ने कहा है- कुछ उसके व्यक्तित्व पर, कुछ उसकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा पर तथा कुछ उसके दल के समर्थन पर निर्भर करता है। "उसका पद आवश्यक रूप से वही बनता है जो उसका अधिकारी उसे बनाना चाहे।" सर आइवर जेनिंग्स के लिए वह "संविधान का मूल पत्थर" है, "वह ऐसा सूर्य है जिसके चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते रहते हैं।" लास्की के लिए वह "सम्पूर्ण तन्त्र की धुरी" है। मेरियट के लिए वह देश का "राजनीतिक शासक" है। वस्तुत: प्रधानमंत्री अपने दल, कॉमन सभा और राष्ट्र का नेता होता है। उसे राष्ट्र का भाग्य विधाता माना जाता है। उसके कृतित्व पर ही देश का भविष्य निर्भर करता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश प्रधानमंत्री की स्थिति एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए।
2. "प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल रूपी मेहराब की आधारशिला है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. क्या ब्रिटिश प्रधानमंत्री अधिनायकवादी हो सकता है ? स्पष्ट करों।
2. ब्रिटिश प्रधानमंत्री पद के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
3. लोकसभा में बहुमत दल के नेता के रूप में प्रधानमंत्री की भूमिका बताओ।
4. सदन के नेता के रूप में प्रधानमंत्री की भूमिका पर प्रकाश डालिये।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?
2. ब्रिटेन में कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ किसमें निहित है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-06

संसद

संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 ब्रिटिश संसद की सम्प्रभुता

6.2.1 विधि निर्माण की असीम शक्ति

6.2.2 विधि की सर्वोच्चता एवं सर्वव्यापकता

6.2.3 संसद संविधान में कोई भी संशोधन कर सकती है

6.2.4 न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था का अभाव

6.3 संसदीय सम्प्रभुता पर सीमाएं

6.3.1 जनमत

6.3.2 नैतिक बन्धन

6.3.3 विधि का शासन

6.3.4 मन्त्रिमण्डल का नियंत्रण

6.3.5 संसद का संगठन

6.4 लोकसभा

6.4.1 लोकसदन की रचना एवं संगठन

6.4.2 सदस्यों के लिए योग्यताएँ

6.4.3 कार्यकाल

6.4.4 सदन का अधिवेशन एवं गणपूर्ति

6.4.5 सदस्यों के वेतन, भत्ते और विशेषाधिकार

6.4.6 पदाधिकारी

6.4.7 लोकसभा की शक्तियाँ एवं कार्य

6.5 लॉर्ड सभा

6.5.1 लॉर्ड सभा की रचना

6.5.2 सदस्यों के विशेषाधिकार

6.5.3 पदाधिकारी

6.5.4 गणपूर्ति

6.5.5 1911 ई. के संसदीय अधिनियम के पूर्व ब्रिटिश राजनीति में लार्ड सभा की स्थिति

6.5.6 सन् 1949 ई. का संसदीय अधिनियम

6.5.7 लॉर्ड सभा की शक्तियाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.6 लॉर्ड सभा की प्रभावहीनता के कारण

6.6.1 अप्रजातान्त्रिक

6.6.2 निहित स्वार्थों का गढ़

6.6.3 अनुदार दल की स्थायी प्रभुता

6.6.4 सदस्यों की उदासीनता

6.6.5 दोषपूर्ण संसदीय प्रक्रिया

6.6.6 शक्तिहीन सदन

6.6.7 विधायी और कार्यकारी शक्तियों की निरर्थकता

6.7 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. 0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत ब्रिटिश संसद का विश्व की जननी संसद के रूप में उल्लेख किया गया है। इस खण्ड में आप ब्रिटिश संसद के दोनों सदनों-कॉमन सभा और लॉर्ड सभा के गठन, कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे एवं संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- ब्रिटिश संसद की सम्प्रभुता को समझ सकेंगे,
- विश्व का शक्तिशाली प्रथम सदन (कॉमन सभा) की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- लार्ड सभा की स्थिति एवं उपयोगिता के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे,
- 1911 एवं 1949 ई. के संसदीय अधिनियमों के महत्त्व को समझ सकेंगे,
- वर्तमान में लॉर्ड सभा की प्रभावहीनता के कारणों का अध्ययन कर सकेंगे।

6. 1 प्रस्तावना

''वैधानिक दृष्टि से संसद की प्रभुसत्ता हमारी राजनीतिक व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता है।'' -डायसी

ब्रिटेन की संसद विश्व में प्राचीनतम संसद मानी जाती है। इसे 'संसदों की जननी' कहा जाता है। लगभग प्रत्येक प्रजातन्त्रात्मक देश ने किसी न किसी रूप में इस संसद का अनुसरण किया है। ब्रिटिश संसद देश की राजनीति का मुख्य केन्द्र है। संसदात्मक शासन प्रणाली होने के कारण समस्त महत्त्वपूर्ण निर्णय संसद के मंच पर ही लिए जाते हैं। ब्रिटेन में संसद के दो सदन हैं- कॉमन सभा (House of Commons) तथा लॉर्ड-सभा (House of Lords)। इन दोनों में लॉर्ड-सभा अधिक प्राचीन है। दोनों सदनों का निर्माण पृथक्-पृथक् सिद्धान्तों के आधार पर हुआ। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक लॉर्ड-सभा कॉमन सभा से अधिक महत्त्वपूर्ण सदन था किन्तु शनैः शनैः उसकी शक्तियाँ घटती गईं और आज वह द्वितीय सदन नहीं बल्कि दूसरे दर्जे का सदन बन गया है। अतः लार्डसभा मुख्यतः एक वंशानुगत सदन है, कॉमन सभा एक निर्वाचित सदन है।

6. 2 ब्रिटिश संसद की सम्प्रभुता

ब्रिटिश संसद का देश की शासन व्यवस्था में अपूर्व महत्त्व है। यह शासन व्यवस्था को संचालित करती है। वह सम्राट को भी अपदस्थ कर सकती है। वह राजा को चुन सकती है और राजतन्त्र को समाप्त कर सकती है। संसद कानून-निर्माण की सामान्य प्रक्रिया के आधार पर ही सभी विषयों के सम्बन्ध में कानून का निर्माण कर सकती है और इसके द्वारा निर्मित कानून को किसी के भी द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है। वस्तुतः वैधानिक और कानूनी रूप में संसद किसी प्रकार भी मर्यादित नहीं है। वह किसी भी विषय से सम्बन्धित कानून बना सकती है। सारांशतः वैधानिक रूप में संसद सब कुछ कर सकती है- चाहे उसका काम पागलपन का हो या बुद्धि का। सैद्धान्तिक दृष्टि से विधि-निर्माण के क्षेत्र में ब्रिटिश संसद को प्राप्त इस असीमित शक्ति को ही 'संसद की सम्प्रभुता' (Sovereignty of Parliament) कहा जाता है। डायसी ने ब्रिटिश संसद के बारे में लिखा है- ''ब्रिटिश संसद वैधानिक रूप से इतनी शक्तिशाली है

कि वह एक शिशु को प्रौढ़ घोषित कर सकती है और यदि वह उचित समझे तो किसी व्यक्ति को अपने ही मामले में न्यायाधीश बना सकती है।''

संसद ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था का मुख्य केन्द्र है। इसलिए वहाँ संसद की सम्प्रभुता अथवा विधायी सर्वोच्चता की बात कही जाती है। इसे मुख्यत: निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है।

6. 2. 1 विधि निर्माण की असीम शक्ति :- संसद की विधायी क्षमता पर कोई संवैधानिक सीमाएं नहीं है। संसद किसी भी प्रकार की विधि का निर्माण कर सकती है, उसमें संशोधन कर सकती है तथा उसे समाप्त कर सकती है। संसद की शक्ति तथा अधिकार क्षेत्र इतना सर्वोपरि और पूर्ण है कि इसकी कोई सीमाएं नहीं बांधी जा सकतीं है। अत: इसे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सैनिक आदि सभी प्रकार के कानून बनाने का अधिकार है।

6. 2. 2 विधि की सर्वोच्चता एवं सर्वव्यापकता :- ब्रिटिश संविधान किसी ऐसे व्यक्ति या निकाय को मान्यता नहीं देती जो संसदीय विधि को प्रतिबन्धित कर सकता है या उसे अस्वीकार कर सकता है। केवल ब्रिटिश संसद ही स्वयं के द्वारा पारित कानूनों को परिवर्तित या रद्द कर सकती है। सर एडवर्ड कोक ने कहा है कि ''जो कुछ संसद करती है उसे पृथ्वी की कोई शक्ति रद्द नहीं कर सकती।'' संसदीय विधि पर न कार्यपालिका वीटो लागू होता है और न न्यायपालिका वीटो। इसके द्वारा बनाये गये कानूनों को सर्वोच्च तथा सर्वव्यापक माना जाता है।

6. 2. 3 संसद संविधान में कोई भी संशोधन कर सकती है :- ब्रिटिश संसद कोई भी कानून बना सकती है। ब्रिटेन का संविधान एक लचीला संविधान है, अत: वहाँ साधारण विधि और संवैधानिक विधि के बीच कोई अन्तर नहीं है। ब्रिटिश संसद किसी भी कानून में अपनी इच्छानुसार कोई भी परिवर्तन कर सकती अथवा उसे रद्द कर सकती है। अर्थात् वह संविधान में बड़े से बड़ा संशोधन कर सकती है। वह पूरी शासन प्रणाली को बदल सकती है। उदाहरणार्थ, यदि वह चाहे, तो इंगलैण्ड में राजतन्त्र के स्थान पर गणतन्त्र स्थापित कर सकती है। उसकी संविधान संशोधन की शक्ति को कोई चुनौती नहीं दी जा सकती है।

6. 2. 4. न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था का अभाव :- अमेरिका, भारत, आदि जिन देशों में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था है, वहाँ संसद की प्रभुसत्ता का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता लेकिन ब्रिटेन में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था नहीं है। अत: ब्रिटिश न्यायालय संसद द्वारा निर्मित किसी विधि या उसके किसी भाग को न तो अवैध घोषित कर सकते और न ही उसे लागू करने से इंकार कर सकते हैं। संसद द्वारा निर्मित प्रत्येक कानून ब्रिटिश न्यायालयों सहित ब्रिटेन की प्रत्येक सत्ता के लिये अनिवार्य रूप से मान्य है।

ब्रिटिश संसद द्वारा अब तक निर्मित कानूनों के आधार पर भी संसद की सम्प्रभुता स्पष्ट हो जाती है। सन् 1701 के उत्तराधिकार सम्बन्धी अधिनियम द्वारा सम्राट पद के उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम निर्धारित किये गये। सन् 1717 के 'सप्तवर्षीय कानून' द्वारा लोकसदन की अवधि 3 वर्ष से बढ़कर 7 वर्ष कर दी गयी तथा 1915 के संसदीय अधिनियम द्वारा इसका कार्यकाल 5 वर्ष कर दिया गया। इसी प्रकार 1911 व 1949 के संसदीय अधिनियम द्वारा लॉर्ड सभा की शक्तियों को सीमित कर दिया गया। डी. लोमे ''ब्रिटिश संसद सब कुछ कर सकती है, केवल स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री नहीं बना सकती है।''

6. 3 संसदीय सम्प्रभुता पर सीमाएं

यद्यपि वैधानिक दृष्टि से ब्रिटिश संसद पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न संस्था है और उसके द्वारा किसी भी प्रकार के कानून का निर्माण किया जा सकता है, किन्तु प्रत्येक वैधानिक तथ्य राजनीतिक सत्य नहीं होता। संसद की यह सम्प्रभुता केवल एक कानूनी कल्पना है, इसमें व्यावहारिक पहलू की उपेक्षा की गई है। व्यवहारत: संसद सभी कुछ नहीं कर सकती, वह हर प्रकार के कानून को निर्मित या निरस्त नहीं कर सकती। वैधानिक रूप से पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न होते हुए भी विषयक और राजनीतिक रूकावटें बाधा डालती है तथा उसकी सम्प्रभुता को सीमित बनाती है। संसदीय सम्प्रभुता व्यवहारत: निम्नलिखित बातों से प्रतिबन्धित होती है -

6. 3. 1 जनमत :- जनमत संसदीय सम्प्रभुता पर यह सबसे बड़ा व्यावहारिक प्रतिबन्ध है। लोकसदन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है और इसके द्वारा जनमत के विरूद्ध किसी कानून के निर्माण का साहस नहीं किया जा सकता। यह ध्यान रखना पड़ता है कि विधि कहीं प्राकृतिक नियमों, जनता की इच्छा और परम्पराओं के विरूद्ध न हो। संसद सदैव अपने-आपको व्यावहारिक मर्यादा में रखती है। संसद जनमत की उपेक्षा करने का दुस्साहस नहीं कर सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. 3. 2 नैतिक बन्धन :- ब्रिटिश संसद वैधानिक दृष्टि से किसी प्रकार की विधि का निर्माण कर सकती है परन्तु व्यवहार में वह समाज की नैतिक या धार्मिक भावनाओं को चोट पहुँचाने वाली किसी विधि का निर्माण नहीं कर सकती। ऐसा होने पर उसका अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा।

6. 3. 3 विधि का शासन :- ब्रिटेन में संसद की सम्प्रभुता और विधि का शासन दोनों एक-दूसरे से मिले-जुले है। 'विधि के शासन' का अर्थ है कि कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान हैं। किसी के पास कोई मनमानी शक्ति नहीं है। जब तक विधि विद्यमान है और उसे किसी अन्य विधि द्वारा समाप्त नहीं किया जाता तब तक संसद स्वयं उसे मानने के लिए बाध्य है। संसद विधि के शासन के विरुद्ध आचरण नहीं कर सकती है।

6. 3. 4 मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण :- समय की कमी और कार्य की अधिकता के कारण संसद अपनी अपार शक्तियों का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाती है। मन्त्रिमण्डल उसका नेतृत्व करता है। विधि-निर्माण, वित्त-नियन्त्रण तथा प्रशासकीय मामलों में मन्त्रिमण्डल का ही प्रभुत्व रहता है। जब तक मन्त्रिमण्डल का सदन में बहुमत रहता है तब तक वह संसद का सेवक नहीं, वरन् स्वामी बना रहता है।

6. 3. 5 अन्तरराष्ट्रीय विधि :- अन्तरराष्ट्रीय विधि के द्वारा भी ब्रिटिश संसद की सम्प्रभुता सीमित हो जाती है। ब्रिटेन में 'वेस्ट रैण्ड गोल्ड माइनिंग कम्पनी बनाम सम्राट' नामक विवाद में यह निर्णय हो चुका है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि राष्ट्रीय विधि का ही एक भाग है और जिस कानून ने सभ्य राष्ट्रों की सहमति प्राप्त कर ली है, उसने हमारे देश की भी सहमति प्राप्त कर ली है। अत: ब्रिटिश संसद अन्तरराष्ट्रीय कानून के विरूद्ध भी किन्ही नियमों का निर्माण नहीं कर सकती।

6. 3. 6 परम्पराएँ :- ब्रिटिश राज-व्यवस्था में परम्पराओं को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संसद के द्वारा ऐसा कोई कानून नहीं बनाया जा सकता जो सुस्थापित परम्पराओं के प्रतिकूल हो। यदि ऐसा किया गया तो जनता संसद के विरूद्ध हो जाएगी। यदि किसी परम्परा की उपयोगिता समाप्त हो जाती है तभी संसद कानून द्वारा उसमें रद्दोबदल कर सकती है।

6. 3. 7 संसद का संगठन :- संसद की सम्प्रभुता एवं शक्ति संसद के स्वयं के संगठन से भी मर्यादित हो गई है। संसद की रचना तीन अवयवों के मिलने से हुई लोकसभा, लॉर्डसभा तथा राजा। आज राजा की शक्ति औपचारिक मात्र रह गई है तथा लॉर्ड सभा लगभग शक्तिहीन हो गई है। व्यवहारत: लोकसभा ही संसद की शक्तियों का प्रयोग करती है, किन्तु फिर भी विधि-निर्माण में विशेष प्रक्रियाओं को अपनाने के कारण ये तीनों अवयव किसी न किसी रूप में एक-दूसरे को नियन्त्रित करते है तथा शक्तियों को केन्द्रीभूत होने से रोकते हैं।

6. 4 लोकसभा (House of Commons)

इंगलैण्ड का लोकसदन विश्व का सबसे पुराना प्रतिनिधि सदन है। लोकसदन को व्यवहार में संसद कहा जाता है। लोकसदन विश्व की सबसे प्राचीन, सबसे शक्तिशाली और सर्वाधिक गौरवमयी व्यवस्थापिका है। जैसाकि राबर्ट वालपोल ने कहा था- ''जब कोई मन्त्री संसद से परामर्श लेता है, तो वह लोकसदन से ही परामर्श लेता है, जब सम्राट संसद को विघटित करता है तब वह लोकसदन को ही विघटित करता है।'' सर रॉबर्ट वाल्पोल के समय तो स्थिति संदिग्ध ही थी, किन्तु 1911 और 1949 ई. के संसदीय अधिनियम पारित होने के बाद वर्तमान समय में जो स्थिति है, उसके सम्बन्ध में न्यूमैन के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''संसद की सम्प्रभुता लोकसदन में निवास करती है।''

6. 4. 1 लोकसदन की रचना एवं संगठन :- लोकसदन ब्रिटिश संसद का निम्न सदन है। इसके सदस्यों की संख्या 650 है। इसका निर्माण प्रत्यक्ष निर्वाचन, सार्वभौम वयस्क मताधिकार और गुप्त मतदान प्रणाली के आधार पर होता है। प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक जो मतदान के दिन 18 वर्ष की आयु ग्रहण कर लेता है, इसके निर्वाचन में अपने मत का प्रयोग कर सकता है। ब्रिटेन में पहले कुछ बहुल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र भी थे, किन्तु 1948 ई. से सभी निर्वाचन क्षेत्र एकल सदस्यीय हो गये हैं। एक निर्वाचन क्षेत्र से एक ही प्रतिनिधि निर्वाचित किया जाता है। लोकसदन के एक सदस्य द्वारा लगभग 75 हजार मतदाताओं का प्रतिनिधित्व किया जाता है।

6. 4. 2 सदस्यों के लिए योग्यताएं :- ब्रिटिश राज्य के सभी स्त्री-पुरुष, चाहे वे साम्राज्य के किसी भी भाग में निवास करते हों, निर्वाचन के लिए उम्मीदवार बन सकते हैं बशर्ते कि-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. वह इंगलैण्ड का नागरिक हो,

2. उसकी आयु 21 वर्ष से ऊपर हो,

3. उसका नाम किसी भी निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं की सूची में हो,

4. वे राष्ट्र तथा देश के प्रति निष्ठा की शपथ लेने को तैयार हों।

ब्रिटेन में भारत के ही समान कोई भी उम्मीदवार किसी भी चुनाव-क्षेत्र से चुनाव लड़ सकता है। उसके लिए आवश्यक नहीं है कि वह उसी निर्वाचन-क्षेत्र का निवासी हो जिसमें वह चुनाव लड़ रहा है। इस सदन में किसी निर्वाचन क्षेत्र विशेष के ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रतिनिधि होते हैं।

6. 4. 3 कार्यकाल :- लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष है। आवश्यकता पड़ने पर लोकसभा अपना कार्यकाल बढ़ा भी सकती है, जिस तरह कि प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध के समय हुआ। प्रधानमंत्री की सिफारिश पर सम्राट लोकसभा को भंग कर सकता है और नए चुनाव करवा सकता है। प्राय: प्रधानमंत्री ऐसा उस समय करता है, जबकि उसके विरूद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पास हो जाए और वह जनता से दुबारा शक्ति प्राप्त करने के लिए अपील करता हो। इसके अतिरिक्त वह अपने लिए अनुकूल राजनीतिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में भी ऐसा कर सकता है।

6. 4. 4 सदन का अधिवेशन एवं गणपूर्ति :- लोकसदन का अधिवेशन लॉर्ड सभा के साथ ही प्रारम्भ होता है। सम्राट संसद के अधिवेशनों को बुलाता है, उसके अधिवेशनों का सत्रावसान करता है तथा उसे विघटित करता है। ग्रेट ब्रिटेन में यह परम्परा है कि वर्ष में एक अधिवेशन अवश्य ही बुलाया जाए, आवश्यकतानुसार अधिक अधिवेशन बुलाये जा सकते है। सदन की गणपूर्ति के लिए 40 सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य है।

6. 4. 5 सदस्यों के वेतन, भत्ते और विशेषाधिकार - लोकसदन के सदस्यों को संसद द्वारा निर्धारित वेतन भत्ते के अतिरिक्त बिना किराया के रेल यात्रा की सुविधा भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त लोकसदन के सदस्यों को निम्नलिखित विशेषाधिकार प्राप्त है :-

1. सदस्यों को सदन में भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है और उनके द्वारा सदन में कही गयी किसी भी बात के लिए उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती।
2. सदन का अधिवेशन आरम्भ होने के 40 दिन बाद तक की अवधि में किसी भी सदस्य को दीवानी मामले में बन्दी नहीं बनाया जा सकता है।
3. लोकसभा के सदस्यों को सामूहिक रूप से ब्रिटिश सम्राट के पास पहुंचने का अधिकार है अर्थात् स्पीकर के माध्यम से वे अपनी बात सम्राट तक पहुंचा सकते हैं।
4. लोकसभा के सदस्यों को अपनी कार्यवाही पर नियन्त्रण का अधिकार है। यदि चाहे तो गुप्त कार्यवाही की स्थिति को अपना सकता है।
5. यदि कोई व्यक्ति सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन करता है तो सदन स्वयं उसको दण्डित कर सकता है।
6. सदन किसी सदस्य की अयोग्यताओं के विषय में निर्णय दे सकता है और इस आधार पर उसका चुनाव रद्द कर सकता है।

6. 4. 6 पदाधिकारी :- लोकसभा का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी उसका अध्यक्ष होता है। वही सदन की अध्यक्षता करता है। अध्यक्ष के साथ ही एक उपाध्यक्ष भी होता है। अन्य संसदीय अधिकारियों में 'साधन समिति' का अध्यक्ष और उपाध्यक्ष प्रमुख होते है। जिनका चुनाव भी लोकसदन के सदस्यों द्वारा ही किया जाता है।

6. 4. 7 लोकसभा की शक्तियाँ और कार्य :- ब्रिटिश संसद एक सर्वोच्च संस्था है। जिसमें लोकसभा की स्थिति सर्वोच्च है। वस्तुत: ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता का वास्तविक अर्थ लोकसभा की सर्वोच्चता से है। यह सदन विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली सदन है। मुख्य रूप से लोकसभा की शक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. विधायी शक्तियाँ :- लोकसभा का प्रमुख कार्य विधियों का निर्माण करना, उन्हें संशोधित करना एवं उन्हें रद्द करना है। 1911 ई. के पूर्व संसद के दोनों सदनों (लॉर्ड सभा और लोकसभा) को समान शक्तियाँ प्राप्त थीं, किन्तु 1911 और 1949 ई. के संसदीय अधिनियम पारित होने के पश्चात् अब इस सम्बन्ध में अन्तिम शक्ति लोकसदन को ही प्राप्त है। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी सदन में प्रस्तुत किये जा सकते हैं परन्तु महत्त्वपूर्ण एवं सरकार की नीतियों से सम्बन्धित विधेयक सामान्यत: लोकसभा में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। लोकसभा द्वारा पारित होने के बाद विधेयक को लॉर्ड सभा में विचार हेतु भेज दिया जाता है। लॉर्ड सभा उसे अस्वीकार कर देती है तो लोकसभा द्वारा यह विधेयक दुबारा पारित किया जाता है और यदि दूसरे वाचन की तिथि तथा दूसरी बार विधेयक के तीसरे वाचन की तिथि में एक वर्ष का समय हो चुका है तो लॉर्ड सभा द्वारा पारित किये बिना ही इसे दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।

2. वित्तीय शक्तियाँ :- वित्तीय क्षेत्र में लोकसभा की स्थिति और भी सुदृढ़ है। सार्वजनिक धन पर लोकसभा का पूरा नियन्त्रण होता है। इस क्षेत्र में उसकी शक्ति अन्तिम और निर्णायक होती है। वित्त विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तावित किया जा सकता है, लॉर्ड सभा में नहीं। लोकसभा द्वारा पारित किये जाने के बाद लॉर्ड सभा द्वारा एक माह की अवधि तक वित्त विधेयक पर विचार किया जा सकता है। एक माह की अवधि के बाद वित्त विधेयक लॉर्ड सभा उसे न स्वीकार करे, तो भी वह पारित समझा जाता है। इस प्रकार वित्तीय क्षेत्र में लॉर्ड सभा की स्थिति बहुत अधिक निर्बल है।

3. कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ :- ब्रिटेन में संसदात्मक प्रजातन्त्र है और ब्रिटिश कार्यपालिका पर पूर्ण नियन्त्रण लोकसभा का ही है, लॉर्ड सभा का नहीं। कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी होती है। लोकसभा के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकतें हैं। वे उनके विरूद्ध काम रोको प्रस्ताव तथा निन्दा प्रस्ताव पारित कर सकते हैं और इन सबके अतिरिक्त अविश्वास प्रस्ताव पारित कर मन्त्रिमण्डल को पदच्युत किया जा सकता है। लॉर्ड सभा के सदस्य मन्त्रिमण्डल से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं, किन्तु अविश्वास प्रस्ताव पारित कर मन्त्रिमण्डल को पदच्युत नहीं कर सकते है।

4. जनता की शिकायतों का निवारण :- लोकसभा के सदस्य जनता के प्रतिनिधि हैं। वे जनता की शिकायतों को सदन के माध्यम से सरकार तक पहुँचाते हैं और उनका निवारण करने के लिए उसे बाध्य करते हैं। वास्तव में लोकसभा का विरोधी–दल, जनता की स्वतन्त्रता का रक्षा करने का दायित्व निर्वाह करता है।

लोकसभा लोकतान्त्रिक शासन का वह आधारभूत स्तम्भ है जिसके बिना लोकतन्त्र कायम नहीं रह सकता। लोकसभा के कारण ही राष्ट्र का शासन जनता के प्रतिनिधियों के माध्यम से जनता की अनुमति और सहमति से संचालित होता रहता है। सिडनी लौ के शब्दों में, ''लोकसभा संसार में सबसे महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक सभा है। इसकी आदरणीय प्राचीनता, इसका स्फूर्तिदायक इतिहास, इसकी महत्ती परम्परा, उसकी नवयुवक जैसी शक्ति एवं भावना, संसदों पर उसका प्रभाव, ब्रिटिश राष्ट्रीय जीवन से उसका अभिन्न सम्बन्ध, केन्द्रीय शासन–यन्त्र को चलाने में उसका हाथ –ये सब बातें उसे एक ऐसी संस्था बनाते हैं जिसकी तुलना में कोई दूसरी संस्था नहीं है।'' लोकसभा विश्व के निम्न सदनों में सबसे शक्तिशाली निम्न सदन है।

6. 5 लॉर्ड सभा (House of Lords)

लॉर्ड सभा विश्व की सर्वाधिक प्राचीन व्यवस्थापिका है। यह लोकतन्त्रात्मक प्रणाली में एक कुलीन तन्त्रीय संस्था है, क्योंकि इसकी सदस्यता का प्रमुख आधार वंशानुगत है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक ब्रिटिश राजनीति में लॉर्ड सभा को लोकसदन से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, किन्तु अब स्थिति परिवर्तित हो गयी है, और लॉर्ड सभा न केवल द्वितीय, वरन् द्वितीय दर्जे का सदन हो गया है। फिर भी यह कोई नाममात्र की संस्था नहीं। यह कॉमन्स सभा से अधिक कुलीनतंत्रीय, शानदार तथा वैभवशाली सदन है। यह शक्तिहीन होते हुए भी प्रभावशाली और उपयोगी उच्च सदन है। जिसका लोकतन्त्र में आज भी महत्त्व बना हुआ है।

6. 5.1 लॉर्ड सभा की रचना :- लॉर्ड सभा कोई प्रतिनिधि सदन नहीं है। यह वंशानुगत सदन है। इसके सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। इसकी सदस्य–संख्या परिवर्तित होती रही है। वर्तमान समय में इस सदन की सदस्य संख्या लगभग 1000 से अधिक है। लॉर्ड सभा की रचना विभिन्न प्रकार के सदस्यों से मिलकर होती है, जो अग्रलिखित है।

1. राजवंश के राजकुमार –ये लॉर्ड सभा के प्रथम श्रेणी के सदस्य होते हैं। इनकी सदस्यता नाममात्र की है। वर्तमान में ये 4 हैं। ये सदस्य लॉर्ड –सभा की बैठकों में प्राय: शामिल नहीं होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. वंशानुगत पीयर – लॉर्ड सभा के सदस्यों में सबसे अधिक संख्या इस श्रेणी के सदस्यों की ही है। ये द्वितीय श्रेणी के सदस्य होते है। लॉर्ड सभा के कुल सदस्यों का 90 प्रतिशत भाग वंशानुगत पीयरों का है। वंशानुगत पीयरों की पाँच श्रेणियां हैं– बैरन, ड्यूक्स, मारक्यूइस, अर्ल और विस्काउण्ट। ये पीयर पहले स्वयं राजा द्वारा नियुक्त किए जाते थे, किन्तु अब इनकी नियुक्ति राजा द्वारा प्रधानमंत्री के परामर्श से की जाती है। यह पीयर पद वंश परम्परा के आधार पर चलता रहता है।

3. स्कॉटलैण्ड के पीयर – सन् 1707 ई. के यूनियन ऐक्ट द्वारा यह व्यवस्था की गयी थी कि स्कॉटलैण्ड के सब पीयर लोग अपने में से 16 पीयर प्रत्येक संसद के लिए निर्वाचित करेंगे, किन्तु इस सम्बन्ध में 1963 ई. से व्यवस्था यह है कि स्कॉटलैण्ड के सभी पीयर लॉर्ड सभा में बैठ सकते हैं, लेकिन साथ ही अधिनियम में इस श्रेणी के नवीन पीयरों की व्यवस्था नहीं की गयी है। परिणामस्वरूप पुराने पीयर धीरे–धीरे समाप्त होते जा रहे हैं और एक समय ऐसा आयेगा जब वे बिल्कुल समाप्त हो जायेंगे।

4. आजीवन पीयर – सन् 1958 ई. के 'आजीवन पीयरेज एक्ट' ने सम्राट को, प्रधानमंत्री के परामर्श पर, आजीवन पीयर नियुक्त करने की शक्ति प्रदान कर दी है। सम्राट सामाजिक और राजनीतिक जीवन के प्रतिष्ठित एवं अनुभवी स्त्री–पुरुषों को आजीवन पीयर नियुक्त कर सकता है। आजीवन पीयरों को 'पार्लियामेंट के लार्ड्स' कहा जाता है।

5. आध्यात्मिक लॉर्ड – धार्मिक लॉर्ड भी लॉर्ड–सभा के सदस्य होते हैं। ये लोग पीयर नहीं होते वरन धर्म गुरू होते हैं। इनकी संख्या 26 है। ये सभी इंगलैण्ड के चर्च के बिशप होते हैं। इनमें एक कैण्टरबरी का आर्कबिशप, एक यार्क का आर्क बिशप, एक लन्दन का आर्कबिशप, एक डरहम का बिशप और विन्चेस्टर का बिशप अवश्य सम्मिलित किये जाते हैं। शेष 21 इंगलैण्ड की विभिन्न चर्चों के वरिष्ठ बिशप होते हैं।

6. कानूनी लॉर्ड – ग्रेट ब्रिटेन में लॉर्ड सभा अपील का अन्तिम न्यायालय है। अत: उसके न्यायिक कार्यों के लिए विधिवेत्ताओं की आवश्यकता और वाँछनीयता बनी रहती है। कानूनी लॉर्ड को सम्राट के द्वारा जीवन पर्यन्त के लिए नियुक्त किया जाता है। इनकी संख्या 9 है। इन्हें 1876 ई. के 'अपीलीय क्षेत्राधिकार अधिनियम' के द्वारा सदन के न्याय कार्यों में सहायता देने के लिए नामजद किया जाता है। कानून के लॉर्डों को, लॉर्ड सभा के अन्य सदस्यों के विपरीत, वेतन प्राप्त होता है। अपने पद से त्याग–पत्र देने के बाद भी इन्हें लॉर्ड सभा में बैठने और मतदान करने का अधिकार रहता है।

लॉर्ड–सभा के सदस्यों के उक्त वर्गों को देखने से स्पष्ट है कि इसकी रचना में पैतृकाधिकार, नियुक्ति और निर्वाचन तीनों ही सिद्धान्तों का समन्वय है। अधिकांश सदस्य पैतृकाधिकार अथवा वंशानुगत रूप से सदस्यता प्राप्त करते हैं। स्कॉटलैण्ड के प्रतिनिधि पीयर चुनाव द्वारा सदस्य बनते है तो न्यायिक और धार्मिक लॉर्डों की नियुक्ति होती है।

6. 5. 2 सदस्यों के विशेषाधिकार :– लॉर्ड सभा के अनेक परम्परागत विशेषाधिकार यद्यपि समाप्त कर दिये गये हैं, लेकिन अब भी उन्हें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं।

1. लॉर्ड सभा के सभी सदस्यों को भाषण की स्वतन्त्रता है और सदन में सरकार की कड़ी से कड़ी आलोचना करने पर भी उनके विरूद्ध कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।
2. संसद के अधिवेशन काल में किसी सदस्य को बन्दी नहीं बनाया जा सकता है।
3. लॉर्ड सभा के सदस्यों को यह अधिकार है कि वे सम्राट के पास व्यक्तिगत रूप से जाकर सार्वजनिक मामलों पर बातचीत कर सकते हैं।
4. पीयर बनाने वाले विधेयक लॉर्ड सभा में पेश होते है।
5. लॉर्ड सभा ब्रिटेन के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में कार्य करती है।

6. 5. 3 पदाधिकारी :– लॉर्डसभा का सभापतित्व लॉर्ड चान्सलर करता है। वह सदन का पदेन अध्यक्ष होता है। राजा की ओर से कुछ अन्य ऐसे पीयर लोगों की नियुक्ति भी होती है जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्ष का कार्य करते है, उन्हें उपाध्यक्ष कहा जाता है। लॉर्ड चान्सलर मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है जिसकी नियुक्ति प्रधानमंत्री के परामर्श से राजा द्वारा की जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. 5. 4 गणपूर्ति :- लॉर्ड सभा के अधिकांश सदस्य सक्रिय नहीं होते है। लॉर्ड सभा की गणपूर्ति 3 सदस्यों की उपस्थिति से ही हो जाती है, जो विश्व में किसी भी सदन में न्यूनतम है।

6. 5. 5 1911 के संसदीय अधिनियम के पूर्व ब्रिटिश राजनीति में लॉर्ड सभा की स्थिति :- सन् 1911 ई. के संसदीय अधिनियम को हम ब्रिटिश राजनीति में लॉर्ड सभा को शक्ति और स्थिति की विभाजक-रेखा मान सकते हैं। 18वीं शताब्दी तक लॉर्डसभा की शक्तियाँ लोकसभा के ही समान थी और 1832 ई. का सुधार अधिनियम पारित होने से पूर्व तक दोनों सदनों के आपसी सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। इसका मुख्य कारण यह था कि दोनों ही सदनों के सदस्य समाज के उच्च वर्ग से सम्बन्धित थे, इस प्रकार वर्ग-विभेद जैसी कोई बात नहीं थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के आते-आते लोकसभा अधिक जोरदार शब्दों में यह दावा करने लगी कि निर्वाचन के आधार पर निर्मित होने के कारण वही जनता की सही प्रतिनिधि है और इसलिए अधिक सत्ता की अधिकारिणी है। इस शक्ति-संघर्ष में पराजय लॉर्ड सभा की ही रही। लॉर्ड सभा के दुर्भाग्य का प्रथम चिह्न सन् 1832 का सुधार अधिनियम बना। वास्तव में 1832 को सुधार अधिनियम के बाद 1860 के बजट, 1867 के सुधार अधिनियम, 1869 के आयरलैण्ड चर्च के उच्छेदन विधेयक, 1884 के सुधार अधिनियम आदि पर लॉर्ड सभा का लोकसभा से संघर्ष हुआ और प्रत्येक बार उसे पराजय ही मिली।

1905 में उदार दल सत्तारूढ़ हुआ तो दोनों सदनों में निरन्तर खीचां-तानी या तनातनी चल रही थी। अत: लॉर्ड सभा ने सरकार के अनेक महत्त्वपूर्ण विधेयकों पर कुठाराघात कर दिया। सरकार बहुल मताधिकार का अन्त करना चाहती थी, करों के हेतु भूमि के मूल्यांकन के लिए एक नवीन योजना का अन्त करना चाहती थी, सार्वजनिक शिक्षा के प्रशासन की पुन: व्यवस्था करना चाहती थी और मद्य-व्यापार पर अधिक फीस लगाना चाहती थी, लेकिन लॉर्ड सभा के विरोध ने इन सब योजनाओं को असफल बना दिया। इस क्रम में 1910 में लॉर्ड सभा ने सम्पूर्ण वित्त विधेयक अस्वीकृत करने का दु:साहस किया, जिससे एक गम्भीर संवैधानिक संकट उठ खड़ा हुआ। इन सबसे सत्तारूढ़ उदारवादी दल इस निश्चय पर अटल हो गया कि लॉर्ड सभा के अधिकार सदैव के लिए मर्यादित कर दिये जाएं। सन् 1911 का संसदीय कानून इस निश्चय का ही परिणाम था, जो एक लम्बे संघर्ष के उपरान्त 18 अगस्त, 1911 को सम्राट के हस्ताक्षर प्राप्त कर सका।

1. 1911 ई. के संसदीय अधिनियम के मुख्य प्रावधान

1. यदि कोई वित्त विधेयक लोकसभा से पारित होकर लॉर्ड सभा में भेजा जाता है और वहां एक माह के अन्दर बिना किसी संशोधन के पास नहीं कर दिया जाता तो वह बिना लॉर्ड्स की सहमति के ही सम्राट के पास हस्ताक्षर हेतु भेज दिया जायेगा और सम्राट के हस्ताक्षर से कानून बन जायेगा।

2. अधिनियम मे वित्त-विधेयक को परिभाषित कर दिया गया और साथ ही इस बात का भी प्रावधान किया गया कि कोई विधेयक वित्त विधेयक है या नहीं -इस बात का निश्चय लोकसदन का स्पीकर करेगा जो कि सर्वमान्य होगा।

3. कोई भी अन्य लोक-विधेयक, जिसे लोकसभा तीन बार पास कर देती है और जो लॉर्ड सभा के पास प्रत्येक चार अधिवेशन समाप्त होने के कम से कम एक माह पहले दिया जाता है, यदि उस सभा द्वारा प्रत्येक बार अस्वीकृत कर दिया जाता है तो वह विधेयक, बिना लॉर्ड सभा की स्वीकृति के ही राजा के हस्ताक्षर हो जाने पर कानून बन जाएगा, यदि पहले अधिवेशन में दूसरे वाचन और तीसरे अधिवेशन में पारित होने के बीच दो वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है।

4. लोकसभा का कार्यकाल अधिक से अधिक पाँच वर्ष होगा।

6. 5. 6 सन् 1949 ई. का संसदीय अधिनियम :- 1911 ई. के संसदीय अधिनियम के पारित हो जाने के बाद भी लॉर्ड सभा द्वारा एक साधारण विधेयक को दो वर्ष के लिए विलम्बित किया जा सकता था। इस बात की पूरी आशंका थी कि लॉर्ड सभा अपनी इस शक्ति का प्रयोग प्रगतिशील कानूनों का विरोध करने के लिए करेगी। अत: 1945 में मजदूर दल की सरकार बन जाने पर लोकसभा द्वारा 10 सितम्बर, 1947 को एक विधेयक पारित किया गया और लॉर्ड सभा द्वारा लगातार तीन अधिवेशनों में अस्वीकार किये जाने के बावजूद यह 1949 में कानून बन गया। इस अधिनियम को ही 1949 के 'संसदीय अधिनियम' के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम द्वारा ही यह उपबन्धित किया गया है कि यदि कोई अवित्त विधेयक लोकसभा द्वारा एक वर्ष की अवधि में दो बार पारित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कर दिया जाय, तो वह लॉर्ड सभा के विरोध करने पर भी पारित समझा जायेगा और सम्राट के हस्ताक्षर से कानून का रूप प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार लॉर्ड सभा को अवित्त विधेयकों के सम्बन्ध में पहले जो दो वर्ष की विलम्बकारी शक्ति प्राप्त थी, उसे घटाकर अब एक वर्ष कर दिया गया है।

6. 5. 7 लॉर्ड सभा की शक्तियाँ :- लॉर्ड सभा की शक्तियाँ सदैव ही परिवर्तित होती रही है। 17वीं सदी के अन्त तक लॉर्ड सभा लोकसभा की तुलना में अधिक शक्तिशाली थी। 18वीं सदी तक लॉर्ड सभा लोकसभा के समकक्ष ही रही, किन्तु 19वीं शताब्दी के आते-आते लॉर्ड सभा की शक्तियों का लोप होना प्रारम्भ हो गया। लोकसभा यह दावा करने लगी कि निर्वाचन के आधार पर निर्मित होने के कारण वही जनता की सच्ची प्रतिनिधि है और इसलिए अधिक सत्ता की अधिकारिणी है। इस शक्ति-संघर्ष में लॉर्ड सभा पराजित हुई। सन् 1911 तथा 1949 के संसदीय अधिनियम पारित होने के बाद लॉर्ड सभा लोकसदन की तुलना में बहुत अधिक शक्तिहीन हो गयी है। ऑग तथा जिंक के शब्दों में, ''आज लॉर्ड-सभा दूसरा सदन ही नहीं, वरन् दूसरे दर्जे का सदन हो गया है।''

लॉर्ड-सभा की मुख्य शक्तियाँ निम्नलिखित हैं -

1. विधायी शक्तियाँ :- सन् 1911 के संसदीय अधिनियम से पूर्व लॉर्ड सभा को लोकसभा के समकक्ष ही विधि-निर्माण के अधिकार प्राप्त थे, परन्तु इस अधिनियम ने लॉर्ड-सभा की शक्तियों को बहुत-कुछ कम कर दिया। आज उसका कार्य प्राय: विधेयकों को दोहराना, आलोचना करना व संशोधन करना मात्र रह गया है। वित्त विधेयक लॉर्ड-सभा में प्रस्तावित नहीं किए जाते तथा लोकसभा का अध्यक्ष ही निर्णय करता है कि कोई विधेयक वित्त विधेयक है या नहीं।

1949 के संसदीय अधिनियम पारित होने के बाद अब स्थिति यह है कि लॉर्ड सभा अवित्त विधेयक को एक बार अस्वीकार कर उसे एक वर्ष के लिए कानून बनाने से रोक सकती है। यदि लॉर्ड सभा द्वारा अस्वीकृत विधेयक को लोकसदन दुबारा पारित कर दे और इस बीच एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया हो, तो वह विधेयक सम्राट की स्वीकृति के पश्चात् कानून बन जाता है, चाहे लॉर्ड सभा उसे स्वीकार किया हो या न किया हो। इस प्रकार लॉर्ड सभा की साधारण विधेयक को विलम्बित करने की शक्ति केवल एक वर्ष रह गई है।

2. **वित्तीय शक्तियाँ** :- वित्तीय क्षेत्र में लॉर्ड सभा की स्थिति लोकसभा की तुलना में बहुत निर्बल है। वित्त विधेयक न तो पहले लॉर्ड सभा में प्रस्तावित किये जा सकते हैं और न ही लॉर्ड सभा विचार करने की प्रक्रिया में उन्हें अनिश्चित काल तक रोके रख सकती है। यह वित्त विधेयक को केवल एक माह तक रोके रखने का कार्य कर सकती है। वित्त विधेयकों के सम्बन्ध में लॉर्ड सभा सुझाव दे सकती है, लेकिन इन सुझावों को स्वीकार करना लोकसभा के विवेक पर निर्भर करता है। इस तरह से इस मामले में यह एक शक्तिहीन सदन बन गया है।

3. कार्यपालिका से सम्बन्धित शक्तियाँ :- प्रारम्भ में लॉर्ड-सभा कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती थी, किन्तु वर्तमान में यह शक्ति पूर्णत: लोकसभा के हाथ में चली गई है। मन्त्रिपरिषद् को केवल लोकसभा ही अपदस्थ कर सकती है, लॉर्ड सभा को इस तरह की शक्ति प्राप्त नहीं है। किन्तु फिर भी ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के लगभग 4 सदस्य लॉर्ड सभा में से लिए जाते है और लॉर्ड सभा का अध्यक्ष, जिसे 'लॉर्ड चान्सलर' कहते हैं, आवश्यक रूप से ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है। लोकसदन की भाँति ही लॉर्ड सभा को भी अधिकार प्राप्त है कि मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से प्रश्न पूछकर प्रशासनिक विषयों के सम्बन्ध में सूचनाएं प्राप्त कर सके। वह शासन की नीतियों तथा कार्यों पर खुला वाद-विवाद तथा आलोचना से भी मन्त्रिमण्डल को प्रभावित करती है।

4. न्यायिक शक्तियाँ :- लॉर्ड-सभा की न्यायिक शक्तियाँ महत्त्वपूर्ण है। इन शक्तियों का प्रयोग सदन के सभी सदस्यों द्वारा न होकर केवल कानूनी लॉर्ड्स द्वारा किया जाता है। न्यायिक क्षेत्र में लोकसभा को कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं। यह विशेषाधिकार लॉर्ड-सभा का ही है। लॉर्ड-सभा ग्रेट ब्रिटेन का सर्वोच्च न्यायालय है। लॉर्ड सभा का निर्णय अन्तिम होता है।

6. 6 लॉर्ड-सभा की प्रभावहीनता के कारण :- लॉर्ड-सभा शक्ति एवं प्रभाव के विचार से आज अपना महत्त्व खो चुकी है। लोकतन्त्र के विकास के साथ-साथ लोकसभा की शक्ति के अत्यधिक बढ़ जाने से प्राय: यह प्रश्न उठता है कि अब लॉर्ड सभा की क्या आवश्यकता है ?अनेक राजनीतिज्ञ लॉर्ड सभा का अन्त करना आवश्यक समझते हैं। कहते हैं कि ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उसका अस्तित्व असंगति के रूप में है। जे. आर. क्लाइन्स के शब्दों में मजदूर दल का मत है कि ''लॉर्ड सभा एक ऐसी संस्था है जिसको ठीक से सुधारा नहीं जा सकता है, यदि उसे सुधारा नहीं जा सकता, उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए ''।

लॉर्ड सभा की आलोचना निम्नलिखित तर्कों के आधार पर की जा सकती है-

6. 6.1 अप्रजातान्त्रिक :- लॉर्ड सभा का संगठन अप्रजातान्त्रिक है, जिसके लगभग 90 प्रतिशत सदस्य बड़े-बड़े जागीरदार और कुलीन घराने के व्यक्ति हैं। ये सदस्य निर्वाचित नहीं होते, बल्कि वंशानुगत रूप से सदस्यता प्राप्त करते हैं। संगठन की दृष्टि से उसमें केवल धनी और उच्च व्यापारिक वर्ग का ही प्रतिनिधित्व होता है।

6. 6. 2 निहित स्वार्थों का गढ़ :- लोकसभा समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है, लेकिन लॉर्ड सभा समाज के एक ही वर्ग (धनी वर्ग) का प्रतिनिधित्व करती है। यह सभा वस्तुत: महान् उद्योगों और व्यापारिक संस्थानों द्वारा शासित होती है। इसी कारण लॉर्ड सभा को 'धनिकों की सभा' कहा जाता है, न कि जनसाधारण का सदन।

6. 6. 3 अनुदार दल की स्थायी प्रभुता :- प्रतिनिधि संस्थाएं जन-भावनाओं की प्रतिबिम्ब होनी चाहिए और जन-भावनाओं में परिवर्तन होने के साथ-साथ इन संस्थाओं के अन्तर्गत दलीय स्थिति में भी परिवर्तन होना चाहिए, लेकिन लॉर्ड सभा के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। लॉर्ड सभा के 1000 सदस्यों में से 500 सदस्य अनुदार दल के हैं। जेनिंग्स ने लॉर्ड सभा को अनुदार दल की जड़ कहा है। यही कारण है कि जब शासन-सत्ता रूढ़िवादी दल के हाथ में होती है तो लॉर्ड सभा हर बात में लोकसभा का समर्थन करती है, किन्तु जब सरकार अन्य किसी दल की होती है तो यह लोकसभा के प्राय: सभी कार्यों का विरोध करती है। मेरियट के शब्दों में, ''जब रूढ़िवादी दल की सरकार होती है तो लॉर्ड सभा गूँगे कुत्ते की तरह व्यवहार करती है और अन्य अवसरों पर खूंखार भेड़िये की तरह पेश आती है।''

6. 6. 4 सदस्यों की उदासीनता :- लॉर्ड सभा के विरूद्ध सबसे बड़ा आरोप यह है कि यह ऐसे व्यक्तियों की संस्था है जिसके अधिकांश सदस्य प्राय: अनुपस्थित रहते हैं, और सदन के कार्यों में कोई रूचि नहीं लेते। यद्यपि लॉर्ड सभा के सदस्यों की संख्या 1000 से ऊपर है, लेकिन साधारणतया 50 से अधिक सदस्य सदन में उपस्थिति नहीं होते। कार्टर के शब्दों में, ''अपने विधायी कर्त्तव्यों को निभाना तो दूर रहा, लॉर्ड्स सदन में आने तक का कष्ट नहीं उठाते।''

6. 6. 5 दोषपूर्ण संसदीय प्रक्रिया :- सदन की गणपूर्ति केवल तीन सदस्यों से हो जाती है जबकि लोकसभा की गणपूर्ति की संख्या 40 है। विश्व के किसी भी द्वितीय सदन के इतने कम सदस्यों की उपस्थिति से सभा की कार्यवाही नहीं चल सकती। गणपूर्ति की इस व्यवस्था ने इस सदन की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

6. 6. 6 शक्तिहीन सदन :- सन् 1911 तथा 1949 में संसदीय अधिनियमों के पास होने के पश्चात् लॉर्ड सभा अशक्त हो गई है। अब इसके पास धन विधेयकों को रोकने की केवल एक माह तक और साधारण विधेयकों को रोकने की शक्ति एक वर्ष तक रह गई है। इसलिए ऐसे शक्तिहीन सदन की कोई आवश्यकता नहीं है।

6. 6. 7 विधायी और कार्यकारी शक्तियों की निरर्थकता :- लॉर्ड-सभा का कार्यपालिका पर कोई नियन्त्रण नहीं है क्योंकि मन्त्रिमण्डल केवल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। विधि-निर्माण के क्षेत्र में भी उसकी ज्योति अत्यन्त फीकी है। एक पक्षीय एवं प्रतिक्रियावादी स्वरूप के कारण इसके विधि सम्बन्धी सुझाव प्राय: अव्यावहारिक एवं अप्रगतिशील होते हैं।

लॉर्ड सभा की आलोचनाओं से यही लगता है कि वह एक व्यर्थ-सदन है जिसे समाप्त करना चाहिए, किन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं हैं। इंगलैण्ड में जन-साधारण का और राजनीतिज्ञों का मत यही रहा है कि लॉर्ड-सभा का अस्तित्व तो बना रहे, पर इसके संगठन में समयानुकूल परिवर्तन कर दिया जाए। वर्तमान में भी यह सदन नियन्त्रण तथा सन्तुलन, तथा उच्चस्तरीय वाद-विवाद के कारण उपयोगी माना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. 7 सारांश

वस्तुत: ब्रिटेन में संसद सम्प्रभु है। वह जैसा चाहे वैसा कानून बना सकती है। न्यायालय संसद के निर्णयों को अवैध घोषित नहीं कर सकता। मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी है, किन्तु इंगलैण्ड की संसद कानूनी दृष्टि से भले ही सम्प्रभु हो, परन्तु व्यवहार में उसकी सम्प्रभुता सीमित है। विश्व के लगभग सभी प्रजातन्त्रों में कार्यपालिका अधिकाधिक शक्तिशाली होती जा रही है और व्यवस्थापिका निर्बलता को प्राप्त हो रही है। ब्रिटेन में भी वास्तविक स्थिति ऐसी ही हैं। जहां तक व्यवस्थापन और वित्त का सम्बन्ध है ब्रिटिश लोकसदन का इन क्षेत्रों पर नियन्त्रण बहुत अधिक है और लॉर्ड सदन इस क्षेत्र में नगण्य है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश संविधान की प्रभुत्व–सम्पन्नता (संसदीय सर्वोच्चता) का क्या अर्थ है ?क्या इस पर कोई सीमाएँ है ?
2. ब्रिटिश कॉमन सभा की रचना, शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. लॉर्ड सभा की रचना, शक्तियों एवं स्थिति का वर्णन कीजिए।
4. ''लॉर्ड सभा केवल द्वितीय सदन ही नहीं, अपितु शक्तिहीन सदन है।'' समीक्षा कीजिए।
5. ''संसद का कार्य शासन करना नहीं, बल्कि आलोचना करना है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
6. ''विधायन सम्बन्धी सर्वोच्चता का उपयोग वस्तुत: कॉमन सभा करती है, संसद सहित साम्राज्ञी या लॉर्ड सभा नहीं।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. लोकसभा कार्यपालिका पर नियन्त्रण कैसे करती है ?
2. ''लॉर्ड सभा का या तो अन्त होना चाहिए या सुधार।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. लॉर्डसभा की प्रभावहीनता के कारण बताइये।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश कॉमन सभा की वर्तमान में कितनी सदस्य संख्या है ?
2. कॉमन सभा की गणपूर्ति के लिए कितने सदस्यों को उपस्थिति आवश्यक है ?
3. कॉमन सभा का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है ?
4. लॉर्ड सभा की कितनी सदस्य संख्या है ?
5. लॉर्ड सभा में कितने 'कानूनी लार्ड' होते हैं ?
6. लॉर्ड सभा के सभापति को किस नाम से पुकारते हैं ?
7. लॉर्ड सभा की गणपूर्ति कितने सदस्यों से पूरी हो जाती है ?
8. 1949 ई. का संसदीय अधिनियम क्या है ?
9. लॉर्ड सभा को अप्रजातांत्रिक सदन क्यों कहा जाता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-07
संसद एवं प्रधानमंत्री

संरचना

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 संसद एवं प्रधानमंत्री के सम्बन्धों का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य
    7.2.1 प्रश्नोत्तर
    7.2.2 कामरोको प्रस्ताव
    7.2.3 बजट में कटौती
    7.2.4 अविश्वास प्रस्ताव
7.3 प्रधानमंत्री एवं संसद के सम्बन्धों का व्यावहारिक दृष्टिकोण
    7.3.1 कॉमन सभा में बहुमत दल का नेता
    7.3.2 शासन का संचालन
    7.3.3 कॉमन सभा को भंग करने की शक्ति
7.4 सारांश

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत ब्रिटिश संसद एवं प्रधानमंत्री के सम्बन्धों का विवेचन किया गया है। इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप:

- ब्रिटिश संसदीय सम्प्रभुता को समझ सकेंगे,
- संसद् में प्रधानमंत्री पद की स्थिति एवं महत्त्व को समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में संसद की स्थिति सर्वोच्च है। संसदात्मक शासन प्रणाली होने के कारण समस्त महत्त्वपूर्ण निर्णय संसद के मंच पर लिये जाते है। संसद जैसा चाहे वैसा कानून बना सकती है, तथा संविधान में संशोधन कर सकती है। न्यायालय, उसके द्वारा निर्मित कानूनों को अवैध घोषित नहीं कर सकते। वह मन्त्रिमण्डल को अपदस्थ कर सकती है। परन्तु व्यवहार में, संसदात्मक सरकार में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के बीच गहरा सम्बन्ध रहता है, अर्थात् सरकार के दोनों अंगों में समन्वय हो जाता है। संसदीय शासन-व्यवस्था में व्यवस्थापिका सभा के बहुमत दल का नेता कार्यपालिका का मुख्य प्रधान होता है और वही व्यक्ति प्रधानमंत्री कहलाता है। यह प्रधानमंत्री अपने मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्यों या मन्त्रिपरिषद का चयन करता है। मन्त्रिपरिषद, व्यवस्थापिका (संसद) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।

मन्त्रिमण्डल के सदस्य व्यवस्थापिका सभा के सदस्य होते हैं और वे अपने पद पर तब तक आसीन रहते हैं जब तक उन्हें व्यवस्थापिका सभा का विश्वास रहे। इसलिए संसदीय व्यवस्था में प्रधानमंत्री और मन्त्रियों का व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार से व्यवस्थापिका (संसद) के प्रति उत्तरदायित्व बना रहता है तथापि शक्ति संरचना का मूल स्रोत ब्रिटिश प्रधानमंत्री ही है। कार्यपालिका के व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायित्व होने के सिद्धान्त को छोड़कर ब्रिटेन में संसद की सम्प्रभुता का स्थान आज प्रधानमंत्री की सम्प्रभुता ने ले लिया है। प्रधानमंत्री को राज्य रूपी जहाज का चालक कहा गया है। विलियम हारकोर्ट ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री के सम्बन्ध में कहा कि ''प्रधानमंत्री नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा है।'' प्रधानमंत्री को देश का सर्वोच्च शासक माना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.2 संसद् एवं प्रधानमंत्री के सम्बन्धों का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

ब्रिटेन में संसदात्मक शासन व्यवस्था का प्रचलन है और संसदात्मक शासन में व्यवस्थापिका और कार्यपालिका परस्पर सम्बन्धित होती हैं तथा कार्यपालिका (प्रधानमंत्री) व्यस्थापिका (संसद) के प्रति उत्तरदायी होता है। उत्तरदायित्व के प्रश्न में संसद का आशय कॉमन सभा से होता है। प्रधानमंत्री उसी समय तक अपने पद पर बना रह सकेगा, जब तक उसे कॉमन सभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त हो। संसद के द्वारा प्रधानमंत्री पर निम्नलिखित साधनों से नियन्त्रण रखा जा सकता है।

7.2.1 प्रश्नोत्तर – संसद को अधिकार है कि वह अपने अधिवेशनों के दिनों में प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से विभिन्न प्रशासनिक बातों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। इन प्रश्नों के आधार पर संसद सदस्य सरकार के विभिन्न प्रशासनिक विभागों की त्रुटियों से परिचित हो जाते हैं और उनके द्वारा निन्दा आलोचना के आधार पर सरकार को सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया जा सकता है।

7.2.2 कामरोको प्रस्ताव – यदि प्रशासन के किसी भी क्षेत्र में कोई भी गम्भीर घटना घटित हो गई है तो प्रत्येक संसद सदस्य को अधिकार है कि वह अपने सदन में इस आशय का प्रस्ताव रखे कि पहले से चले आ रहे सभी विचारों पर विचार स्थापित कर इस गम्भीर घटना पर विचार करे। इसे ही 'कामरोको प्रस्ताव' कहते हैं और यह प्रस्ताव प्रधानमंत्री पर नियन्त्रण का एक महत्त्वपूर्ण साधन होता है।

7.2.3 बजट में कटौती – प्रधानमंत्री संसद की स्वीकृति के बिना आय–व्यय से सम्बन्धित कोई कार्य नहीं कर सकता। प्रधानमंत्री का बजट पर पूर्ण नियन्त्रण होता है और कॉमन सभा द्वारा बजट में कटौती का आशय होता –अविश्वास का प्रस्ताव।

7.2.4 अविश्वास प्रस्ताव – अविश्वास प्रस्ताव संसद के पास एक अमोघ या ब्रह्मास्त्र अस्त्र है। इसे निन्दा प्रस्ताव भी कहते हैं, जब सरकार की पूर्ण या आंशिक नीति दोषपूर्ण तथा आपत्तिजनक हो तो निन्दा प्रस्ताव के सहारे से उसे सुधारा जा सकता हैं। ऐसे अवसर पर विरोध में संसद का बहुमत होने से सरकार को त्याग पत्र देना पड़ सकता है। अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से संसद प्रधानमंत्री पर नियंत्रण रखती है।

7.3 प्रधानमंत्री एवं संसद् के सम्बन्धों का व्यावहारिक दृष्टिकोण

सैद्धान्तिक दृष्टि से तो प्रधानमंत्री पर संसद के द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है, व्यावहारिक स्थिति नितान्त अलग ही है। व्यवहार में संसद प्रधानमंत्री पर नियन्त्रण नहीं रखती वरन् स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा नियन्त्रित होती है। इन दोनों के आपसी सम्बन्धों का विवेचन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है–

7.3.1 कॉमन सभा में बहुमत दल का नेता – व्यावहारिक तौर पर वही व्यक्ति प्रधानमंत्री हो सकता है जो कॉमन सभा के बहुमत दल का नेता हो। इस प्रकार प्रधानमंत्री कॉमन सभा का नेता होने के कारण कई महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। प्रथम, शासन की नीतियों एवं मुख्य कार्यों की घोषणा लोकसदन या लोकसभा में प्राय: प्रधानमंत्री करता है। द्वितीय, लोकसदन के सदस्यों द्वारा गम्भीर मामलों पर पूछे गए प्रश्नों का उत्तर प्राय: प्रधानमंत्री ही देता है। तृतीय, जब मन्त्रियों द्वारा संसद को सन्तोषपूर्वक उत्तर नहीं दिए जाते है तब संसद प्रधानमंत्री को अन्तिम प्रवक्ता और नीति के स्रोत के रूप में देखती है। चतुर्थ, शासकीय विधेयकों को प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार तैयार किया जाता है। पंचम, देश की वित्त–व्यवस्था और वार्षिक बजट को निर्धारित करने में भी प्रधानमंत्री का हाथ होता है। षष्ठ अपने दल की नीतियों का क्रियान्वयन कराने और दल में अनुशासन एवं एकता कायम रखने हेतु प्रधानमंत्री दलीय सचेतक के माध्यम से आदेश प्रसारित करता है।

7.3.2 शासन का संचालन – प्रधानमंत्री देश का नेता और कुशल शासक होता है। सिद्धान्त रूप में न सही, लेकिन व्यवहार में देश का समस्त शासन उसी की इच्छानुसार संचालित होता है। वह व्यवस्थापिका से अपनी इच्छानुसार कानून बनवा सकता है। कभी–कभी परिस्थितियों वश भले ही उसे अपने सहयोगियों के सामने झुकना पड़े, लेकिन अन्तिम रूप में प्रधानमंत्री के निर्णय ही मान्य होते हैं।

7.3.3. कॉमन सभा को भंग करने की शक्ति – संसद पर प्रधानमंत्री के नियन्त्रण का अन्तिम महत्त्वपूर्ण साधन कॉमन सभा को भंग करने की शक्ति है। सामान्यतया कॉमन सभा के सदस्य पांच वर्ष की अवधि पूरी होने के पूर्व अपना पद नहीं छोड़ना चाहते और ऐसी स्थिति में वे प्रधानमंत्री का समर्थन करने को बाध्य होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.4 सारांश

ब्रिटेन की संसदीय शासन प्रणाली का केन्द्र–बिन्दु संसद है। प्रशासन की बागडोर चाहे किसी दल या वर्ग के हाथ में हो, जब तक संसद के अधिकार अक्षुण्ण हैं और कार्यक्षेत्र तथा कार्य संचालन की दृष्टि से उसका स्वरूप सम्प्रभु है वह राष्ट्र बड़े से बड़े संकट का सामना कर सकता है। संसद की सम्प्रभुता ब्रिटिश संविधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जैसा कि सर एडवर्ड कोक का मत है, ''संसद की शक्ति और अधिकार क्षेत्र इतना सर्वोपरि और पूर्ण है कि इसकी कोई सीमाएं नहीं बांधी जा सकतीं। डी लोमे ने तो ब्रिटिश संसद के बारे में यहाँ तक कह डाला है कि ''संसद सभी कुछ कर सकती है, सिवाय स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री नहीं बना सकती है।''

वस्तुत: ब्रिटिश संसद को जो अप्रतिबन्धित शक्तियां प्राप्त हैं इसे ही 'संसदीय सार्वभौमिकता या सम्प्रभुता' कहा गया है। परन्तु वास्तव में प्रधानमंत्री तथा संसद का पारस्परिक सम्बन्ध इस बात पर निर्भर करता है कि वह एक राजनीतिक दल का प्रधानमंत्री है या मिले–जुले राजनीतिक दलों का प्रधानमंत्री है। अत: एक राजनीतिक दल का प्रधानमंत्री मिले–जुले प्रधानमंत्री की अपेक्षा संसद के साथ सम्बन्ध में अधिक शक्ति का परिचय देता है। प्रधानमंत्री की स्थिति उसके व्यक्तित्व पर भी निर्भर करती है। अगर उसके व्यक्तित्व में 'करिश्मा' है, तो उसकी स्थिति सर्वोच्च तथा शक्तिशाली बनेगी।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संसद एवं प्रधानमंत्री के सम्बन्धों को समझाइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संसद प्रधानमंत्री को कैसे नियंत्रित रखती है ?
2. प्रधानमंत्री एवं संसद के सम्बन्धों का व्यावहारिक दृष्टिकोण समझाइये।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कॉमन सभा में बहुमत दल का नेता कौन होता है।
2. कॉमन सभा को भंग करने की शक्ति किसके पास है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-08
ब्रिटेन में स्पीकर का पद

संरचना

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 स्पीकर पद का विकास
8.3 स्पीकर का निर्वाचन
8.4 स्पीकर का वेतन
8.5 स्पीकर की शक्तियाँ
    8.5.1 कॉमन सभा की अध्यक्षता
    8.5.2 बोलने की आज्ञा
    8.5.3 नियमों की व्याख्या
    8.5.4 निर्णायक मत का अधिकार
    8.5.5 वित्त विधयेकों का प्रमाणीकरण
    8.5.6 समितियों सम्बन्धी शक्ति
    8.5.7 सदन का प्रतिनिधित्व
    8.5.8 विशेषाधिकारों का संरक्षक
    8.5.9 अधीक्षण की शक्ति
    8.5.10 परिणामों की घोषणा करना
8.6 सारांश

8. 0 उद्देश्य

इस खंड के अन्तर्गत ब्रिटिश स्पीकर पद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विकास और शक्तियों का वर्णन किया गया है। इस पद का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

- स्पीकर पद के ऐतिहासिक विकास क्रम की स्थिति को समझ सकेंगे,
- स्पीकर पद की निर्दलीयता का विश्लेषण करेंगे,
- वर्तमान में इस पद की गरिमा एवं प्रतिष्ठा को समझ सकेंगे।

8. 1 प्रस्तावना

ब्रिटिश लोकसभा के अध्यक्ष को 'स्पीकर (Speaker) कहा जाता है। उसका पद एक ऐतिहासिक , गौरवपूर्ण तथा शान शौकत का पद है। उसका आसन इतना पवित्र और गरिमामय माना जाता है कि राजा तक उसका सम्मान करता है। सदन की कार्यवाही के संचालन में उसकी तटस्थता, निष्पक्षता एवं निर्दलीयता उसके गौरव को और अधिक बढ़ा देती है। स्पीकर का पद ग्रहण करते ही वह सक्रिय राजनीति से सन्यास ले लेता है तथा निर्दलीय आचरण करता है। इसलिए स्पीकर को सबका सम्मान प्राप्त होता है और उसके अधिकार को सभी मानते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. 2 स्पीकर पद का विकास

ब्रिटिश स्पीकर के पद की रचना किसी संविधान या संसदीय संविधि द्वारा नहीं की गयी। उसके पद का विकास संसद के प्रारम्भिक काल से ही चला आ रहा है। सन् 1336 ई. से इस ऐतिहासिक पद का आधार उपलब्ध है, जब थॉमस हंगर फोर्ड देश के पहले स्पीकर बने थे। उन्हें 'स्पीकर' इसलिए कहा गया था क्योंकि प्रारम्भ में केवल उन्हें ही सदन की तरफ से सम्राट के पास जाने और बोलने का अधिकार था। प्रारम्भ में कॉमन सभा या लोकसदन या लोकसभा सम्राट के पास केवल याचिका भेजने वाली संस्था थी। यह कानून बनाने वाली संस्था नहीं थी, उस समय कॉमन सभा की तरफ से उसका अध्यक्ष सम्राट के सम्मुख केवल बोलने का काम ही किया करता था। अत: उसे स्पीकर कहा जाने लगा।

8. 3 स्पीकर का निर्वाचन

प्राचीनकाल में राजा ही स्पीकर की नियुक्ति करता था। उसका विश्वासपात्र व्यक्ति स्पीकर नियुक्त किया जाता था। जैसे–जैसे कॉमन सभा ने अपने अधिकारों पर जोर देना शुरू किया उसके निर्वाचन की शक्ति कॉमन सभा के हाथों में केन्द्रीत होती गयी। आज स्पीकर का निर्वाचन कॉमन सभा द्वारा होता है। स्पीकर का निर्वाचन प्राय: सर्वसम्मति से होता है। एक बार जो व्यक्ति अध्यक्ष निर्वाचित हो जाता है, वह प्राय: तब तक अध्यक्ष निर्वाचित होता रहता है जब तक उसमें कार्य करने की शक्ति रहती है। सरकारें बदल जाती है, पर अध्यक्ष प्राय: नहीं बदलता। अध्यक्ष पद के लिए प्राय: संघर्ष नहीं होता। इसके लिए साधारणत: एक ही व्यक्ति का नाम प्रस्तावित होता है। प्रधानमंत्री तथा विरोधी दल का नेता परस्पर विचार करके, किसी ऐसे व्यक्ति को स्पीकर पद के लिए खड़ा करते है जो बहुमत प्राप्त दल तथा प्रतिपक्षी दल दोनों को मान्य हो। इस प्रकार स्पीकर पद का निर्वाचन, एकमत से निर्विरोध होता है तथा इस पद के लिए यह कहावत प्रचलित हो गई है कि एक बार स्पीकर, सदा के लिए स्पीकर।

8. 4 स्पीकर का वेतन

स्पीकर को वेतन के रूप में 8500 पौण्ड वार्षिक मिलते हैं। उसको रहने के लिए सरकारी निवास–स्थान मिलता है। सेवानिवृत्त होने पर, कॉमन सभा की प्रार्थना पर, उसे आजीवन पीयर नियुक्त कर दिया जाता है।

8. 5. स्पीकर की शक्तियाँ

स्पीकर की शक्तियों को निम्नलिखित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है –

8. 5. 1 कॉमन सभा की अध्यक्षता :– स्पीकर कॉमन सभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है। वह सदन की कार्यवाही का संचालन करता है। वह सदन में शान्ति व्यवस्था और अनुशासन को बनाये रखता है। सदन में, सभी भाषण स्पीकर को सम्बोधित करके दिये जाते हैं। यदि कोई सदस्य नियमों को भंग करता है तो वह उसे दण्डित कर सकता है। यदि सदन ही अव्यवस्थित हो जाये तो स्पीकर उसे थोड़े समय के लिए स्थगित कर सकता है।

8. 5. 2 बोलने की आज्ञा :–सदन में विधेयकों तथा अन्य विषयों पर बोलने वाले बहुत अधिक सदस्य होते हैं। सदन के पास इतना समय नहीं होता कि प्रत्येक सदस्य को बोलने की आज्ञा प्रदान कर सके। इसलिए स्पीकर कुछ सदस्यों को बोलने के लिए बुलाता है। उसकी आज्ञा के बिना कोई भी सदस्य नहीं बोल सकता। वह किसी भी सदस्य को किसी अप्रासंगिक बात पर बोलने से रोक सकता है, तथा उसके भाषण को रेकार्ड से निकलवा सकता है।

8. 5. 3 नियमों की व्याख्या :– स्पीकर प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों को लागू करता है तथा उनकी व्याख्या करता है। उसकी व्याख्यायें स्थायी आदेशों एवं पूर्व के निर्णयों पर आधारित होती हैं। उसके निर्णय अन्तिम होते हैं और उन्हें प्राय: चुनौती नहीं दी जाती है।

8. 5. 4 निर्णायक मत का अधिकार :– स्पीकर प्रस्तावों एवं प्रश्नों को मतदान के लिए प्रस्तुत करता है तथा उनके परिणामों की घोषणा करता है। यदि किसी प्रस्ताव पर मतदान बराबर–बराबरहो जाये तो वह अपने निर्णायक मत का प्रयोग करता है। परन्तु यहाँ भी स्पीकर निष्पक्षता का परिचय देता है और अपने निर्णायक मत का प्रयोग इस प्रकार करता है कि यथास्थिति बनी रहे और सदन ही पुनर्विचार द्वारा बहुमत से निर्णय ले। वह अपने इस अधिकार का भी दुरुपयोग नहीं करता है।

8. 5. 5 वित्त विधेयकों का प्रमाणीकरण :– सन् 1911 के संसदीय अधिनिमय के अनुसार ब्रिटेन में स्पीकर को यह शक्ति दी गई कि यदि किसी विधेयक पर यह विवाद खड़ा हो जाए कि वह वित्त विधेयक है या नहीं, तो इस विषय पर स्पीकर का निर्णय अन्तिम होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. 5. 6 समितियों सम्बन्धी शक्ति :- स्पीकर यह निर्णय करता है कि कौनसा विधेयक किस समिति को सौंपा जाए। इसके अतिरिक्त वह चयन समिति के द्वारा तैयार की हुई सूची में से स्थायी समितियों के अध्यक्षों की भी नियुक्तियाँ करता है।

8. 5. 7 सदन का प्रतिनिधित्व :- स्पीकर सदन से बाहर उसका प्रतिनिधित्व करता है। वह सदन तथा सम्राट के बीच सम्पर्क सूत्र का कार्य करता है। सदन की ओर से वह सरकारी उत्सवों एवं समारोहों में उपस्थित होता है। वह सदन को सम्बोधित किये गये दूसरे देशों एवं व्यवस्थापिकाओं के दस्तावेजों एवं सन्देशों को प्राप्त करता है।

8. 5. 8 विशेषाधिकारों का संरक्षक :- कॉमन सभा के सदस्यों को कतिपय विशेषाधिकार प्राप्त होते है। स्पीकर इन विशेषाधिकारों की रक्षा करता है। जब कभी सदन का कोई सदस्य विशेषाधिकारों के उल्लंघन की शिकायत करता है तो स्पीकर इस बात का निर्धारण करता है कि विशेषाधिकार उल्लंघन का मामला बनता है या नहीं। जहाँ विशेषाधिकार का उल्लंघन पाया जाता है वहाँ वह दण्ड की घोषणा करता है। उसकी आज्ञा के बिना किसी सदस्य को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।

8. 5. 9 अधीक्षण की शक्ति :- कॉमन सभा का एक सचिवालय होता है जिसका अधीक्षण स्पीकर करता है जिसमें सचिव, सुपरिण्टेण्डेण्ट, लेखकगण, पुस्तकालय अध्यक्ष रहते हैं। वे स्पीकर की देखरेख में कार्य करते हैं।

8. 5. 10 परिणामों की घोषणा करना :- स्पीकर प्रस्तावों तथा विधेयकों पर सदन में मतदान कराता है और परिणामों की घोषणा करता है, यदि सरकार की ओर से कोई प्रस्ताव मतदान के लिए उपस्थित किया जाता है, तो स्पीकर यह देखता है कि अल्पसंख्यक वर्ग को उस प्रस्ताव पर बोलने का काफी अवसर प्राप्त हो जाए, उसके बाद ही वह उस प्रस्ताव पर वाद–विवाद बंद करने की अनुमति देता है।

8. 6 सारांश

इस प्रकार ब्रिटिश स्पीकर की शक्तियाँ और उसके कर्त्तव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्पीकर एक ऐसा आदर्श व्यक्ति है जिस पर सदन को पूर्ण विश्वास होता है। वह जो कुछ करता है सबको मान्य होता है। वास्तव में वह लोकतन्त्रात्मक परम्पराओं का प्रतीक और संरक्षक है। अत: उसका पद अत्यधिक प्रतिष्ठा, सम्मान और गौरव का पद है। गॉडर्न के शब्दों में कॉमन्स सभा के अध्यक्ष का पद ''दुनिया का एक सबसे अधिक सम्माननीय, शानदार और भार युक्त पद है।'' इस प्रकार स्पीकर के पद के साथ गौरव, शक्ति व दायित्व जुड़े हुए हैं। ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में उसका अपूर्व महत्त्व है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटेन में कॉमनसभा के स्पीकर का चुनाव, शक्तियाँ एवं स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश लोकसदन के अध्यक्ष का निर्वाचन कैसे होता है ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कॉमन सभा के स्पीकर के बारे में कौनसी प्रमुख परम्परा विकसित हुई है ?
2. कॉमन सभा के स्पीकर के दो प्रमुख कार्य लिखिए।
3. 'एक बार स्पीकर, सदैव स्पीकर' से आपका क्या तात्पर्य है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-09
ब्रिटेन में विधि निर्माण की प्रक्रिया

संरचना

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 विधेयकों के प्रकार
9.2.1 सार्वजनिक विधेयक
9.2.2 निजी विधेयक
9.2.3 वित्त विधेयक
9.2.4 अवित्त विधेयक
9.2.5 सरकारी विधेयक
9.2.6 निजी सदस्य विधेयक
9.3 सार्वजनिक विधेयकों से सम्बन्धित विधि निर्माण प्रक्रिया
9.3.1 प्रस्तुतीकरण या प्रथम वाचन
9.3.2 द्वितीय वाचन
9.3.3 समिति स्तर
9.3.4 प्रतिवेदन स्तर
9.3.5 तृतीय वाचन
9.3.6 विधेयक का दूसरे सदन में जाना
9.3.7 सम्राट द्वारा स्वीकृति
9.4 दोनों सदनों में मतभेद पर
9.5 वित्त विधेयकों से सम्बन्धित विधि निर्माण प्रक्रिया
9.6 निजी सदस्यों के विधेयक
9.7 असार्वजनिक निजी विधेयकों से सम्बन्धित विधि-निर्माण प्रक्रिया
9.8 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. 0 उद्देश्य

इस खण्ड के अन्तर्गत इंगलैण्ड में विधि निर्माण की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप विधेयकों के प्रस्तुतीकरण की भाषा-शैली और कानूनों के क्रियान्विति के पक्ष को समझ सकेंगे-

- कानून बनाने के लिए विधेयक किन-किन प्रक्रियाओं से गुजरता है, की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- विधेयकों के प्रकार को समझ सकेंगे,
- वित्त विधेयक और साधारण विधेयक के अन्तर को समझ सकेंगे।

9. 1 प्रस्तावना

ब्रिटिश साम्राज्य के लिए कानूनों का निर्माण संसद का सबसे प्रमुख कार्य है। संसद देश के लिए व्यवस्थापन करती है जिसको कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिमण्डल क्रियान्वित करती है। ब्रिटिश संसद प्रतिवर्ष सैकड़ों विधेयकों को पारित करती है। जब वह स्वयं

कानून नहीं बनाती तब वह व्यवस्थापन का अधिकार, प्रदत्त व्यवस्थापन के माध्यम से, विभिन्न विभागों को प्रदान कर देती है। विधि निर्माण के लिए संसद में एक निश्चित और निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्य होता है। ब्रिटेन की विधि निर्माण-प्रणाली ने, जो अत्यन्त वैज्ञानिक रूप में व्यवस्थित है, लगभग सम्पूर्ण विश्व के विधानमण्डलों को प्रभावित किया है।

9. 2 विधेयकों के प्रकार

ब्रिटिश विधेयकों के विभिन्न प्रकार अग्रिम तालिका से स्पष्ट है-

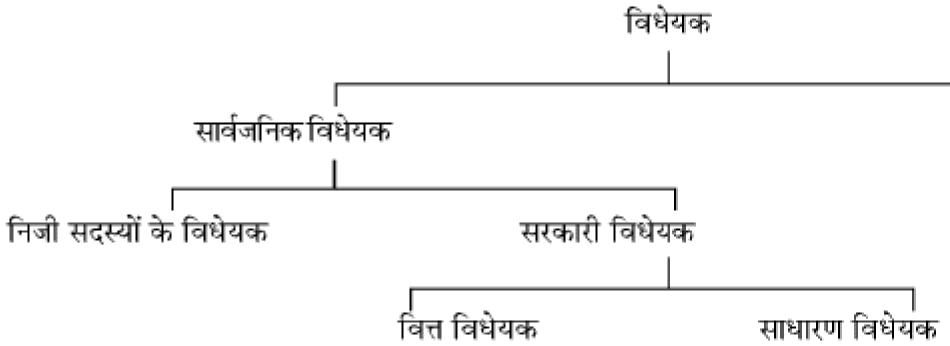

9. 2. 1 सार्वजनिक विधेयक :- सार्वजनिक विधेयक वे होते हैं जिनका सम्बन्ध देश की सम्पूर्ण जनता से या जनता के बहुत बड़े भाग से होता है। उदाहरणार्थ, कर सम्बन्धी विधेयक, प्रशासनिक विधेयक, मताधिकार सम्बन्धी विधेयक, अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी विधेयक आदि। ऐसे विधेयकों का उद्देश्य किसी सार्वजनिक हित की साधना होता है।

9. 2. 2 निजी विधेयक :- असार्वजनिक विधेयक वह होता है जिसका सम्बन्ध किसी स्थानीय क्षेत्र, निगम, नगरपालिका अथवा किसी विशेष हित से होता है। इसका प्रभाव-क्षेत्र भी सीमित होता है। ऐसा विधेयक सर्वसाधारण से सम्बन्धित नहीं होता। उसका सम्बन्ध सीमित संख्या के लोगों से होता है।

9. 2. 3 वित्त विधेयक :- जिन विधेयकों का सम्बन्ध करारोपण, सरकार द्वारा ऋण लेने आदि से होता है, उन्हें वित्त या धन-विधेयक कहते है। वित्त विधेयक सरकारी तौर पर केवल मन्त्रियों द्वारा ही प्रस्तुत कियें जाते है। निजी तौर पर सदन में सदस्यों द्वारा उन्हें प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

9. 2. 4 अवित्त विधेयक :- जिन विधेयकों का सम्बन्ध आय या व्यय से नहीं होता, उन्हें साधारण या अवित्त या गैर वित्त विधेयक कहते है। ये विधेयक या तो सरकार की ओर से प्रस्तुत किए जा सकते हैं या गैर सरकारी सदस्यों द्वारा।

9. 2. 5 सरकारी विधेयक :- जिन सार्वजनिक विधेयकों को मन्त्रिमण्डल के सदस्यों द्वारा सरकार के नाम से सदन में प्रस्तुत किया जाता है, उन्हें सरकारी विधेयक कहते है।

9. 2. 6 निजी सदस्य विधेयक :- उन सार्वजनिक, अवित्तीय विधेयको से है जो गैर सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किए जाते है। इन विधेयकों का प्रभाव सर्वसाधारण जनता पर या जनता के अधिकांश भाग पर पड़ता है।

9. 3 सार्वजनिक विधेयकों से सम्बन्धित विधि निर्माण प्रक्रिया

साधारणतया कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है, परन्तु कोई भी वित्त विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तावित किया जा सकता हैं। प्रत्येक विधेयक को कानून का रूप ग्रहण करने के लिए निम्नलिखित अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है:

9. 3. 1 प्रस्तुतीकरण या प्रथम वाचन :- कोई भी सार्वजनिक विधेयक सैद्धान्तिक रूप में किसी भी संसद सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु व्यवहार में सभी महत्त्वपूर्ण सार्वजनकि विधेयक सरकार की ओर से किसी न किसी मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। वित्त-विधेयक अनिवार्यत: वित्त मन्त्री द्वारा ही प्रस्तुत होता है और वह भी लोकसभा में ही। अन्य विधेयक संसद के दोनों सदनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं, परन्तु महत्त्वपूर्ण विधेयकों को प्राय: लोकसभा में ही प्रस्तावित करने की प्रथा हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. साधारण प्रस्तुतीकरण
2. दस मिनट के नियम का प्रस्तुतीकरण
3. विधेयक की व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाला प्रस्तुतीकरण

साधारण प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत विधेयक के प्रस्तावक को विधेयक प्रस्तुत करने से पूर्व किसी प्रकार का भाषण नहीं देना पड़ता है। विधेयक को प्रस्तुत करने की लिखित सूचना वह सदन के लिपिक को देता है। सदन का अध्यक्ष विधेयक को विधिवत प्रस्तुत करने के लिए उसे बुलाता है। वह स्वयं अथवा लिपिक विधेयक के शीर्षक को पढ़ देता है। इस प्रकार विधेयक के प्रस्तुतीकरण की क्रिया पूरी हो जाती है। तत्पश्चात् यह प्रस्ताव किया जाता है कि विधेयक को पहली बार पढ़ा हुआ समझा जाए और उसे छपवाने की आज्ञा दी जाए। इस प्रस्ताव के स्वीकार होने पर विधेयक का प्रस्तुतीकरण व प्रथम वाचन समाप्त हो जाता है।

दस मिनट के नियम के प्रस्तुतीकरण का प्रयोग सरकार द्वारा विवादास्पद और महत्त्व के विधेयकों के लिए किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत प्रस्तावक तथा विपक्ष के एक सदस्य को थोड़े-थोड़े समय में इस बात का अवसर दिया जाता है कि प्रस्तावक विधेयक का उद्देश्य व उसका महत्त्व तथा विपक्ष उसकी आलोचना सदन के सम्मुख रखें। इसके पश्चात् इस बात का प्रस्ताव रखा जाता है कि विधेयक का प्रथम वाचन पूरा हो जाता है।

विधेयक की व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत प्रस्तावक अपने विधेयक के सिद्धान्तों और उसके लाभों को स्पष्ट करते हुए एक लम्बा भाषण देता है, और प्रस्ताव रखता है कि सदन में विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए। विरोध करने वाले सदस्य विधेयक का विरोध करते हैं। अन्त में मतदान द्वारा निर्णय होता है। यदि सदन का निर्णय प्रस्ताव के पक्ष में होता है, तो इस प्रकार का प्रस्ताव सदन के समक्ष रखा जाता है कि विधेयक का प्रथम वाचन पूर्ण समझा जाए ।

9. 3. 2 द्वितीय वाचन :- प्रथम वाचन के पश्चात् जब विधेयक छप जाता है, तब वह सूची पर आ जाता है। विधेयक के दूसरे वाचन के लिए एक तारीख निश्चित कर दी जाती है। इस तारीख को प्रस्तावक यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक को दूसरी बार पढ़ा जाए।

द्वितीय वाचन के समय विधेयक पर वास्तविक वाद-विवाद होता है। इस वाचन में विधेयक के शीर्षक, उद्देश्य, प्रयोजन और सिद्धान्तों पर खुलकर वाद-विवाद किया जाता है। विधेयक के सिद्धान्तों और उसकी अच्छाइयों एवं बुराईयों पर पूर्ण विचार होता है। इस अवस्था में कोई संशोधन नहीं हो सकता। सदन सम्पूर्ण विधेयक को स्वीकृत या अस्वीकृत कर देता है। पहला तरीका यह है कि सीधे शब्दों में यह प्रस्ताव रख दिया जाए कि अमुख विधेयक सिद्धान्त रूप से दोषपूर्ण है तथा उसे कानून न बनाया जाए। दूसरा तरीका यह है कि विरोधी पक्ष की ओर से विधेयक को इतने समय बाद दूसरी बार पढ़ने का संशोधन रख दिया जाए कि संसद का सत्र ही समाप्त हो जाए। द्वितीय वाचन में यदि सरकार की हार हो जाए तो सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है।

9. 3. 3 समिति स्तर :- दूसरे वाचन से पारित होने के बाद विधेयक समिति अवस्था में प्रवेश करता है। विधेयक के उपबन्धों पर विस्तृत चर्चा करने के लिए इसको किसी भी स्थायी समिति के पास भेज दिया जाता है, परन्तु यदि विधेयक बहुत महत्त्वपूर्ण है या विवादास्पद है, तो सदन यह आदेश दे सकता है कि विधेयक को प्रवर समिति के पास भेज दिया जाए। सदन किसी भी साधारण विधेयक को किसी विशेष कारण से सारे सदन की समिति के पास भेज सकता है, परन्तु ऐसा बहुत कम होता है।

विधेयक के जीवन में समिति स्तर का भी बड़ा महत्त्व है। इसी स्तर पर विधेयक को विधेयक के रूप में पूर्ण बनाया जाता है। इस स्तर पर विधेयक पर धारा, प्रतिधारा व शब्द-प्रतिशब्द विचार किया जाता है। यहाँ विधेयक पर अनौपचारिक ढंग से विचार होता है। विधेयक पर पूरी तरह छानबीन करने के बाद एक रिपोर्ट तैयार की जाती है जिसे समिति का सभापति सदन के सामने रखता है।

9. 3. 4 प्रतिवेदन स्तर :- इस अवस्था में विधेयक के बारे में समिति द्वारा तैयार किए प्रतिवेदन पर विस्तृत रूप से सदन में विचार होता है। यदि समिति ने किसी धारा को संशोधित किया है तो सदस्य या तो उसको स्वीकार कर सकते है, या अस्वीकार कर सकते है। इस अवस्था में विधेयक की प्रत्येक धारा पर गर्मागर्म बहस होती है। विरोधी दल सरकारी विधेयक का प्रबल विरोध करते हैं और विधेयक का विरोध करने के लिए अपनी पूरी शक्ति को इकट्ठा करते हैं। प्रत्येक धारा पर मतदान होता है और जो धाराएं बहुमत से पास नहीं होती हैं, उन्हें विधेयक से निकाल दिया जाता है। इस स्तर पर जिस रूप में भी विधेयक स्वीकृत होता है वह तृतीय वाचन के लिए तैयार हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9. 3. 5 तृतीय वाचन :- विधेयक के जीवन का सदन में तृतीय वाचन अन्तिम स्तर होता है। इस पर भी वाद-विवाद होता है और विधेयक के सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है। इसका उद्देश्य होता है कि संशोधित विधेयक को एक बार अन्तिम रूप से फिर देख लिया जाए, उसकी परीक्षा कर ली जाए और तभी उसको अन्तिम स्वीकृत प्रदान की जाए। इस स्तर पर विधेयक के रूप पर तथा वाक्य-प्रतिवाक्य अथवा शब्द-प्रतिशब्द पर विचार नहीं होता। केवल विधेयक के सिद्धान्तों और उसके गुण-दोषों पर विचार किया जाता है। इस तरह तथ्य सम्बन्धी परिवर्तन इस स्तर पर नहीं होते। अन्त में, इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है कि विधेयक का तृतीय वाचन पूर्ण हो गया है। इसका आशय होता है कि विधेयक सदन में अन्तिम रूप से स्वीकृत एवं पारित हो गया है।

9. 3. 6 विधेयक का दूसरे सदन में जाना :- प्रथम सदन में विधेयक के पारित हो जाने के बाद उस पर अध्यक्ष के हस्ताक्षर होते हैं और उसे दूसरे सदन में भेजा जाता है। वहाँ फिर वह विधेयक इन्हीं पाँच अवस्थाओं से होकर गुजरता है। यदि दूसरा सदन भी इस विधेयक को पारित कर दे, तो विधेयक सम्राट की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

9. 3. 7 सम्राट द्वारा स्वीकृति :- विधेयक के जीवन का अन्तिम स्तर राजकीय स्वीकृति का होता है। यह स्तर केवल औपचाारिक है। विधेयक को इस अन्तिम अवस्था में सम्राट की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। सम्राट की स्वीकृति मिलने पर विधेयक कानून बन जाता है।

9. 4 दोनों सदनों में मतभेद पर

कभी-कभी किसी विधेयक को लेकर दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो सकता है। यदि दूसरा सदन विधेयक में संशोधन का सुझाव देता है तो विधेयक पुन: उसे प्रारम्भ करने वाले सदन के पास भेजा जाता है। यदि उसे आरम्भ करने वाला सदन संशोधन स्वीकार कर ले तो विधेयक सम्राट के पास हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है। यदि विधेयक लॉर्ड सभा में प्रस्तावित हुआ है और लोकसभा ने उसे अस्वीकार कर दिया है तो विधेयक का अन्त कर दिया जाता है। यदि विधेयक लोकसभा में प्रस्तावित हुआ है और लॉर्ड सभा ने ऐसे संशोधन प्रस्तुत किए है, जो लोकसभा को मान्य नहीं है तो नवीन स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अब स्थिति (1911 और 1949 के संसदीय अधिनियमों के पारित होने के बाद) इस प्रकार है- यदि लोकसभा उसे दो लगातार सत्रों में पारित कर दे और पहली बार विधेयक के दूसरे वाचन की तिथि और दूसरी बार विधेयक के तीसरे वाचन की तिथि में कम-से-कम एक वर्ष का समय व्यतीत हो चुका हो तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। इस प्रकार दोनों सदनों में मतभेद होने पर लॉर्ड सभा किसी साधारण विधेयक को केवल एक वर्ष के लिए रोक सकती है।

9. 5 वित्त-विधेयकों से सम्बन्धित विधि-निर्माण प्रक्रिया

वित्त विधेयकों का सम्बन्ध आर्थिक विषयों से होता है। वित्त विधेयकों की एक विशिष्ट स्थिति होती है और ये अनिवार्यत: लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जाते है। लोकसभा वित्त विधेयकों को संशोधित या अस्वीकृत कर सकती है, किन्तु जब अनुदान के लिए माँग की जाए तब यह प्रार्थित-राशि को कम या अस्वीकार तो कर सकती है, पर उसे बढ़ा नहीं सकती। वित्त विधेयकों पर लॉर्ड-सभा का कोई अधिकार नहीं होता। इस तरह लोकसभा आय-व्यय के चिट्ठे की पूरी जाँच करती है और वित्तीय नीति पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखती है। वित्त विधेयकों की विधि-निर्माण सम्बन्धी प्रक्रिया निम्नलिखित है-

1. सभी वित्त-विधेयक राजा या रानी की सिफारिश पर सरकार की ओर से साधारणत: वित्त मन्त्री द्वारा लोकसभा में प्रस्तुत किए जाते हैं।
2. लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा प्रमाणीकृत विधेयक ही वित्त विधेयक समझे जाते है।
3. द्वितीय वाचन के पश्चात् वित्त विधेयक के लिए यह आवश्यक है कि उसे सम्पूर्ण सदन की समिति के विचारार्थ भेजा जाए।
4. वित्त विधेयकों को पारित करने का अन्तिम अधिकार लोकसभा को प्राप्त है। सन् 1949 के संसदीय अधिनियम के अनुसार लॉर्ड सभा वित्त विधेयक के पारित होने में केवल एक माह की देरी कर सकती है।
5. वित्त विधेयक के बारे में सम्राट अपनी अनुमति देने से इन्कार नहीं कर सकता।

9. 6 निजी सदस्यों के विधेयक

निजी सदस्यों के विधेयक भी सार्वजनिक विधेयक ही होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि सरकारी सार्वजनिक विधेयक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मन्त्रियों के द्वारा सदन में प्रस्तुत किये जाते हैं, लेकिन निजी सदस्यों के विधेयक सदन के किसी साधारण सदस्य द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। लोकसदन का अधिकांश समय सरकारी विधेयकों पर ही चला जाता है और निजी सदस्यों के विधेयकों के लिए बहुत कम समय बचता है। इनके लिए सप्ताह में एक दिन (शुक्रवार) निश्चित होता है। अधिवेशन के पूर्व साधारण सदस्य अपने विधेयक पुन: स्थापन के लिए प्रस्तुत करते हैं। अधिवेशन के पूर्व उनकी एक सूची तैयार कर ली जाती है और लॉटरी के आधार पर विधेयकों को विचार के लिए चुना जाता है। जिस प्रस्तावक का नाम पहले निकलता है उसके विधेयक को पहला शुक्रवार और दूसरे को दूसरा शुक्रवार मिलता है। अधिवेशन के दिनों में जितने शुक्रवार पड़ते हैं, उतने विधेयक क्रम के अनुसार ले लिए जाते हैं और शेष रद्द हो जाते हैं। अत: कुछ भाग्यशाली सदस्यों के प्रस्ताव ही विचार के लिए स्थान पाते हैं।

9. 7 असार्वजनिक निजी विधेयकों से सम्बन्धित विधि-निर्माण प्रक्रिया

व्यक्तिगत विधेयक प्राय: नगरपालिकाओ और नगरनिगमों जैसी स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किये जाते है और इनका सम्बन्ध सार्वजनिक हित-साधन न होकर विशिष्ट हित साधन होता है। व्यक्तिगत विधेयक का उद्देश्य किसी व्यक्ति को कोई निवृत्ति अथवा अधिकार देना हो सकता है, या किसी स्थानीय संस्था को कार्य करने की स्वीकृति देना हो सकता है, बशर्ते कि उससे किसी व्यक्ति के सार्वजनिक या व्यक्तिगत अधिकारों में हस्तक्षेप न होता हो।

इन विधेयकों के पारित होने की निम्नलिखित प्रक्रियाएँ हैं-

1. प्रत्येक विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है और यह प्राय: संसद के बाहर के व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा भेजा जाता है।
2. निजी विधेयकों के प्रस्तुतीकरण के लिए यह आवश्यक है कि उसके लिए एक प्रार्थनापत्रमय उसके प्रारूप के निजी विधेयकों के कार्यालय में दिया जाए, उसके विषय में सरकारी बजट में घोषणा की जाए, विधेयक का प्रस्तुतीकरण चाहने वाला उतनी धनराशि सरकारी कोष में जमा करे जितनी उसमें व्यय होने की सम्भावना हो तथा एक अधिकारी विधेयक के विषय में यह प्रमाणित करे कि वह नियमानुसार है।
3. द्वितीय वाचन में यदि विधेयक का विरोध न हो तो वह 'निर्विरोध बिल समिति' के पास भेज दिया जाता है। यदि विधेयक का विरोध हो, तो इसे 'प्राइवेट बिल समिति' के पास भेज दिया जाता है। यह समिति विधेयक न्यायालय के समान विचार करती है, किन्तु यदि समिति विधेयक सम्बन्धी सब बातों से संतुष्ट हो जाती है तो वह विधेयक की धाराओं पर विस्तारपूर्वक विचार करने के उपरान्त अपने प्रतिवेदन के साथ उसे सदन को वापस भेज देती है। इसके बाद दोनों सदनों में स्वीकार कर लिया जाता है। तत्पश्चात् राजकीय स्वीकृति के बाद वह कानून बन जाता है।

9. 8 सारांश

वस्तुत: ग्रेट ब्रिटेन में विधि-निर्माण की प्रक्रिया संसद में एक निश्चित और निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्य करती है। इस पद्धति से विधि निर्माण में कोई त्रुटि नहीं होती वरन् विधेयक का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् उक्त विधेयक कानून का रूप ग्रहण करता है, इसलिए इस प्रणाली को वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटेन में प्रचलित विधि निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
2. विभिन्न प्रकार के विधेयकों का वर्णन करते हुए बताइये कि ब्रिटिश संसद में वे किस प्रकार प्रस्तावित एवं पारित किये जाते है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संसद में बजट (वित्त विधेयक) पारित होने की प्रक्रिया स्पष्ट कीजिए।
2. सार्वजनिक विधेयकों से सम्बन्धित विधि निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सार्वजनिक विधेयक किसे कहते हैं ?
2. वित्त विधेयक सर्वप्रथम किस सदन में प्रस्तुत किया जाता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-10
सिविल सेवा

संरचना

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 लोक सेवा का अर्थ
10.3 ब्रिटेन में लोक सेवा का विकास
    10.3.1 नार्थ कोट ट्रेवेलियान रिपोर्ट, 1853
    10.3.2 बीसवीं शताब्दी
    10.3.3 फुल्टन रिपोर्ट
10.4 लोक सेवा के कार्य
    10.4.1 नीति निर्माण में सहायक
    10.4.2 सलाह देना
    10.4.3 नीति को कार्यान्वित करना
    10.4.4 वित्तीय क्षेत्रों में सहायक
    10.4.5 सरकार की नीतियों को जनता तक पहुँचाना
    10.4.6 सार्वजनिक सेवाओं को निष्ठापूर्वक सम्पन्न करना
10.5 ब्रिटेन में मंत्री लोक सेवक सम्बन्ध
    10.5.1 मन्त्रियों की प्रशासनिक अनभिज्ञता
    10.5.2 लोकसेवकों में प्रशासनिक विशिष्टता या विशेषज्ञता
    10.5.3 मन्त्रियों का व्यावसायिक या पेशेवर न होना
    10.5.4 क्या मंत्री लोक सेवाओं के हाथ की कठपुतली होते हैं ?
10.6 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.0 उद्देश्य :-

इस इकाई में ब्रिटिश सिविल सेवा की चर्चा की गई है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप ब्रिटिश सिविल सेवा की सामान्य परिचय की जानकारी प्राप्त करेंगे-

- ब्रिटिश सिविल सेवा के विकास को समझ सकेंगे,
- सिविल सेवा के वर्गीकरण की व्याख्या कर सकेंगे,
- सिविल सेवा के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे,
- मन्त्री और लोक सेवकों के सम्बन्धों की विवेचना कर सकेंगे।

10. 1 प्रस्तावना

''ग्रेट ब्रिटेन में शासन न तो मन्त्रिमण्डल द्वारा और न ही व्यक्तिगत मन्त्रियों द्वारा बल्कि लोकसेवकों द्वारा चलाया जाता है।'' **-वेब**

किसी भी देश की शासन–व्यवस्था की सफलता अथवा विफलता उसके लोक–सेवाओं पर निर्भर करती है। देश का वास्तविक प्रशासन इन लोकसेवकों के हाथ में होता है। मन्त्रिगण तो केवल नीति–निर्धारण ही करते हैं। उस नीति का क्रियान्वयन लोकसेवकों द्वारा किया जाता है। समय–समय पर मन्त्रिगण बदलते रहते हैं, पर लोक सेवक स्थायी रूप से बने रहते हैं। ब्रिटेन में सरकार के परिवर्तन के कारण लोकसेवकों में परिवर्तन नहीं होता, वे स्थायी रूप से सभी सरकारों के अधीन कार्य करते रहते हैं। यदि ये कर्मचारी योग्य तथा कुशल होते हैं, तो प्रशासन अच्छा होता है अन्यथा नहीं। सरकारों के परिवर्तन के बाद भी लोकसेवकों की स्थिति अप्रभावित रहती है।

10. 2 लोक सेवा का अर्थ

सरकार के विविध विभागों एवं कूटनीतिक सेवा में कार्य करने वाले कर्मचारियों (स्टाफ) को सिविल सेवक कहते हैं। सिविल सेवक क्राउन के वे सेवक हैं जिन्हें राजनीतिक अथवा न्यायिक पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता, बल्कि सिविल (नागरिक) पदों पर नियुक्त किया जाता है। और जिन्हें संसद द्वारा स्वीकृत धन से वेतन प्राप्त होते है।'लोक सेवा' शब्द की ब्रिटेन में यह परिभाषा की गयी है : ''राजनीतिक न्यायिक पदाधिकारियों के अतिरिक्त 'ताज' के वे सेवक जो असैनिक रूप से सेवायोजित हों और जिनका पारिश्रमिक पूर्णत: तथा प्रत्यक्षत: उस धनराशि में दिया जाता है जो संसद द्वारा इस हेतु स्वीकृत की गयी हो।'' लोकसभा को नागरिक सेवा या सिविल सेवा का भी नाम दिया जाता है।

10. 3 ब्रिटेन में लोकसेवा का विकास

ब्रिटेन में सिविल सेवाओं का विकास सहसा या आकस्मिक रुप से नहीं हुआ। इनका विकास क्रमिक रूप से हुआ है। प्रारम्भ में शासन का कार्य राजघराने के लोग चलाते थे, किन्तु मन्त्रिमण्डलात्मक शासन के विकास के साथ–साथ प्रशासन–संचालन के लिए अधिकारियों की नियुक्ति मन्त्रियों द्वारा होने लगी जो प्राय: स्वस्थ रहने तक पदासीन रहते थे। किन्तु 18वीं शताब्दी के अन्त में और 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बर्क, बेंथम आदि ने इस प्रकार की नियुक्ति–प्रथा पर आक्षेप किए। उक्त आलोचनाओं के फलस्वरूप लोकसेवकों की नियुक्ति–प्रथा में शैनै:–शैनै: सुधार होने लगा।

10. 3. 1 नार्थ कोट ट्रेवेलियान रिपोर्ट 1853 :– 1853 ई. में नार्थ कोर्ट ट्रेवेलियन रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश लोक सेवाओं में वास्तविक सुधार का सूत्रपात हुआ 1855 ई. में ग्लैडस्टन के अनुरोध पर 'लोक सेवा आयोग' की स्थापना की गई। आगे चलकर 1870 ई. में लोक सेवा में प्रवेश पाने के लिए आवश्यक प्रतियोगिता परीक्षायें आरम्भ हुई। परीक्षाओं के संचालन, लोक सेवा सदस्यों की भर्ती आदि की व्यवस्था लोक सेवा आयोग करने लगा।

इसके बाद निम्नलिखित सुधार हुए :–

1. प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा भर्ती।

2. योग्यता– वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति।

3. प्रशासन के बौद्धिक एवं नित्य कार्यों में भिन्नता।

4. एकल समाकलित सेवायें जिन्हें समग्र रूप से भर्ती किया जाये।

10. 3. 2 बीसवीं शताब्दी– इस शताब्दी में सेवा के संगठन को जहाँ एकीकृत करने का प्रयास किया गया है वहाँ उसे वर्गीकृत भी किया गया है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने से ट्रेजरी का नियन्त्रण बढ़ गया है। सन् 1919 ई. में ट्रेजरी को पुनर्गठित किया गया। इसमें एक स्थापना विभाग की व्यवस्था की गयी। इसका मुख्य सम्बन्ध स्थापना और स्टाफ सम्बन्धी विषयों से था ट्रेजरी के स्थायी सचिव को सिविल सेवा के प्रधान का नाम दे दिया गया। इसी समय ह्विटेल परिषदों की स्थापना भी की गयी। इसमे राज्य और कर्मचारी संगठनों के प्रतिनिधि शामिल किये जाते हैं। ये दावों और सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में वार्तायें करती हैं। राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की समिति की रिपोर्ट के फलस्वरूप 1921 ई. में सेवा का पुनर्गठन कर दिया गया। इसने सेवा को चार मुख्य श्रेणियों में विभक्त कर दिया– प्रशासनिक, कार्यकारी, लिपिक–विषयक और लिखने वाले सहायक।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. 3. 3 फुल्टन रिपोर्ट :- सिविल सेवा के विविध पहलूओं अर्थात् ढ़ाँचे, भर्ती, प्रशिक्षण आदि का अध्ययन करने के लिए 1966 ई. में एक समिति की स्थापना की गयी। इस समिति के अध्यक्ष फुल्टन थे। अत: इसके द्वारा प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट को फुल्टन रिपोर्ट कहते हैं। इस समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित रुप से थीं-

1. सिविल सेवा के उत्तरदायित्व को ट्रेजरी से हटाकर नये सिविल सेवा विभाग को सौंप दिया जाये।

2. वर्गों को समाप्त कर दिया जाये और उसके स्थान पर एकोकृत क्रमस्थापन ढ़ाँचे की व्यवस्था की जाये।

3. प्रबन्ध में प्रशिक्षण देने हेतु सिविल सेवा कॉलेज की स्थापना की जाये।

4. विभागों में अधिक गतिशीलता हो और सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में अदला-बदली हो।

5. विशेषज्ञों के लिए नीति निर्माण पदों के शीर्ष पर पहुँचने के अधिक अवसर हों।

6. उम्मीदवारों का परीक्षण उन्हीं विषयों में हो जिनसे सरकार सम्बन्धित है।

फुल्टन समिति की मान्यता थी कि भर्ती का कार्य उन्हीं के हाथों में रहना चाहिए जो व्यक्ति केप्रसार एवं प्रशिक्षण के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी हो। समिति का कहना था कि लोक सेवा आयोग को एक पृथक तथा स्वतन्त्र निकाय के रूप में न रखा जाये वरन् इसे नव गठित लोक सेवा विभाग का एक अंग बना दिया जाये। समिति का विश्वास था कि योग्यता के आधार पर नियुक्ति की परम्पराएँ अब इतनी सुदृढ़ तथा व्यवस्थित हो चुकी है कि लोक सेवा आयोग को एक पृथक संगठन रखे बिना भी वे बनी रहेंगी।

ब्रिटिश सरकार सरकार द्वारा फुल्टन समिति रिपोर्ट का व्यापक समर्थन किया गया। इसको क्रियान्वित करने के लिए 1968 ई. में एक पृथक सिविल सर्विस विभाग की स्थापना की गयी। 1971 ई. में प्रशासकीय, कार्यकारी तथा लिपिकीय की पृथक श्रेणियों को समाप्त करके एक ही सामान्य वर्ग बना दिया गया। अत: आज लोक सेवक किसी विभाग विशेष का कर्मचारी नहीं होता, बल्कि वह अब सम्पूर्ण लोक सेवा का एक सदस्य होता है और उसे योग्यतानुसार अपने पद व वेतन आदि की सुरक्षा प्राप्त होती है।

10. 4. लोकसेवा के कार्य :- आधुनिक समय में लोक सेवा को अनेक प्रकार के कार्य सम्पादित करने होते हैं। इनमें से कुछ प्रशासकीय प्रकृति के होते है, कुछ विधायी ढंग के और कुछ न्यायिक प्रकार के। जहाँ तक नीति निर्धारण का प्रश्न है, राजनीतिक कार्यपालिका (मन्त्रिगण) तथा स्थायी कार्यपालिका (सिविल सेवा)के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना आसान कार्य नहीं है। सिद्धान्तत: नीति निर्माण केवल मन्त्रियों का ही काम है, परन्तु व्यवहार में नीति निर्धारण में लोक सेवक भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

सिविल सेवा के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं-

10. 4. 1 नीति निर्माण में सहायक :- सिविल सेवा के उच्च एवं वरिष्ठ पदाधिकारी नीति निर्माण में मन्त्रियों की सहायता करते हैं। वे नीति सम्बन्धी सामग्री अर्थात् तथ्यों, सूचनाओं एवं आकड़ों को एकत्रित करते हैं, उनकी जाँच करते हैं तथा ज्ञान और अनुभव के आधार पर उन पर अपना मत प्रकट करते है, जिसके आधार पर मंत्री नीति सम्बन्धी निर्णय लेते हैं। मन्त्रियों के पास विवरणों का अध्ययन करने के लिए न समय होता है और न विशेष ज्ञान। उनको विभाग के पूर्व के निर्णयों एवं प्रशासनिक कठिनाइयों का पूरा ज्ञान भी नहीं होता। अत: वे विशेष तकनीकी प्रशासनिक ज्ञान के लिए उच्च एवं वरिष्ठ सिविल सेवकों पर निर्भर रहते हैं। दूसरे शब्दों में, सिविल सेवक मन्त्रियों को नीति-निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराते हैं।

10. 4. 2 सलाह देना :- लोक सेवा का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य राजनीतिक कार्यपालिका के सदस्यों अर्थात मन्त्रियों को परामर्श या सलाह देना है। यद्यपि शासन की बागडोर मन्त्रियों के हाथ में रहती है, तथापि उन्हें सही सलाह देने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों पर रहता है। चूँकि मन्त्री विशेषज्ञ नहीं होते हैं, इसलिए वे नीति निर्धारण के मामले में अपने विश्वस्त अधिकारियों पर अत्यधिक निर्भर रहते हैं।

10. 4. 3 नीतियों को कार्यान्वित करना :- सरकार की नीतियों को कार्यान्वित करना लोक प्रशासकों का कार्य है। नीतियाँ कितनी ही अच्छी हों, यदि उनके कार्यान्वित करने वाले कर्मचारी अच्छे और प्रतिबद्ध नहीं है तो नीतियाँ महत्त्वशून्य रह जायेंगी। नीतियों को क्रियान्विति की सफलता भी लोकसेवकों पर ही निर्भर करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10. 4. 4 वित्तीय क्षेत्रों में सहायक :- सिविल सेवक वित्तीय क्षेत्र में भी अत्यधिक सहायक होते है। वे विभागों के अनुमानों को तैयार कर ट्रेजरी को प्रेषित करते हैं। वित्त सचिव, चान्सलर ऑफ एक्सचेकर को वित्त के बारे में परामर्श देता है। उसके सुझाव पर मंत्री इस बात का निर्धारण करता है कि कौन-कौन से कर लगाये जायें, किन करों में संशोधन किया जाये तथा किन्हें समाप्त किया जाये। सचिव अपने क्षेत्र का विशेषज्ञ होता है और उसे उस क्षेत्र में अनुभव प्राप्त होता है। अत: मंत्री के लिए उसके परामर्श को ठुकराना या उसकी उपेक्षा करना सम्भव नहीं होता है। मन्त्रियों द्वारा सचिवों के परामर्श को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है।

10. 4. 5 सरकार की नीतियों को जनता तक पहुँचाना :- सिविल सेवा दोहरी भूमिका का निर्वाह करती है। एक ओर वह सरकार की नीतियों को जनता तक पहुँचाती है, उसे उसके अर्थों और उद्देश्यों को समझाती है। दूसरी ओर वह राष्ट्र अर्थात जनता की नाड़ी को पहचानती है तथा उसकी वास्तविक कठिनाइयों को अनुभव करती है। अत: वह नीति या विधि के प्रति जनता की प्रतिक्रिया को मन्त्रियों के समक्ष प्रस्तुत करती है तथा आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन का सुझाव देती है।

10. 4. 6 सार्वजनिक सेवाओं को निष्ठापूर्वक सम्पन्न करना :- वर्तमान युग में बदलती हुई परिस्थितियों ने सामाजिक सेवा के आदर्शों का क्षेत्र और अधिक व्यापक बना दिया है। लोक सेवकों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे जन कल्याण के लिए प्रशासन का पूर्ण निष्ठा के साथ संचालन करें। आजकल के युग में राज्य कल्याणकारी बन गये हैं। इसलिए सर जोशिया स्टाम्प ने ठीक ही कहा है कि ''लोक सेवकों को नये समाज की रचना का मूल स्त्रोत होना चाहिए और उस प्रत्येक स्तर पर सलाह तथा उन्नति की बात करनी चाहिए'' सारांश में सिविल सेवा की राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

10. 5 ब्रिटेन में मंत्री लोकसेवक सम्बन्ध :-

ब्रिटिश शासन-व्यवस्था अविशेषज्ञों और विशेषज्ञों के समन्वय पर आधारित है, अर्थात् ब्रिटिश शासन-सूत्र का संचालन करने वाले लोग दो प्रकार के हैं- मन्त्रिगण और लोकसेवक। मन्त्रियों में प्रशासनिक अनभिज्ञता होती है, जबकि लोक सेवकों में प्रशासनिक ज्ञान की विशिष्टता होती है। मन्त्रिगण सामान्यत: प्रशासनिक दृष्टि से अनभिज्ञ अथवा अविशेषज्ञ होते हैं मन्त्रियों तथा लोकसेवकों के सम्बन्धों के समय को निम्नलिखित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है-

10. 5. 1 मन्त्रियों की प्रशासनिक अनभिज्ञता :- मन्त्री अपने-अपने विभाग के अध्यक्ष होते हैं, किन्तु विभाग के वास्तविक अनुभवों और प्रशासनिक बारीकियों का प्राय: उन्हें ज्ञान नहीं होता। उनका प्रशासनिक ज्ञान स्थूल होता है, न कि विशिष्ट। ऐसा होना स्वभाविक भी है। प्रथम तो मन्त्री-पद पर उनकी नियुक्ति राजनीतिक आधार पर होती है, न कि किसी विशिष्ट प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर। दूसरे, उनका कार्यकाल अनिश्चित होता है, वे किसी विभाग के स्थायी अध्यक्ष नहीं होते। तीसरें, राजनीतिक प्रपंचों और गतिविधियों में वे इतने व्यस्त रहते हैं कि प्रशासन के वास्तविक संचालन का प्राय: उन्हें बहुत कम अनुभव हो पाता है। इन्हीं सब कारणों से मन्त्रियों को नौसिखिए या अविशेषज्ञ कहा जाता है, अर्थात् वे ऐसे व्यक्ति होते हैं जो पेशेवर प्रशासक नहीं होते, जिन्हें प्रशासन सम्बन्धी कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया होता है और जिन्हें प्राय: प्रशासन का पर्याप्त अनुभव नहीं होता है। वे केवल राजनीतिक प्रशासक होते हैं।

10. 5. 2 लोक सेवकों में प्रशासनिक विशिष्टता :- शासन-सूत्र चलाने वाला दूसरा वर्ग लोक सेवकों का है जो प्रशासनिक मामलों के विशेषज्ञ होते हैं। ये लोक सेवक ही शासन का वास्तविक संचालन करते है। ये प्रशासन के मामलों में दक्ष या विशेषज्ञ होते हैं, मन्त्रियों को नीति-निर्धारण में सहायता देते है और विधियों को क्रियान्वित करते हैं, परन्तु ये विशेषज्ञ-लोकसेवक अविशेषज्ञों या नौसिखियों के अधीन रहते हैं, जो शासन-विभागों के अध्यक्ष होते हैं।

लोकसेवकों को उनका प्रशासन सम्बन्धी प्रशिक्षण और अनुभव, शासन-कार्य का विशेषज्ञ बना देता है। उनकी नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती है, न कि राजनीतिक आधार पर। एक बार योग्यता सम्बन्धी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के बाद यह निश्चय हो जाता है कि उन्हें स्थायी रूप से प्रशासन के ही किसी पद पर कार्य करना है। अत: प्रशासनिक कार्य में उनकी अधिकाधिक रूचि होती जाती है। वे समझते है कि वे प्रशासनिक कार्यों में जितने अधिक निपुण होंगे, उन्हें पदोन्नति के उतने ही अधिक अवसर प्राप्त होंगे। एक ही प्रकार का कार्य अधिक दिनों तक करते रहने और अधिकाधिक प्रशासनिक अनुभव प्राप्त करने के उपयुक्त अवसरों के मिलते रहने के कारण लोक सेवक विभागीय दावँ-पेचों को भली-भाँति समझ जाते है। राजनीतिक प्रपंचों से दूर रहते हुए अपने पद के स्थायित्व के कारण उन्हें अपने विभाग की भीतरी बातों और परिणामों का प्रचुर ज्ञान होता है। वे मन्त्रियों को उचित परामर्श देते है और उनके द्वारा निर्धारित नीति को कार्यरूप में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परिणित कराते है। मन्त्रियों को प्रशासन चलाने और प्रशासन की बारीकियों को समझने के लिए लोकसेवकों पर, जो प्रशासनिक विशेषज्ञ होते हैं, पूर्णतः निर्भर रहना पड़ता है।

10. 5. 3 मन्त्रियों का व्यावसायिक या विशेषज्ञ न होना – मन्त्रियों का व्यावसायिक व विशेषज्ञ न होना लोक सेवा तथा प्रशासन के लिए उपयोगी है। उनका कार्य निरीक्षण, सामान्य नीति निर्धारण तथा लोकमत को संतुष्ट करना है। यदि मन्त्री विशेषज्ञ हुए तो व्यापक दृष्टिकोण के साथ न तो वे नीतियों का निर्धारण ही कर सकेंगे, न प्रशासन का संचालन ही कर सकेंगे। क्योंकि यदि मंत्रीगण लोकसेवा के सदस्यों की तरह ही हो जायेंगे तो फिर निःसंकोच होकर वे जनता की सेवा नहीं कर सकेंगे। मेकडोनाल्ड ने कहा है कि ''मन्त्रीगण जनता व विशेषज्ञ तथा सिद्धान्त व व्यवहार को जोड़ने वाला पुल है।'' मंत्री प्रशासन की बारीकियों में फँसा हुआ संकुचित दृष्टिकोण का व्यक्ति न होकर सुलझे हुए व्यापक दृष्टिकोण का व्यक्ति होता है उसे अपने विभाग के साथ-साथ दूसरे विभागों की स्थिति भी देखनी पड़ती, लोकमत के अनुसार लचीला होना पड़ता है, व्यवहार-कुशल होने के साथ-साथ लालफीताशाही से पृथक रहना पड़ता है। यदि मंत्री विशेषज्ञ हुए तो ये सब लाभ प्राप्त नहीं हो सकेंगे। मन्त्रियों का सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन होता है।

10. 5. 4 क्या मंत्री लोक सेवकों के हाथ की कठपुतली होते है ?लोकप्रशासन में यह प्रश्न बार-बार उठता है कि क्या मन्त्री लोकसेवकों के हाथ की कठपुतली होते हैं? इस बारे में यह स्पष्ट है कि वैधानिक रूप से लोक सेवक यद्यपि मन्त्रियों के अधीनस्थ हैं, तथापि व्यावहारिक रूप में मन्त्रियों के कार्यों पर अपनी पर्याप्त छाप छोड़ते हैं, किन्तु यह मानना कि मंत्री लोक सेवकों के हाथ की कठपुतली मात्र हैं, अथवा ग्रेट ब्रिटेन में लोक सेवकों का शासन में आधिपत्य स्थापित हो गया है, निश्चित रूप में एक भ्रामक धारणा है।

मन्त्री-पद प्राप्त करने वाला व्यक्ति अवश्य ही प्रतिभा का धनी होता है और इसे प्राप्त करने के पूर्व वह प्रायः ऐसी अनेक परिस्थितियों से गुजर जाता है जिससे उसे प्रशासनिक बातों का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। अनेक मंत्री बनने से पहले प्रायः विभिन्न अस्थायी व स्थायी समितियों के सदस्य अथवा संसदीय सचिव आदि के रूप में अनुभव प्राप्त कर चुके होते हैं। इस प्रकार उन्हें विभिन्न प्रशासनिक समस्याओं का इतना ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि वे प्रशासनिक विशेषज्ञों द्वारा सरलता से उल्लू नहीं बनाए जा सकते। लोक सेवक भी इस क्षमता से परिचित होते हैं, अतः वे किसी समस्या को प्रशासन-सम्बन्धी बारीकियों को उनके सामने रखते हुए यह अनुभव नहीं करते कि वे मामले ऐसे व्यक्तियों के सामने रख रहे हैं जो आँख बन्द कर उनके (लोक सेवकों के) सुझाए मार्ग पर चलने में ही अपना कल्याण समझेगा। लोक सेवक मन्त्रियों की कुशाग्र बुद्धि के प्रति सदैव चोकन्ने रहते हैं। वस्तुतः मन्त्रियों में इतना अनुभव होता है कि वे लोक सेवकों द्वारा दिए हुए परामर्श का औचित्य-अनौचित्य समझ सकें और निर्णय कर सकें कि अमुक परिस्थिति में क्या करना अधिक हितकारी होगा।

मन्त्रियों को लोकसेवकों के हाथों की कठपुतली मानने की भ्रामक विचारधारा का एक दूसरा आधार यह है कि प्रशासन को संगीत या नृत्य जैसी कला माना जाता है जिसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए कलाकार को विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है। किन्तु प्रशासन एक ऐसी कला नहीं है कि जिसके लिए सतत् अभ्यास की आवश्यकता हो। कुशाग्र बुद्धि वाला और दैनिक सामान्य प्रशासन की समस्याओं को समझने की योग्यता रखने वाला कोई भी व्यक्ति मन्त्री पद सम्भाल सकता है और सावधानी तथा विवेक से कार्य करते हुए प्रशासन चला सकता है। आखिर लोकसेवा के सदस्यों को भी सम्पूर्ण प्रशासनिक समस्याओं का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। उनके सामने भी प्रायः नवीनतम समस्याएँ उपस्थित होती रहती हैं, जिनका समाधान वे अपने सामान्य विवेक से करते हैं। अतः दोनों में अन्तर केवल यही है कि लोकसेवक यदि किसी प्रशासनिक कार्य को सरलता या कुछ परिश्रम से सम्पन्न कर लेते हैं तो मन्त्रियों को उसी कार्य को करने में अपेक्षाकृत कुछ अधिक परिश्रम की आवश्यकता हो सकती है।

मन्त्रियों को लोकसेवा के सदस्यों के हाथों में खिलौना मानने वालों का तीसरा भ्रामक आधार यह है कि वे सम्भवतः सभी मन्त्रियों को प्रशासनिक नौसिखिएँ और सभी लोकसेवकों को प्रशासनिक विशेषज्ञ मानकर चलते हैं। किन्तु वास्तविक यह है कि न तो सभी मंत्री नौसिखिएँ होते हैं और न ही सभी लोक सेवक विशेषज्ञ। अतः शक्तिशाली एवं प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व वाले मंत्री लगभग सभी प्रशासनिक समस्याओं को अपने सामान्य विवेक से समझ लेते हैं और उनके समाधान के लिए लोक सेवकों पर आश्रित नहीं रहते। कुछ मंत्री अपनी लोकप्रियता के बल पर लोकसेवकों पर हावी रहते हैं। उन्हें लोक सेवकों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली प्रशासकीय बारीकियों की परवाह नहीं होती। वे तो प्रत्येक निर्णय और नीति को जनता की इच्छा की तराजू में तोलते हैं। कुछ मंत्री भाग्य के भरोसे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चलने वाले होते है। उन्हें अपने प्रभाव व व्यक्तित्व की नहीं, प्रत्युत अपने पद की चिन्ता बनी रहती है। वे प्राय: स्व–निर्णय की अपेक्षा लोकसेवकों के परामर्श पर आश्रित रहते है। सारांश में, किसी भी विभाग की सफलता के लिए मन्त्रियों तथा लोकसेवकों के बीच पारस्परिक सहयोग तथा एकता की भावना आवश्यक है।

10. 6 सारांश

उक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि मन्त्रियों के क्रियाकलापों पर लोकसेवकों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और लोकसेवकों का सहयोग प्रशासन–तन्त्र को सुगमता–पूर्वक चलाने के लिए वांछनीय भी है। परन्तु मन्त्रियों की स्थिति लोक सेवकों के हाथों की कठपुतली जैसी नहीं है। नीति के निर्माता मंत्री ही होते है और लोक सेवकों को व्यवहार में उनकी इच्छा का पालन करना पड़ता है। मंत्री ही मन्त्रिमण्डल द्वारा लिए गए निर्णयों की सीमा के अन्तर्गत अपने–अपने विभाग की नीति निर्धारित करते हैं और लोक सेवकों के माध्यम से उसका क्रियान्वयन करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में लोक सेवकों का मन्त्रियों पर हावी रहने का तब तक कोई प्रश्न नहीं उठता जब तक कि मंत्री स्वयं स्वेच्छा से अथवा अनजाने में उन्हें ऐसा अवसर न दे। अत: सरकारी कर्मचारी मन्त्रियों को आवश्यक जानकारी एवं तथ्य प्रदान करते हैं और सरकारी नीतियों को क्रियान्वित करते हैं। वे शासन पर छा जाने का प्रयास नहीं करते, प्रत्युत् शासन की प्रकृति व स्वरूप को निर्धारित करने में सहायक होते हैं।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश लोक सेवा की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
2. ब्रिटेन में मन्त्री–लोक सेवक सम्बन्धों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रिटेन में लोक सेवकों के कार्यों का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. फुल्टन समिति की दो सिफारिशें बताइये।
2. ह्विटले परिषदें किस देश में पायी जाती हैं।
3. ब्रिटिश सिविल सेवा की दो प्रमुख विशेषताएँ बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-11
राजनीतिक दल

संरचना

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 राजनीतिक दलों का उदय एवं विकास
11.3 ब्रिटिश दल प्रणाली की विशेषताएँ
    11.3.1 द्वि-दलीय प्रथा
    11.3.2 केन्द्रीकरण
    11.3.3 कठोर दलीय अनुशासन
    11.3.4 नेतृत्व का महत्त्व
    11.3.5 संसद सदस्यों पर नियन्त्रण
    11.3.6 वर्ग प्रकृति एवं सैद्धान्तिक मतभेद
11.4 ब्रिटेन के राजनीतिक दल
    11.4.1 अनुदार दल
    11.4.2 उदार दल
    11.4.3 श्रमिक दल
11.5 सारांश

11. 0 उद्देश्य

इस खंड में ब्रिटिश राजनीतिक दल प्रणाली का उल्लेख किया गया है। ब्रिटेन की दल प्रणाली का अध्ययन करने के पश्चात् आप :-

- ब्रिटिश राजनीतिक दलों के उद्भव एवं विकास को समझ सकेंगे,
- ब्रिटेन में प्रचलित राजनीतिक दलों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे,
- दल प्रणाली की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- राजनीतिक दलों की नीतियों तथा कार्य-प्रणाली के बारे में जान सकेंगे।

11. 1 प्रस्तावना

आज के प्रजातान्त्रिक युग में राजनीतिक दल अपरिहार्य हैं। यद्यपि सभी राजनीतिक दलों को कानून के अन्तर्गत राजकीय मान्यता प्राप्त नहीं होती है और वे आवश्यक रूप से सरकार के अंग भी नहीं होते, तथापि लोकतन्त्रात्मक शासन के सफल संचालन के लिए उनका होना अनिवार्य है। आधुनिक युग, अप्रत्यक्ष अर्थात् प्रतिनिधि-प्रजातन्त्र का युग है, अत: राजनीतिक दलों की आवश्यकता को कम नहीं आँका जा सकता। अपने वर्तमान महत्त्व के कारण ही उन्हें राजनीतिक व्यवस्था का आधार 'प्रजातन्त्र का प्राण' और 'सरकार का चतुर्थ अंग' तक कहा जाता है। वास्तव में प्रजातन्त्र के लिए राजनीतिक दल प्रेरक शक्ति हैं। उनके अभाव में प्रजातान्त्रिक सरकार सफलतापूर्वक नहीं चल सकती है। किसी भी प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में उनका महत्त्व निर्विवाद है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आज की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का सार यही है कि सरकार और संसद दोनों पर दल का प्रतिबन्ध रहता है। संसद और कार्यपालिका, सरकार और व्यवस्थापिका केवल संवैधानिक आवरण है, वास्तव में शक्ति का उपभोग राजनीतिक दल करते हैं। हूबर ने इसी कारण कहा है कि ''लोकतन्त्र के चालन में राजनीतिक दल तेल के तुल्य हैं।'' ब्रिटेन की संसदीय शासन व्यवस्था में भी राजनीतिक दलों की भूमिका अत्यन्त शक्तिशाली है।

11. 2. राजनीतिक दलों का उदय एवं विकास

ब्रिटिश प्रजातन्त्र को कार्यान्वित करने में राजनीतिक दलों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। राजनीतिक दलों के विकास ने राजतन्त्र का लोकतन्त्रीकरण करने में बड़ी सहायता पहुँचाई है। जैनिंग्स ने तो इस सम्बन्ध में लिखा है, ''ब्रिटिश शासन राजनीतिक दलों से ही प्रारम्भ होता है और राजनीतिक दलों में ही समाप्त होता है।''

ब्रिटेन में दल प्रणाली के विकास के अंकुर उस समय से ही देखे जा सकते हैं जब स्टुअर्ट काल में राजा और जनता में सर्वोच्चता के लिए संघर्ष हुआ। इससे पूर्व 1455-1485 में 'वार ऑफ रोजेज' के समय भी देश में दो दल थे। एक दल का नाम था लैंकास्ट्रियन और दूसरे का नाम था मारकिस्ट। स्टुअर्ट काल में यही दल राउण्डहैडर्स और कैवेलियर कहलाने लगे थे। इस समय तक दोनों दल अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए शक्ति का प्रयोग करते थे। सन् 1688 ई. की क्रान्ति के बाद जब संसद की मान्यता स्वीकार कर ली गई तब दलों का फिर से गठन हुआ। दोनों दलो को ह्विग तथा टोरी कहा जाने लगा। इस समय तक दलों का प्रभाव स्पष्ट हो चुका था। टोरी दल ग्रामीण जनता के पक्ष में था जबकि ह्विग दल व्यावसायिक क्षेत्रों की जनता का समर्थक था। उनके बीच धर्म-विभिन्नता भी थी। टोरी दल चर्च ऑफ इंगलैण्ड का पक्षपाती था, जबकि ह्विग दल डिसेण्टर्स का पक्षपाती था। इस प्रकार दोनों दलों के बीच सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक बातों में भिन्नता थी। कालान्तर में इन दलों के नामों में परिवर्तन हुआ। ह्विग और टोरी का स्थान क्रमश: उदार और अनुदार ने ले लिया। 19वीं शताब्दी में इन दोनों दलों के बीच संघर्ष रहा। बीसवीं शताब्दी में मजदूर दल का विकास हुआ, जिससे उदार दल का प्रभाव कम हो गया। वर्तमान में देश में अनुदारदल या कंजरवेलिन पार्टी तथा मजदूर या श्रमिक दल ही दो मुख्य दल है। उदारदल का गौण महत्त्व रह गया है।

11. 3 ब्रिटिश दल प्रणाली की विशेषताएँ

ब्रिटिश दलीय व्यवस्था की विशेषताओं का निम्नलिखित रुप से विवेचन किया जा सकता है-

11. 3. 1. द्वि-दलीय प्रथा :- ब्रिटेन में प्रारम्भ से ही राजनीतिक दलों की प्रकृति द्वि-दलीय प्रणाली की ओर है। चार्ल्स प्रथम के समय कैवेलियर्स तथा राउण्डहैड्स नामक दो दल थे, तो चार्ल्स द्वितीय के समय टोरी और ह्विग दल प्रमुख रहे। तत्पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी में अनुदार और उदारवादी दल प्रमुख रहें और आज अनुदार तथा श्रमिक दल की प्रधानता है। ब्रिटिश जनता का मत रहा है कि द्वि-दलीय प्रणाली से मन्त्रिमण्डल में स्थिरता, स्फूर्ति उत्तरदायित्व और सावधानी का संचार होता है। इसके द्वारा व्यक्तियों की स्वतन्त्रता और उनके अधिकारों की सुरक्षा प्राप्त होती है तथा दोनों में से कोई भी दल कभी भी शक्ति का दुरुपयोग नहीं कर पाता है। दोनों का एक दूसरे पर प्रभावी नियंत्रण रहता है।

11. 3. 2 केन्द्रीकरण :- देश में आबादी की एकरूपता और लघु भौगोलिक आकार के कारण ब्रिटिश दलों की प्रवृत्ति केन्द्रीकरण की है। सम्पूर्ण दल ऊपर से नीचे तक एक सूत्र में आबद्ध रहता है। दलीय नेताओं का पूरे दल पर नियन्त्रण रहता है। राष्ट्रीय संगठन का सदैव अस्तित्व रहता है। और उसका ध्यान मुख्यत: राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय बातों की ओर लगा रहता है।

11. 3. 3 कठोर दलीय अनुशासन :- ब्रिटिश राजनीतिक दल अत्यधिक अनुशासित होते हैं। इनका संगठन सुदृढ़ है। दलों के सदस्य नियन्त्रित, अनुशासित और निर्देशित रहते हैं। दलीय अनुशासन के बल पर ब्रिटिश सरकारें स्थिर रहती हैं, लोकसभा में उनका समर्थन सुनिश्चित रहता है और वे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रहती हैं। दल के सचेतक ही निश्चय कहते है कि संसद में दल के अनुशासन को भंग करने का दुस्साहस नहीं कर पाते है। सदस्यों को कब और क्या बोलना है अथवा किस विधेयक के पक्ष या विपक्ष में मत देना है।

11. 3. 4 नेतृत्व का महत्त्व :- ब्रिटिश दलीय व्यवस्था में नेतृत्व का अत्यधिक महत्त्व है। उसके व्यक्तित्व पर दली और राष्ट्र का नेतृत्व निर्भर करता है। जन-साधारण को नेतृत्व की क्षमता, कुशलता और निश्चयात्मकता में जितना अधिक विश्वास होता है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वह दल उतना अधिक लोकप्रिय होता है और चुनाव में उसकी सफलता उतनी सुनिश्चित होती है। मतदाता वस्तुत: किसी उम्मीदवार विशेष को नहीं, बल्कि भावी प्रधानमंत्री को मत देता है और चुनाव बहुत-कुछ नेता के व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द लड़ा जाता है, न कि नीति और दल के आधार पर। निर्वाचनों में इस बात का निर्धारण होता है कि अगला प्रधानमंत्री कौन होगा।

11. 3. 5 संसद सदस्यों पर नियन्त्रण :- सदस्यगण दल-नियन्त्रण के समर्थन पर विजयी होते हैं। दलीय कार्यक्रम के आधार पर उन्हें मत मिलते है। अत: प्रत्येक सदस्य यह समझता है कि दलीय कार्यक्रम या नेता से पृथक् स्वतन्त्र कदम उसके राजनीतिक अस्तित्व के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। परिणामस्वरूप वह दलीय नियमों और दलीय शासन के अधीन रहता है।

11. 3. 6 वर्ग प्रकृति एवं सैद्धान्तिक मतभेद :- ब्रिटेन के राजनीतिक दलों का वर्ग के आधार पर सरलतापूर्वक पृथक्करण किया जा सकता है। उदार दल सभी वर्गों से मत प्राप्त करने की कोशिश करते है और अनुदार एवं मजदूर दोनों दल मध्यम वर्ग के मत की आशा करते हैं। किन्तु मजदूर दल स्पष्टत: मजदूरों का प्रतिनिधित्व करता है और बड़े व्यावसायियों तथा पूँजीपतियों को कमजोर बनाने के पक्ष में है। इसके विपरीत अनुदार दल सामान्यत: धनिक एवं कुलीन वर्गों का नेतृत्व करता है। स्पष्ट है कि दलों के बीच इतनी व्यापक भिन्नता है कि मतदाता को वास्तविक चयन का अवसर मिलता है। दलों के मतभेद सैद्धान्तिक होते हैं, केवल दलीय नहीं। अनुदार दल दक्षिणपन्थी तथा रूढ़िवादी विचारधारा का समर्थक है जबकि श्रमिक दल वामपन्थी तथा परिवर्तन में विश्वास करता है।

11. 4 ब्रिटिश राजनीतिक दल

ब्रिटेन के राजनीतिक दलों का विवरण निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है -

11. 4. 1 अनुदार दल :- प्रारम्भ में यह दल टोरी दल कहलाता था, आजकल इसे अनुदार या रूढ़िवादी दल कहते है। यह दल परम्परागत समस्याओं, प्रथाओं व विचारधाराओं की रक्षा करने के पक्ष में है। यह धीरे-धीरे परिवर्तन चाहता है। इस दल को धनिकों, जमीदारों, पादरियों, व्यापारियों, डॉक्टरों, प्रोफेसरों आदि का समर्थन प्राप्त है। इस दल का विश्वास है कि अंग्रेज जाति अन्य सब जातियों से श्रेष्ठ है तथा अन्य जातियों को सभ्य बनाना उसका कर्त्तव्य है। ब्रिटिश राजमुकुट की छत्रछाया में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा और उसका विस्तार करना इस दल का सर्वोपरि ध्येय है।

1. नीति एवं सिद्धान्त :- अनुदार दल प्राचीन सामाजिक ढाँचे को यथासम्भव ज्यों का त्यों रखना रखना चाहता है। यह पूँजीवादी तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पोषक है। यह दल औद्योगिक निगमों, बैंको तथा शराब के व्यावसायियों के हितों का संरक्षण चाहता है। यह क्राउन, लॉर्डसभा, चर्च तथा गैर-सरकारी सम्पति को बनाए रखना चाहता है। अनुदार दल सम्पत्ति पर 'निजी स्वामित्व' चाहता है और इस नीति में विश्वास रखता है कि सरकार को आर्थिक मामलों में अनावश्यक हस्तेक्षप नहीं करना चाहिए। यह मुक्त व्यापार का समर्थन करता है। यह दल उपनिवेशों को स्वतन्त्र करने के विरुद्ध था। यद्यपि इस दल ने समाजवाद और नियोजन की निन्दा की है, किन्तु यह भी स्वीकार किया है कि कतिपय क्षेत्रों में सरकारी निवेश आवश्यक है। अनुदार दल ने राज्य के कार्यक्षेत्र के विस्तार का भले ही विरोध किया हों परन्तु जन कल्याणकारी योजनाओं में गहरी दिलचस्पी का परिचय दिया है।

2. संगठन :- अनुदार दल के संगठन में प्रमुख अंग नेशनल यूनियन, दलीय संगठन सभापति, संसदीय दल और नेता, प्रान्तीय परिषदें, निर्वाचन-क्षेत्रों के संघ और अनेक परामर्शदात्री समितियाँ हैं। नेशनल यूनियन अनेक निर्वाचन-क्षेत्रीय संघों व बाहर प्रान्तीय क्षेत्रों की परिषदों का संघ है। नेशनल यूनियन की एक कार्यकारणी समिति होती है जो कि एक शासकीय निकाय है। अनुदार दल में दल का नेता अत्यधिक शक्तिशाली होता है। केन्द्रीय कार्यालय का अध्यक्ष दल का चेयरमैन होता है। दल के नेता का चुनाव संसद के दोनों के अनुसार दलीय सदस्यों, कार्यकारिणी समिति के सदस्य, संसद के लिए अनुदारवादी उम्मीदवार तथा राष्ट्रीय यूनियन के समस्त सदस्यों के द्वारा किया जाता है। नेता पार्टी के चेयरमैन को नियुक्त करता है और पार्टी की नीति निर्धारित करता है।

संक्षेप में, अनुदार दल देश की परम्पराओं को बदली हुई दशाओं के अनुसार ढालना चाहता है।

11. 4. 2 उदार दल :- उदार दल बहुत पुराना है और उसका अनुदार दल के साथ अभ्युदय हुआ था। पहले इसको ह्विग पार्टी कहा जाता था। परन्तु 1857 में वह 'लिबरल पार्टी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। आज यह ब्रिटेन का मुख्य राजनीतिक दल नहीं रहा है। उसका स्थान श्रमिक दल ने ले लिया है। फिर भी इस दल के सदस्य अपनी योग्यता और अपने नेतृत्व के कारण ब्रिटेन में सम्मानीय हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लिबरल पार्टी के नाम से यह दल केवल 19वीं शताब्दी में अस्तित्व में आया। परन्तु उदारवादियों का कहना है कि उनके दल का अस्तित्व गृह–युद्ध और स्वर्णिम क्रान्ति के समय से चला आ रहा है और वे ह्विग के उत्तराधिकारी हैं। जिस परम्परागत दृष्टिकोण को उदारवादी दल ने ह्विग पार्टी से लिया, उसके बारे में श्री बेली का कहना है कि ''विगत तीन शताब्दियों में ह्विग दल अथवा उदारवादी दल कई दृष्टिकोणों से गुजर चुका है। कभी यह धनिकों का दल रहा है तो–कभी यह दल दलितों का संरक्षक रहा है, कभी इसने शांति का दल और कभी कठोर प्रतिकारवादी दल का रूप धारण किया है। कभी यह 'यद्भाव्यम्' का समर्थक बना है तो कभी आर्थिक नियोजन का पक्षपोषक रहा है, कभी यह साम्राज्यवाद का दल रहा है तो कभी इसने केवल छोटे से इंगलैण्ड का समर्थन किया है। साधारणत: यह सहिष्णुता का समर्थक रहा है, परन्तु कुछ अवधियाँ बड़ी विकट असहिष्णुता की भी बीती हैं।'' वर्तमान में देश की राजनीति में इस दल का नगण्य रूप में ही प्रभाव है।

1. नीति और कार्यक्रम :– उदार दल का विचार है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है और इसलिए नए अनुभव को स्वीकार किया जाए तथा स्वतन्त्र विकास को समर्थन दिया जाए। यह दल परम्परा के पक्ष में नहीं है, अपितु बदलती हुई परिस्थितियों के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के पक्ष में है। यह दल व्यक्ति की सब प्रकार की स्वतन्त्रता का समर्थक है। दल ने व्यवहार में भी सदैव ऐसे कार्यक्रम को अपनाने का प्रयास किया है जिससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा होती रही। राज्यवाद का विरोधी होने के कारण उदारवादी दल ने आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र व्यापार और उद्योग का समर्थन किया। किन्तु बाद में दल के सुधारवादी तत्त्वों ने सामाजिक सुधारों का समर्थन किया। उदारवादी दल जहाँ एक ओर पूँजीवाद का विरोधी है वहाँ दूसरी ओर राजकीय समाजवाद की अति को भी पसन्द नहीं करता। उदार दल का कहना है कि कारखानों के प्रबंध में मजदूरों को हाथ बटाने का अधिकार मिलना चाहिए। आयात–निर्यात पर प्रतिबंधों का वह विरोधी है। उदार दल मुक्त व्यापार में विश्वास रखता है। पर व्यावसायिक एकाधिकार के वह विरूद्ध है। यह दल अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में शांति का समर्थक और उपनिवेशवाद का विरोधी है। एक समय था जबकि उदारदल अपनी नीतियों और विचारधाराओं के कारण उन्नति के शिखर पर था किन्तु अब इसकी शक्ति में निरन्तर पतन हो रहा है। इसके पतन का मुख्य कारण यह है कि श्रमिक दल की लोकप्रियता के कारण उदार दल का महत्त्व घट गया।

11. 4. 3 श्रमिक दल :– श्रमिक दल का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में हुआ। यह ट्रेड यूनियन आन्दोलन का परिणाम था सन् 1899 में ट्रेड यूनियनों, समाजवादी प्रजातन्त्रात्मक संघ व अन्य समाजवादी संगठनों के सम्मेलन ने एक 'श्रमिक प्रतिनिधि समिति' नियुक्त की, जिसने सन् 1906 ई. में 'श्रमिक दल' का नाम धारण किया। सन् 1918 ई. में दल के लिए एक संविधान बनाया गया जो अभी तक प्रचलित है। आज लोकप्रियता की दृष्टि से यह दल निरन्तर प्रगति कर रहा है।

1. नीति और कार्यक्रम :– श्रमिक दल ब्रिटेन की सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन चाहता है। यह दल एक नवीन सामाजिक ढ़ाँचे की रचना करना चाहता है। जिसका घोषित उद्देश्य ''हाथ और मस्तिष्क के कार्य करने वाले श्रमिकों को व्यवसायों से पूरा लाभ दिलाना, जहाँ तक सम्भव हो सके उत्पादन, वितरण व विनिमय के साधनों की साझेदारी के आधार पर उसका अधिक से अधिक औचित्यपूर्ण वितरण कराना तथा प्रत्येक व्यवसाय की सेवाओं में यथासम्भव सर्वोत्तम लोकप्रिय प्रशासन व नियन्त्रण की व्यवस्था करना है।''

यद्यपि श्रमिक दल का ध्येय समाजवादी समाज की स्थापना करना है, तथापि वह समाजवाद की अपेक्षा लोकतन्त्र को अधिक महत्त्व देता है। वह समाजवाद की स्थापना लोकतान्त्रिक विधि द्वारा करना चाहता है। श्रमिक दल पूँजीवादी के स्थान पर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के पक्ष में है जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्थान पर सम्पूर्ण राष्ट्र की सम्पत्ति जनता के हाथ में होगी। दूसरे शब्दों में, वह व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर सामाजिक स्वामित्व के सिद्धान्त का समर्थन करता है। यह दल महत्त्वपूर्ण व्यवसायों अथवा उद्योग–धन्धों का राष्ट्रीयकरण कर देना चाहता है।

श्रमिक दल सामाजिक समानता का प्रबल समर्थक है। वह समाज में समता और एकता पैदा करना चाहता है। वह समान शिक्षा, समान सम्पत्ति तथा समान राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सुअवसरों का पक्षधर है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही वह पूँजीवादी ढाँचे को लोकतान्त्रिक साधनों द्वारा बदलना चाहता है। वर्तमान में यह दल भी वैश्वीकरण, उदारीकरण की प्रक्रिया के अनुरूप आर्थिक सुधारों का पक्षधर है।

2. संगठन :– श्रमिक दल का संगठन संघीय आधार पर किया गया है। इसमें श्रमिक संघ, समाजवादी सभाएँ जिनमें फेबियन सोसायटी, समाजवादी वकीलों की सोसायटी, श्रमिकों की राष्ट्रीय सभा आदि प्रमुख हैं। इस दल के संगठन में राष्ट्रीय स्तर पर 'श्रमिक दल सम्मेलन' है, जिसमें प्रत्येक निम्नतर इकाई अपने प्रतिनिधि भेजती है। यह प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या के आधार पर है। श्रमिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दल की एक राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति होती है। इसी के द्वारा केन्द्रीय कार्यालय का संचालन और दल की नीति का निर्धारण होता है, तथापि उसे दलीय सम्मेलन के निर्देशन में चलना पड़ता है।

इस प्रकार श्रमिक दल के कार्यक्रम को लोकतन्त्रात्मक समाजवादी कार्यक्रम की संज्ञा दी जाती है। श्रमिक दल की वास्तविक इच्छा यही है कि जन्म से मरण तक व्यक्ति को किसी प्रकार की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक असमर्थता का शिकार न होना पड़े। अपनी इस इच्छा को कार्यरूप में परिणित देखने के लिए श्रमिक दल राज्य के लोककल्याकारी स्वरूप के पक्ष में है। वर्तमान में इस दल के टोनी ब्लेयर देश के प्रधानमंत्री के रुप में प्रतिष्ठित है।

11. 5 सारांश

संक्षेप में, प्रजातन्त्र में राजनीतिक दलों का अस्तित्व अनिवार्य है। वस्तुत: राजनीतिक दलों के बिना प्रजातान्त्रिक सरकारों की कल्पना नहीं की जा सकती। दल प्रजातन्त्र के 'प्राण', 'हृदय' और 'आत्मा' हैं। प्रजातान्त्रिक राज्यों में निर्वाचन दलीय निर्वाचन होते है, नीतियाँ दलीय नीतियाँ होती हैं, सरकार, दलीय सरकार होती है, उम्मीदवार, दलीय उम्मीदवार होते हैं, घोषणा पत्र, दलीय घोषणा पत्र होते हैं, मतदाता, दलीय आधार पर मतदान करते हैं, चुनाव प्रचार, दल के कार्यकर्त्ता करते हैं आदि। इस दृष्टि से ब्रिटिश सरकार का आरम्भ तथा अन्त दलों से होता है। यही कारण है कि ब्रिटेन में राजनीतिक दल शासन के चतुर्थ अंग हैं।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक

1. ब्रिटिश राजनीतिक दलों के संगठन, उद्देश्य तथा कार्य-पद्धति का वर्णन कीजिए।
2. इंगलैण्ड की दल प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ बतलाइए।
3. ''ब्रिटिश सरकार का आरम्भ तथा अन्त दलों से होता है।'' समझाइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश राजनीति में दलीय व्यवस्था के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
2. द्वि-दलीय पद्धति की प्रधानता से ब्रिटेन को क्या लाभ हुआ है ? ब्रिटेन में इस पद्धति के स्थायित्व के क्या कारण है ?
3. श्रमिक दल के कार्यकमों और नीतियों का वर्णन करों।
4. अनुदार दल के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रिटेन में कौनसे दो दल पाये जाते है ?
2. ब्रिटेन में टोरी व ह्विग दल से आगे जाकर कौन-कौन से दल बने।
3. इंगलैण्ड के अनुदार दल के दो प्रमुख सिद्धान्त बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-12
अमेरिका का संविधान

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 अमेरिकी संविधान की उत्पति और उसका विकास

12.2.1 औपनिवेशिक युग

12.2.2 स्वतन्त्रता की ओर

12.2.3 राज्यमण्डल की स्थापना

12.2.4 नए संविधान का निर्माण

12.3 अमेरिका के संविधान की विशेषताएँ

12.3.1 लिखित एवं निर्मित संविधान

12.3.2 संक्षिप्त संविधान

12.3.3 कठोर संविधान

12.3.4 संविधान की सर्वोच्चता

12.3.5 लोक सम्प्रभुता पर आधारित संविधान

12.3.6 संघात्मक शासन प्रणाली

12.3.7 अध्याक्षात्मक शासन प्रणाली

12.3.8 न्यायिक सर्वोच्चता

12.3.9 शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त

12.3.10 नियन्त्रण और सन्तुलन का सिद्धान्त

12.3.11 दोहरी नागरिकता

12.3.12 न्यायिक पुनरावलोकन

12.3.13 अधिकार पत्र

12.3.14 द्वि-सदनात्मक व्यवस्थापिका

12.3.15 लूट प्रणाली

12.4 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत अमेरिका के संविधान की पृष्ठभूमि, विकास, स्रोत, स्वरूप और विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- अमेरिका के संविधान की पृष्ठभूमि के बारें में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- संविधान के स्वरूप की व्याख्या कर सकेंगे,

- अमेरिका को अध्याक्षात्मक शासन व्यवस्था के जनक के रूप में समझ सकेंगे,
- विश्व का सबसे प्राचीन लिखित एवं संक्षिप्त संविधान का विश्लेषण कर सकेंगे।
- अमेरिकी संविधान के महत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान वर्तमान लिखित संविधानों में सबसे प्राचीन है। इसका जन्म उस समय हुआ था जबकि फ्रांस में 'राजतन्त्र' रोम में 'पवित्र साम्राज्य', कुस्तुन्तुनिया में 'सुल्तान खलीफा', पेकिंग में 'स्वर्ग के आदेश' से विभूषित सम्राट अस्तित्व में थे। किन्तु ये सभी राज्य वर्षों पूर्व अतीत के गर्भ में विलीन हो गये, जबकि अमेरिका का संविधान सदियों के झंझावातों को झेलता हुआ आज भी कायम है। राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी विश्व के जिन कतिपय संविधानों का प्राय: अनिवार्य रूप में अध्ययन करते हैं, उनमें निश्चित रूप से एक अमेरिकी संविधान है।

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान आधुनिक युग का अनूठा संविधान है जो विश्व के संविधानों में विशिष्ट स्थान रखता है। इस संविधान में व्यक्ति के अधिकारों को महत्त्वपूर्ण माना गया है तथा सभी संवैधानिक संस्थाओं का लोकतन्त्रीय आधार रखा गया है। मैक्स लर्नर के शब्दों में यह संविधान ''ऐसे सिद्धान्तों का समूह है जो शाश्वत रूप से सत्य व सार्वभौमिक रूप में लागू होने वाले हैं।''

12.2 अमेरिकी संविधान की उत्पत्ति और उसका विकास

संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान शासन–पद्धति का आधार सन् 1787 ई. में फिलाडेलफिया सम्मेलन द्वारा निर्मित संविधान है, परन्तु इस संविधान का निर्माण यकायक नहीं हो गया, वरन् इसके पीछे लगभग 150 वर्षों का संघर्षपूर्ण इतिहास रहा है। यह संविधान अस्तित्व में कैसे आया इसके पीछे एक लम्बी कहानी है। संविधान निर्माण के विभिन्न चरणों का निम्नलिखित रुप से अध्ययन किया जा सकता है –

12.2.1 औपनिवेशिक युग – सन् 1492 ई. में कोलम्बस द्वारा अमेरिका के विशाल महाद्वीप की खोज करने के बाद शनै: शनै: यूरोप की जातियों ने इस प्रदेश की भूमि पर अपने उपनिवेश कायम करना शुरु कर दिया। प्रारम्भ में अंग्रेजों की ही प्रधानता रही, परन्तु शनै: शनै: विभिन्न कारणों वश जर्मनी, पुर्तगाल, आयरलैण्ड, स्कॉटलैण्ड, स्पेन, फ्राँस आदि से भी लोग विशाल संख्या में अमेरिका आकर उसके विविध भागों में बस गए। यूरोपवासियों का आगमन अमेरिका में निरन्तर होता रहा। यूरोप से अमेरिका गये हुए ये व्यक्ति, जिनमें काफी बड़ी संख्या अंग्रेजों की थी, अपने साथ सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की परम्पराएँ और शासन सम्बन्धी विचार भी ले गये थे। व्यवस्थाप्रिय होने के नाते उनके द्वारा यह आवश्यक समझा गया कि उपनिवेशों की स्थापना के लिए ब्रिटिश सरकार से विधिवत् आज्ञापत्र प्राप्त किया जाए। अत: ब्रिटिश सम्राट से प्राप्त आज्ञापत्र के आाधार पर सन् 1776 ई. तक अमेरिका में अलग–अलग 13 उपनिवेशों की स्थापना हुई जो आन्तरिक मामलों में स्वशासित होते हुए भी इंग्लैण्ड के आधिपत्य में थे।

12.2.2 स्वतन्त्रता की ओर – अमेरिका में बसे हुए ये व्यक्ति मूलत: यूरोपियन और इनमें भी अधिकांशतया अंग्रेज थे, किन्तु समय बीतने के साथ–साथ इन उपनिवेशों की एक अपनी संस्कृति और राष्ट्रीयता का विकास होने लगा। इनमें अपने मातृ देश के प्रति भावनात्मक लगाव कम होने लगा और वे स्वशासन की दिशा में सोचने लगे। तात्कालिक अंग्रेज शासकों की अदूरदर्शिता ने इस निर्बल प्रवृत्ति को स्वतन्त्रता के प्रति अदम्य इच्छा में परिणत कर दिया। 1760 ई. के आसपास ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। इंगलैण्ड ने अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अमेरिकन उपनिवेशों पर अनेक कर लगाने तथा ऐसे कठोर व्यापारिक कानून पारित करने शुरु किये जिनसे केवल इंगलैण्ड को ही लाभ होता था। अमेरिकन उपनिवेशों ने इन कानूनों का विरोध किया तथा नये अनुचित कर देने से स्पष्ट इंकार करते हुए 'प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं' की घोषणा की। इंगलैण्ड ने कठोरता के साथ अमेरिकी जनता की आवाज को दबा देने का निश्चय किया और इग्लैण्ड ने जितनी कठोरता प्रदर्शित की उतनी ही सीमा तक ये 13 उपनिवेश एक–दूसरे के निकट आते गये और उनमें सामान्य अमेरीकी राष्ट्रीयता का विकास स्पष्ट हो गया।

सन् 1773 के 'चाय अधिनियम' तथा 1774 के 'मेसाचुसेट्स शासन अधिनियम' पारित होने पर उपनिवेशों में ज्वाला धधक उठी। मेसाचुसेट्स के निवासियों के फलस्वरूप सन् 1774 ई. में 12 उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन फिलाडेल्फिया नगर में हुआ, जिसे 'प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस' कहा जाता है। इस कांग्रेस ने दमनकारी कानूनों का विरोध किया तथा विदेशी माल के बहिष्कार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का आह्वान किया। 10 मई, 1775 में फिलाडेल्फिया में 'दूसरी महाद्वीपीय कांग्रेस' हुई। इसमें इंगलैण्ड से युद्ध का प्रस्ताव पेश किया गया तथा जार्ज वाशिंगटन को सर्वोच्च सेनापति नियुक्त कर दिया गया। जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में उपनिवेश अपनी स्वाधीनता के लिए लड़े और 4 जुलाई, 1776 को उनकी ओर से वह उद्घोषणा की गई, जिसे 'स्वतन्त्रता की उद्घोषणा' कहा जाता है।

23 अगस्त, 1775 को सम्राट् जॉर्ज तृतीय ने घोषणा की कि उपनिवेशों ने विद्रोह कर दिया है। ब्रिटिश सरकार ने सैनिक शक्ति के बल पर विद्रोह को कुचलने का निश्चय किया। ग्रेटब्रिटेन तथा अमेरिकन उपनिवेशों में 6 वर्ष तक युद्ध चला जिसके अन्त में 19 अक्टूबर,1781 को अमेरिकन उपनिवेशों की जीत और ब्रिटिश सेवाओं की पराजय हुई। लार्ड नार्थ की सरकार ने त्यागपत्र दे दिया तथा जार्ज तृतीय ने नवीन सरकार बनाई, जिसने अमेरिका की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी।

12.2.3 राज्यमण्डल की स्थापना :- 4 जुलाई, 1776 ई. को स्वतन्त्रता की घोषणा करने के साथ ही अमेरिकी उपनिवेशों ने संगठित होने और एक इकाई के रूप में कार्य करने की आवश्यकता अनुभव की। महाद्वीपीय कांग्रेस के द्वारा पर्याप्त वाद-विवाद के बाद 17 नवम्बर, 1777 को परिसंघ की स्थापना का प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के आधार पर मार्च, 1781 में परिसंघ की स्थापना हो गयी। इस प्रकार अमेरिका के 'संयुक्त राज्यों' के प्रथम लिखित संविधान का निर्माण हुआ।

12. 2. 4 नए संविधान का निर्माण :- राज्यमण्डल में केन्द्रीय सरकार की दुर्बल स्थिति के कारण राज्य उसकी अवहेलना करने लगे। ऐसी भी स्थिति आ गई कि राज्यों में गृहयुद्ध छिड़ने का भय उत्पन्न हो गया। इसके फलस्वरूप केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिए आवाज उठी। जॉर्ज वाशिंगटन ने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''एक राष्ट्र के रूप में हम अधिक दिनों तक तब तक जीवित नहीं रह सकते जब तक किसी स्थान पर एक ऐसी सत्ता की स्थापना न करें, जो इतनी ही शक्ति के साथ सम्पूर्ण संघ में कार्य करे जितनी शक्ति के साथ राज्यों की सरकारें विविध राज्यों में कार्य करती हैं।''

हैमिल्टन और मेडीसन के प्रयासों के फलस्वरूप सभी राज्य इस बात पर सहमत हो गए कि फिलाडेल्फिया में एक सम्मेलन बुलाया जाए। रोडद्वीप को छोड़कर सभी राज्यों ने अपने-अपने प्रतिनिधियों को फिलाडेलफिया में भेजा। सम्मेलन का सभापतित्व जॉर्ज वाशिंगटन ने किया। इस सम्मेलन का उद्देश्य एक सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना करना था जिसके साथ ही राज्यों की भी अधिकाधिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता स्थापित रहे। फिलाडेल्फिया सम्मेलन के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि इसमें देश के विभिन्न विरोधी हितों का प्रतिनिधित्व था। अतः विरोधी हितों का समन्वय करके संविधान का निर्माण करना एक समस्या बन गई। सम्मेलन में हुए विचार-विनिमय से यह स्पष्ट हो गया कि राज्यमण्डल के ढाँचे के संशोधन से कार्य नहीं चलेगा तथा पूर्णतः नए संविधान का निर्माण आवश्यक है। नए संविधान में स्वशासित राज्यों की शक्ति व शक्तिशाली केन्द्र की शक्ति का उचित समन्वय होना आवश्यक है। 17 सितम्बर, 1787 को अमेरिका के संयुक्त राज्यों के नए संविधान के स्वरूप का निश्चय हुआ। सम्मेलन ने यह भी तय किया कि नए संविधान के लागू किए जाने के लिए यह आवश्यक होगा कि 13 में से कम से कम 9 राज्यों के विधानमण्डल उसे अलग अलग स्वीकार करें।

जिस उत्साह से नया संविधान बनाया गया, उतने ही उत्साह से राज्यों द्वारा उसका पुष्टिकरण अथवा अनुसमर्थन नहीं हुआ। संविधान के कतिपय अंशों को लेकर राज्यों में गम्भीर मतभेद व्याप्त हो गये। ऐसा लगने लगा कि देश दो दलों में विभक्त हो गया है। एक दल उन लोगों का था जो संघ-विरोधी थे तथा दूसरा दल उन लोगों का था जो संघ के समर्थक थे। अंत में संघ के समर्थकों ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया कि संविधान मे अधिकार-पत्र की व्यवस्था होना आवश्यक है। 21 जून, 1788 ई. के दिन संविधान 9 राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा अनुसमर्थित हो गया और 4 मार्च, 1789 ई. को नया संविधान प्रवर्तन मे आ गया।

आज अमेरिका के संयुक्त राज्य में 50 राज्य सम्मिलित हैं जो उसी संविधान से आबद्ध हैं, जिसे सन् 1789 का संविधान कहा जाता है।

12. 3 अमेरिका के संविधान की विशेषताएँ

ब्रिटिश संविधान के समान ही अमेरिकी संविधान भी विश्व के संविधानों में विशिष्ट स्थान रखता है। इस संविधान में एक आदर्श प्रजातान्त्रिक राज्य की स्थापना की गई है। संविधान में व्यक्ति के अधिकारों को महत्त्वपूर्ण माना गया है तथा सभी संवैधानिक संस्थाओं का लोकतन्त्रीय आधार रखा गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अमेरिकी संविधान की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है–

12. 3. 1 लिखित एवं निर्मित संविधान :– अमेरिकी संविधान, आधुनिक युग का प्राचीनतम, लिखित और निर्मित संविधान है। यद्यपि इसमें संशोधन और परिवर्तन होते रहे हैं, तथापि सम्पूर्ण संविधान एक क्रमबद्ध विधान के रूप में है। इसके प्रारूप को फिलाडेल्फिया में आयोजित एक सम्मेलन ने 1787 में तैयार किया था। राज्यों का अनुसमर्थन मिलने के बाद इसे 1789 में लागू किया गया। इस तरह अमेरिका का संविधान एक निश्चित समय को कृति है। संविधानों का लिखित प्रचलन अमेरिका के संविधान से शुरू हुआ है। ब्राइस के अनुसार, ''अमेरिका का संविधान विश्व के लिखित संविधानों में सर्वोच्च है।''

12. 3. 2 संक्षिप्त संविधान :– अमेरिकी संविधान विश्व के लिखित संविधानों में सर्वाधिक संक्षिप्त प्रलेख है। इसमें कुल 7 अनुच्छेद है। चार हजार शब्दों का यह संविधान दस–बारह पृष्ठों में समाहित है और इसे कोई भी आधे घन्टे में पढ़ सकता है। दूसरी ओर भारत के संविधान में 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं, स्विट्जरलैण्ड के संविधान में 123 अनुच्छेद है। अत: संविधान इतना संक्षिप्त इसलिए है कि इसमें आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है और विस्तार की बातों को परम्पराओं अथवा प्रशासनिक आज्ञप्तियों और न्यायिक निर्णयों पर छोड़ दिया गया है। इस संविधान की सक्षिप्तता आज तक बनी हुई है।

12. 3. 3 कठोर संविधान :– अमेरिका का संविधान विश्व में सबसे कठोर संविधान है। अनुच्छेद 5 में संविधान संशोधन की जिस प्रक्रिया का वर्णन किया गया है वह अत्यधिक कठोर है। अमेरिका में संविधान संशोधन के लिए जहाँ कांग्रेस के दोनों सदनों के दो–तिहाई बहुमत की आवश्यकता है। वहाँ इसके लिए तीन–चौथाई राज्य विधान सभाओं के अनुसमर्थन की भी आवश्यकता है। इन दोनों आवश्यकताओं का पूरा होना कठिन है। कोई भी 13 राज्य शेष राज्यों द्वारा चाहे जाने वाले संविधान संशोधनों को अस्वीकार कर सकते हैं। अमेरिकी संविधान की कठोरता इस तथ्य से स्पष्ट है कि लगभग 210 वर्षों के संवैधानिक इतिहास में इसमें केवल 27 संशोधन ही हुए हैं।

12. 3. 4 संविधान की सर्वोच्चता :– अमेरिकी संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। कांग्रेस अथवा राज्य विधान सभाओं द्वारा बनाये गये सभी कानून इसके अधीन हैं। यदि कोई कानून या सन्धि या कार्यपालिका आदेश संविधान की धाराओं के विपरीत है तो न्यायालय उसे उस मात्रा में अवैध घोषित कर रद्द कर देता है जिस मात्रा में वह संविधान की उल्लंघना करता है। अमेरिका के संविधान के अनुच्छेद 6 में कहा गया है, ''यह संविधान और इसके अनुसार बनाए हुए सभी कानून तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के प्राधिकार के अधीन की हुई सभी संधियाँ या जो भविष्य में की जाएँगी, देश का सर्वोच्च कानून होगा और प्रत्येक राज्य में न्यायाधीश उससे बाध्य होंगे।'' इस तरह से अमेरिका में कोई व्यक्ति या संस्था सर्वोच्च नहीं होकर संविधान सर्वोच्च है।

12. 3. 5 लोकप्रिय सम्प्रभुता पर आधारित संविधान - अमेरिकी संविधान जनप्रभुता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसका अर्थ है कि सम्प्रभुता अमेरिकी जनता में निहित है। संविधान की प्रस्तावना के इन शब्दों में जनप्रभुता का आभास होता है– ''हम, संयुक्त राज्यों के लोग, अधिक शक्तिशाली संघ बनाने, न्याय की स्थापना करने, आन्तरिक शान्ति को प्राप्त करने, सामान्य प्रतिरक्षा की व्यवस्था और सार्वजनिक कल्याण में बढ़ोतरी करने तथा अपने और अपनी सन्तान हेतु स्वतन्त्रता के वरदान को सुरक्षित रखने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए इस संविधान को निर्मित एवं प्रतिष्ठित (स्थापित) करते है।'' इस प्रकार अमेरिका के संविधान में जनता की प्रभुता को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। इस संविधान का आधार जनसत्ता है। राज्य की अंतिम शक्ति जनता के हाथों में है। जनता ही सम्प्रभु है। संविधान पूर्णत: जनतन्त्रीय है। अब्राहम लिंकन के शब्दों में यदि कहा जाए तो अमेरिकी सरकार ''जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए सरकार है।''

12. 3. 6 संघात्मक शासन प्रणाली :– 1787 में फिलाडेल्फिया सम्मेलन द्वारा निर्मित संविधान के द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका में एक संघ राज्य की स्थापना की गयी। प्रारम्भ में अमेरिकी संघ में 13 राज्य थे, आज 50 हैं जो स्थायी रूप से संघ में सम्मिलित हैं। संघात्मक पद्धति के अनुसार केन्द्र और राज्यों की शक्तियाँ संविधान द्वारा निर्धारित की गई है। साधारणत: यह सिद्धान्त अपनाया गया है कि राष्ट्रीय महत्त्व के विषय संघीय सरकार को और स्थानीय महत्त्व के विषय राज्यों की सरकार को सौंपे गए है, अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों के पास है। आधुनिक काल में संघीय सरकार की शक्तियाँ अनेक कारणों से बढ़ती ही जा रही है। शासन के तीनों अंगों में न्यायपालिका सर्वोच्च है। संघात्मकता को और अधिक सुदृढ़ करने के लिए संघीय संविधान में संशोधन करने की शक्ति भी राज्यों में है। संघ की व्यवस्थापिका के महत्त्वपूर्ण सदन–सीनेट का गठन ही संघात्मक आधार पर किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12. 3. 7 अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली – अमेरिका के संविधान–निर्माता देश में एक ऐसी शासन व्यवस्था चाहते थे जो प्रजातान्त्रिक भी हो और साथ ही सशक्त, स्थायी और मजबूत भी। इसलिए देश में अध्यक्षात्मक शासन–प्रणाली अपनाई गई। देश की वास्तविक कार्यपालिका का प्रधान राष्ट्रपति है। साथ ही यह भी व्यवस्था की गई कि वह कांग्रेस (संसद) के प्रति उत्तरदायी नहीं है। राष्ट्रपति चार वर्ष के लिए चुना जाता है। इन चार वर्षों में महाभियोग के अतिरिक्त उसे पद से हटाया नहीं जा सकता। उसी के नाम से देश का शासन संचालित किया जाता है और वही वास्तव मे शासन चलाता भी है। वास्तव में अमेरिका की कार्यपालिका, ब्रिटेन की संसदीय शासन–पद्धति की तरह द्वैध न होकर, एकल है।

12. 3. 8 न्यायिक सर्वोच्चता – सभी संघात्मक राज्यों के अन्तर्गत एक सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है। जिसका कार्य संविधान की व्याख्या एवं रक्षा करना होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के कारण स्वाभाविक रूप से न्यायिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। इस प्रकार ब्रिटेन में जहाँ संसद् की सर्वोच्चता है, वहाँ अमेरिका में न्यायिक सर्वोच्चता है। ब्रिटेन में ससद् कोई भी कानून बना सकती है। वहाँ न्यायालय उन्हें अवैध घोषित नहीं कर सकते, परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका में कांग्रेस अथवा राज्य व्यवस्थापिकाओं द्वारा पास किए हुए कोई भी कानून जो संविधान के विरुद्ध हों, वहाँ के संघीय न्यायालय के द्वारा अवैध घोषित किए जा सकते है, अर्थात् अमेरिका के न्यायालयों को कानून की वैधता के विषय में विचार तथा निर्णय देने का अधिकार प्राप्त है। न्याय विभाग की महत्ता इतनी अधिक है कि जेम्स बैंक ने सर्वोच्च न्यायालय को 'संविधान का सन्तुलन चक्र' कहा है।

12. 3. 9 शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त :– अमेरिकी संविधान निर्माता स्वतन्त्रता और सीमित शासन के कायल थे। वे लॉक और माण्टेस्क्यू के विचारों से प्रभावित थे। अत: उन्होंने संविधान को शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित किया। वे इस विचार से सहमत थे कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों का पृथक्करण किया जाए। सरकार के ये तीनों अंग परस्पर स्वतन्त्र हों, ताकि वे एक दूसरे की निरंकुशता को रोक सकें अथवा परस्पर नियन्त्रण करते हुए सरकार पर संतुलन स्थापित कर सकें। अत: शक्ति पृथक्करण और परस्पर नियन्त्रण तथा संतुलन अमेरिकी शासन व्यवस्था की मुख्य विशेषता बन गई और संविधान निर्माताओं द्वारा संविधान में शक्ति–पृथक्करण सम्बन्धी व्यवस्था की गई। तद्नुसार कांग्रेस विधि निर्माण करती है, राष्ट्रपति विधि लागू करता है और सर्वोच्च न्यायालय उन विधियों की संवैधानिकता का अवलोकन करता है। कोई भी विभाग दूसरे विभाग के कार्यों को हथिया नहीं सकता और न ही हस्तक्षेप कर सकता है। एक विभाग अपनी शक्ति को दूसरे विभाग को प्रत्यायोजित अथवा हस्तान्तरित नहीं कर सकता। संविधान के संरक्षक के रूप में देश का सर्वोच्च न्यायालय सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है कि उपर्युक्त मान्यता कायम रहे।

12. 3. 10 नियन्त्रण और सन्तुलन का सिद्धान्त – अमेरिकी संविधान निर्माता जहाँ स्वतन्त्रता की रक्षा और शक्तियों के दुरूपयोग को रोकने के लिए शक्तियों के पृथक्करण को आवश्यक समझते थे वहाँ उन्हें इस बात का अहसास था कि शासन में सावयव एकता है और उसकी सफलता शासनांगों के पारस्परिक सहयोग पर निर्भर करती है। अत: उपर्युक्त शक्ति–विभाजन को व्यावहारिक बनाने के लिए उन्होंने संविधान में नियन्त्रण और सन्तुलन–प्रणाली की व्यवस्था की। इसके अनुसार शासन के तीनों अंगों की शक्तियों के लिए ऐसा प्रबन्ध कर दिया गया कि वे एक दूसरे पर इस तरह नियन्त्रण रखें जिससे शक्ति का सन्तुलन बना रहे। यदि कोई विभाग कभी अपने उत्तरदायित्व को भुला दे तो दूसरा विभाग उसे सचेत कर कार्य करने के लिए विवश कर दे। जैसाकि प्रो. मैरी डी नाटोली ने कहा है, ''कांग्रेस और राष्ट्रपति प्रत्येक को एक–दूसरे के साथ कार्य करते हुए एक–दूसरे को सन्तुलित करना होता है।'' नियन्त्रण तथा सन्तुलन की प्रक्रिया के कारण ही देश की अध्यक्षात्मक व्यवस्था सफल हुई है।

12. 3. 11 दोहरी नागरिकता – संविधान अमेरिका में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था करता है –एक संयुक्त राज्य अमेरिका की और दूसरी उस राज्य की जिसमें नागरिक निवास करता है। अमेरिका में दोहरी नागरिकता का होना स्वाभाविक था क्योंकि संघ निर्माण से पूर्व प्रत्येक राज्य ने नागरिकों को अपनी नागरिकता प्रदान कर रखी थी। संयुक्त राज्य अमेरिका के निर्माण के साथ नागरिकों को उसकी नागरिकता भी प्राप्त हो गयी।

12. 3. 12 न्यायिक पुनरावलोकन – इसे न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त भी कहते हैं। यह अमेरीकी संविधान की एक प्रमुख विशेषता है। न्यायिक पुनरावलोकन न्यायालय की वह शक्ति है, जिसके आधार पर न्यायालय कानून की संवैधानिक या असंवैधानिकता निर्धारित करती है। विधानमण्डल द्वारा पास किया गया कोई कानून अथवा उसके अन्तर्गत कार्यपालिका द्वारा जारी किया गया कोई आदेश या आज्ञप्ति या नियम व उपनियम यदि संविधान की किसी धारा के विपरीत है या उसकी उल्लंघना करता है तो न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर रद्द कर सकता है, और उसे प्रभावहीन बना सकता है। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनरावलोकन का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सर्वप्रथम प्रयोग 1803 में 'मारबरी बनाम मैडीसन' के मुकदमे में किया था जब उसने कांग्रेस द्वारा 1789 में पारित न्यायिक अधिनियम के खण्ड 13 को अवैध घोषित कर रद्द कर दिया था।

12. 3. 13 अधिकार पत्र – अमेरिका के संविधान में व्यक्तियों के अधिकारों का स्पष्ट रूप से समावेश किया गया है। नागरिकों को भाषण की स्वतन्त्रता, धर्म को मानने की स्वतन्त्रता, शान्ति पूर्वक सभा करने तथा सरकार के पास अपनी शिकायतें भेजने के अधिकार सम्बन्धी स्वतन्त्रताएँ प्राप्त है। युद्ध अथवा विद्रोह के समय के अतिरिक्त कभी भी बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक अभियुक्त यह माँग कर सकता है कि उस पर निष्पक्ष जूरी द्वारा सार्वजनिक न्यायालय में मुकदमा चलाया जाए। अत: प्रत्येक व्यक्ति को भ्रमण और व्यवसाय की स्वतन्त्रता है तथा समान कानूनी संरक्षण प्राप्त है। ये व्यवस्थाऐं नागरिकों के मौलिक अधिकारों की प्रतीक है।

12. 3. 14 द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका – संविधान कांग्रेस को द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका बनाता है। निम्न सदन को प्रतिनिधि सदन और उच्च सदन को सीनेट कहते हैं। निम्न सदन की रचना जनसंख्या के आधार पर की जाती है जबकि उच्च सदन की रचना एककों की समानता के आधार पर की जाती है। सीनेट में प्रत्येक छोटे–बड़े राज्य के दो प्रतिनिधि होते हैं। निम्न सदन में 425, तथा उच्च सदन में 100 सदस्य हैं।

12. 3. 15 लूट प्रणाली – अमेरिकी संवैधानिक इतिहास में ''लूट प्रणाली'' के नाम से एक अनूठी और भ्रष्ट प्रणाली विद्यमान रही है। इस प्रणाली के अनुसार राष्ट्रपति अपने पूर्वाधिकारियों के समर्थकों को सरकारी पदों से हटा सकता था और अपने समर्थकों को अर्थात् अपने दल के सदस्यों को पदों का लाभ दे सकता था अर्थात् उन्हें नियुक्त कर सकता था। इस प्रथा को 1820 में पारित किये गये पदावधि अधिनियम से बल मिला था जिसमें पदाधिकारियों के कार्यकाल को राष्ट्रपति के कार्यालय के अनुरूप बना दिया गया था। राष्ट्रपति में परिवर्तन होने के साथ ही उच्च पदाधिकारियों में भी परिवर्तन हो जाता है। वह अपनी इच्छानुसार उच्च पदाधिकारियों में भी परिवर्तन हो जाता है। वह अपनी इच्छानुसार उच्च पदों पर नियुक्ति करता है।

12. 4 सारांश

इस प्रकार अमेरिका ने यह सिद्ध कर दिया कि बड़े देशों में भी लोकतन्त्र सफल हो सकता है। यदि ब्रिटेन वासी 'विधि के शासन' सिद्धान्त के लिए गर्व कर सकते है तो अमेरिका निवासी 'न्यायिक पुनर्निरीक्षण' सिद्धान्त पर गर्व कर सकते हैं। अपनी संघीय व्यवस्था, नियन्त्रण एवं सन्तुलन युक्त शक्ति पृथक्करण, न्यायपालिका की सर्वोच्चता आदि विशेषताओं के कारण यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि धीरे–धीरे परिवर्तित होकर इसने अपने आप को बदली हुई परिस्थितियों के पूर्णतया अनुकूल ढाल लिया है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की उत्पत्ति तथा विकास में सहायक तत्त्वों का वर्णन करों।
2. संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का निर्माण कैसे हुआ ?
2. संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अमेरिकी संविधान के निर्माण के लिए किस स्थान पर सम्मेलन बुलाया गया ?
2. अमेरिकी संविधान में कुल कितने अनुच्छेद हैं ?
3. अमेरिका में दोहरी नागरिकता से क्या तात्पर्य हैं ?
4. अमेरिकी संघ में कुल कितने गणराज्य हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–13
अमेरिकी राष्ट्रपति का पद और चुनाव प्रणाली

संरचना

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 राष्ट्रपति पद की योग्यताएँ

13.3 कार्यकाल

13.4 उन्मुक्तियाँ

13.5 राष्ट्रपति का वेतन तथा सुविधाएँ

13.6 रिक्त स्थान की पूर्ति

13.7 राष्ट्रपति को पद से हटाने की पद्धति

13.8 राष्ट्रपति का चुनाव

- 13.8.1 प्रत्याशियों का मनोनयन
- 13.8.2 चुनाव अभियान
- 13.8.3 निर्वाचक मण्डल का चुनाव
- 13.8.4 निर्वाचक मण्डल द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव
- 13.8.5 राष्ट्रपति का पद ग्रहण

13.9 राष्ट्रपति की शक्तियाँ

- 13.9.1 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ
- 13.9.2 विधायी शक्तियाँ
- 13.9.3 बजट तैयार करवाना
- 13.9.4 वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन
- 13.9.5 सैनिक शक्तियाँ
- 13.9.6 न्यायिक शक्तियाँ
- 13.9.7 राष्ट्रपति एक दलीय नेता
- 13.9.8 अमरीकी राष्ट्र का सर्वोच्च नेता
- 13.9.9 संकटकालीन शक्तियाँ

13.10 सारांश

13.0 उद्देश्य

इस खंड के अन्तर्गत विश्व में अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था का प्रतीक अमेरिकी राष्ट्रपति पद की वास्तविक स्थिति का उल्लेख किया गया है। विद्यार्थियों को इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- अध्यक्षात्मक शासन पद्धत्ति में राष्ट्रपति की वास्तविक शक्तियों को समझ सकेंगे,
- कार्यपालिका शक्ति पर राष्ट्रपति की एकाधिकार भूमिका का सिहांवलोकन कर सकेंगे,
- राष्ट्रपति पद के निश्चित कार्यकाल अवधि और चुनाव प्रक्रिया को समझ सकेंगे,
- राष्ट्रपति के वीटो का मूल्यांकन करेंगे,
- राष्ट्रपति की भूमिका तथा राजनीतिक व्यवस्था में उसकी भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13. 1 प्रस्तावना

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का पद विश्व की कार्यपालिकाओं में शक्ति और सम्मान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व और प्रभाव का पद माना जाता है। 1787 ई. में फिलाडेल्फिया सम्मेलन में पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात् अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को अपनाकर संविधान में राष्ट्रपति पद का सृजन किया गया था। संविधान के अनुच्छेद 2 में केवल इतना ही लिखा है कि ''अमेरिकी संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी।'' संविधान निर्माताओं ने कभी नहीं सोचा होगा कि इन थोड़े से शब्दों में वर्णित राष्ट्रपति का पद आगे चलकर विश्व के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली पदों में से एक होगा। ब्राइस के शब्दों में ''आज राष्ट्रपति का पद विश्व के लौकिक पदों में सबसे महान् है।'' इस पद में सत्ता और प्रतिष्ठा इतनी अधिक है कि विश्व का कोई अन्य संवैधानिक पदाधिकारी इतनी अधिक सत्ता और प्रतिष्ठा का उपयोग नहीं करता। विश्व का यही एक ऐसा पद है जिसमें वे सब शक्तियाँ केन्द्रित हो गई हैं जो ब्रिटेन में सम्प्रभु, प्रधानमंत्री और केबिनेट में विभाजित की गई हैं। अर्थात् ब्रिटिश प्रधानमंत्री देश का वास्तविक शासक है, संवैधानिक नहीं। परन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति में ये दोनों ही तत्त्व पाए जाते हैं। राष्ट्रपति सरकार तथा राज्य दोनों का अध्यक्ष है। ऑग के शब्दों में, ''आज अमेरिका का राष्ट्रपति संसार का सबसे महान् शासक हो गया है।'' संविधान लागू होने के बाद से राष्ट्रपति की शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है और ''वाशिंगटन से लेकर अब तक प्रत्येक राष्ट्रपति ने इसे अधिक शक्तिशाली बनाने में योग दिया है।'' सारांश में, अमरीकी राष्ट्रपति संवैधानिक तथा वास्तविक शासक, दोनों ही है।

13.2 राष्ट्रपति पद की योग्यताएँ

राष्ट्रपति पद की योग्यताओं का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 2 की उपधारा 1 में किया गया है, जिसमें कहा गया है कि राष्ट्रपति पद के लिए वही व्यक्ति पात्र होगा। जो -

1. संयुक्त राज्य अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो,
2. 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,
3. कम-से-कम 14 वर्ष तक अमेरिका में रह चुका हो

इन संवैधानिक योग्यताओं के अतिरिक्त राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार का व्यावहारिक रूप में निर्धारण राजनीतिक दल करते हैं।

13.3 कार्यकाल

संविधान के अनुच्छेद 2, भाग 1 में राष्ट्रपति के कार्यकाल का निर्धारण किया गया है, जो 4 वर्ष का है। इस अवधि में वह स्वयं त्याग-पत्र देकर अथवा मृत्यु हो जाने पर अथवा महाभियोग पारित हो जाने पर ही अपने पद से पृथक् हो सकता है या किया जा सकता है। 1951 में संविधान में 22 वें संशोधन द्वारा यह निश्चित किया गया है कि कोई भी व्यक्ति दो बार ही राष्ट्रपति बन सकता है, तीसरी बार नहीं बन सकता।

13.4 उन्मुक्तियां

राष्ट्रपति की उन्मुक्तियां परम्पराओं पर आधारित हैं। उसके कार्यकाल के दौरान गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता, उसके विरुद्ध किसी प्रकार के परमादेश अथवा आदेश जारी नहीं किये जा सकते। परन्तु पद विमुक्त होने के बाद उस पर न्यायालय में कार्यवाही की जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.5 राष्ट्रपति का वेतन तथा सुविधाएँ

अमेरिकी कांग्रेस को राष्ट्रपति का वेतन, भत्ते निर्धारित करने का अधिकार है। वे उसके कार्यकाल में घटाए नहीं जा सकते। इस सम्बन्ध में जो भी परिवर्तन करने होते हैं वे नए राष्ट्रपति के पद ग्रहण से पूर्व ही कर लिए जाते हैं। जनवरी 1969 में निक्सन के राष्ट्रपति पद ग्रहण करने की तिथि के बाद से यह वेतन 2 लाख डॉलर वार्षिक कर दिया गया है। यह वार्षिक वेतन कर-मुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अपने पद के गौरव के अनुकूल विशाल मात्रा में भत्ते तथा अन्य सुविधाएं प्राप्त है। आवास के लिए लगभग 17 एकड़ भूमि का 'ह्वाइट हाऊस' नामक सुन्दर भवन है।

13.6 रिक्त स्थान की पूर्ति

राष्ट्रपति के कार्यकाल की अवधि समाप्त होने से पूर्व यदि वह त्यागपत्र दें दे, उसकी हत्या कर दी जाए या महाभियोग द्वारा उसे हटा दिया जाए तो उसका उत्तराधिकारी संविधान के 25 वें संशोधन द्वारा तय होगा। इस संशोधन के भाग प्रथम में लिखा है कि राष्ट्रपति के पद से हटाए जाने, उसकी मृत्यु अथवा त्यागपत्र देने पर उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति बन जाएगा।

13.7 राष्ट्रपति को पद से हटाने की पद्धति

अमेरिका के राष्ट्रपति को 'महाभियोग' द्वारा 4 वर्ष के कार्यकाल से पूर्व किसी भी दिन पदच्युत् किया जा सकता है। महाभियोग का अर्थ है- देशद्रोह, घूसखोरी या अन्य गम्भीर अपराधों के कारण राज्य के किसी ऊँचे राजनीतिक पदाधिकारी पर कांग्रेस द्वारा चलाया गया मुकदमा। अमेरिकी राष्ट्रपति पर महाभियोग प्रतिनिधि सभा के बहुमत के प्रस्ताव से चलाया जाता है। उसकी सुनवाई सीनेट करती है। उस समय सीनेट की अध्यक्षता सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश करता है। 2/3 बहुमत से सीनेट राष्ट्रपति को अपराधी घोषित कर सकती है। अमेरिकी इतिहास में अब तक केवल एक ही राष्ट्रपति जॉनसन के विरुद्ध महाभियोग चलाया गया, जो पारित नहीं किया जा सका।

13.8 राष्ट्रपति का चुनाव

ब्रिटिश राजनीति का सर्वाधिक आकर्षक तत्त्व यदि सम्राट का पद और व्यक्तित्व है तो अमेरिकी राजनीति का सर्वाधिक रंगीन और आकर्षक तत्त्व अमेरिकी राष्ट्रपति का निर्वाचन है। 'ह्वाइट हाऊस' में निवास करने वाले राष्ट्रपति से लेकर साधारण से साधारण व्यक्ति द्वारा इसमें रूचि ली जाती है। इसके लिए राष्ट्रव्यापी प्रचार कार्य किया जाता है तथा करोड़ों डालर व्यय किया जाता है। संविधान-निर्माता चाहते थे कि राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा हो, ताकि इस महत्त्वपूर्ण पद का निर्वाचन शान्त वातावरण में हुल्लड़ और राजनीतिक धांधलेबाजी से दूर रहकर हो सके। इसीलिए निर्वाचक मण्डल द्वारा राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था की गई थी।

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचकों के उस अल्पसंख्यक समूह के द्वारा हो, जिसके चयन की विधि राज्यों की व्यवस्थापिकाएँ तय करें। इसके अतिरिक्त यह भी तय किया गया कि प्रत्येक राज्य के लिए राष्ट्रपति के निर्वाचकों की संख्या उस राज्य के लिए निश्चित सीनेट के सदस्यों तथा प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की संख्या के बराबर होगी तथा इस प्रकार विविध राज्यों के प्रतिनिधियों से मिलकर उस निर्वाचक मण्डल का निर्माण होगा, जो राष्ट्रपति का निर्वाचन करेगा। इस निर्वाचक मण्डल का कार्य राष्ट्रपति को चुनने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रखा गया। 23 वें संशोधन द्वारा कोलम्बिया जिले को भी 3 प्रतिनिधि निर्वाचक मण्डल के लिए चुनने का अधिकार दे दिया गया। इस तरह आजकल निर्वाचक मण्डल में कुल 538 सदस्य है (435 प्रतिनिधि सभा के सदस्य + 100 सीनेट के सदस्य तथा +3 कोलम्बिया जिले से)

राष्ट्रपति का निर्वाचन आज केवल सिद्धान्ततः अप्रत्यक्ष है, अन्यथा व्यवहार में वह पूर्णतः प्रत्यक्ष निर्वाचन बन गया है। राष्ट्रपति पद के निर्वाचक मण्डल के सदस्यों का चुनाव अब राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा न होकर सीधे जनता द्वारा होता है। जनता जिस दल के व्यक्तियों को राष्ट्रपति पद के निर्वाचक-मण्डल के लिए चुन देती है, उसी दल का प्रत्याशी राष्ट्रपति बनता है। वर्तमान समय में देश में दो शक्तिशाली राजनीतिक दल विद्यमान हैं। ये दोनों ही दल राष्ट्रपति पद के लिए अपने-अपने प्रत्याशी खड़ा करते हैं और जनता निर्वाचन मण्डल के सदस्यों को चुनकर ही प्रायः यह निश्चित कर देती है कि किस दल का प्रत्याशी राष्ट्रपति होगा। निर्वाचक मण्डल के निर्वाचन में दोनों ही राजनीतिक दलों - डेमोक्रेटिक पार्टी तथा रिपब्लिकन पार्टी में घनघोर संघर्ष होता है।

वर्तमान समय में राष्ट्रपति का निर्वाचन निम्नलिखित रीति से होता है-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13. 8.1 प्रत्याशियों का मनोनयन : - राष्ट्रपति-निर्वाचन का सबसे पहला और महत्त्वपूर्ण चरण प्रत्याशियों का नामांकन है। राष्ट्रपति के निर्वाचन के पूर्व प्रत्येक राजनीतिक दल एक राष्ट्रीय सम्मेलन के निर्वाचन का आयोजन करता है। प्रत्येक दल का राष्ट्रीय सम्मेलन राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पदों के लिए अपने-अपने दल के उम्मीदवारों को नामांकित करता है।

उपराष्ट्रपति पद के लिए प्राय: उसी व्यक्ति का चयन किया जाता है जो राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी के निवास के राज्य से भिन्न राज्य का निवासी हो। प्राय: ऐसा भी किया जाता है कि यदि राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी देश के एक भाग का निवासी है तो उपराष्ट्रपति पद का प्रत्याशी देश के दूसरे भाग का निवासी होता है।

13.8.2 चुनाव अभियान :- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों का नामांकन कर देने के उपरान्त तुरन्त ही दोनों ही राजनीतिक दल अपने-अपने उम्मीदवारों के पक्ष में देशव्यापी प्रचार प्रारम्भ कर देते है। यह प्रचार-युद्ध काफी जटिल तथा खर्चीला होता है। उम्मीदवार को चुनाव लड़ने में राजनीतिक व्यवसायिकों, सार्वजनिक सम्पर्क विशेषज्ञों और स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों से सहायता मिलती है। उम्मीदवार रेडियों, टेलीविजन, समाचार पत्रों का सहारा लेते है और उनके द्वारा अपनी नीति तथा कार्यक्रम का प्रचार करते है।

13. 8.3 निर्वाचक मण्डल का चुनाव :- राष्ट्रपति के निर्वाचन की तीसरी सीढ़ी दोनों दलों द्वारा निर्वाचक मण्डल के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किये जाते है। इन उम्मीदवारों को अपने-अपने दल के राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशियों को मत देने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। निर्वाचक मण्डल की सदस्य-संख्या 538 है। निर्वाचक मण्डल के सदस्यों का चुनाव मतदाताओं के द्वारा होता है। प्रत्येक वयस्क नागरिक को मत देने का अधिकार होता है। निर्वाचक मण्डल के सदस्यों का चुनाव सूची-प्रणाली के आधार पर होता है। अर्थात् मत किसी उम्मीदवार के लिए नहीं अपितु दल की सूची के पक्ष में डाले जाते है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों के लिए किया जाने वाला मतदान परोक्ष रूप से राष्ट्रपति के लिए ही होता है, क्योंकि जिस दल के लोगों को जनता निर्वाचन-मण्डल के लिए चुनती है, वे स्वाभाविक रूप से उसी दल के राष्ट्रपति-पद के प्रत्याशी को अपने मत देते हैं।

तत्पश्चात् नवम्बर माह के प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार को (जो निर्वाचन का दिन होता है) सब मतदाता अपने-अपने राज्य में एकत्र होकर इन निर्वाचकों के लिए अपना-अपना मत देते है। स्पष्ट है कि वह दल जो राज्य में बहुमत प्राप्त करता हैं समस्त निर्वाचकों को निर्वाचक-मण्डल में भेज देता हैं, जो प्रत्याशी निर्वाचकों में से बहुमत (270) स्थान प्राप्त कर लेता हैं, उसको यह विश्वास हो जाता है कि वह राष्ट्रपति बन जाएगा।

13.8.4 निर्वाचक मण्डल द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव :- निर्वाचक मण्डल द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव मात्र एक औपचारिकता रह जाती है। निर्वाचक मण्डल के सदस्य दिसम्बर के दूसरे बुधवार को अपने-अपने राज्यों की राजधानियों में एकत्रित होते हैं और राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं। तत्पश्चात् सभी राज्यों के मतपत्रों को प्रमाणित कर सील करके लिफाफो को सीनेट के अध्यक्ष के पास वांशिगटन भेज दिया जाता है, वहाँ सीनेट के अध्यक्ष द्वारा वे लिफाफे कांग्रेस के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने खोले जाते हैं। मतगणना की जाती है। परिणाम की घोषणा की जाती है। जो प्रत्याशी निर्वाचकों के मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेता है, उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।

जब किसी उम्मीदवार को स्पष्ट बहुमत न मिले, तो राष्ट्रपति के निर्वाचन का कार्य प्रतिनिधि-सभा करती है। प्रतिनिधि-सभा प्रथम अधिकतम मत पाने वाले उन तीन प्रत्याशियों में से एक को राष्ट्रपति चुन लेती है, जिनके नाम सीनेट का अध्यक्ष उसके पास भेजता है। प्रतिनिधि सभा जब इस प्रकार राष्ट्पति का चुनाव करतो है, तब सभा के सदस्य राज्यवार मतदान करते है और उनके मत 'एक राज्य एक मत' के आधार पर गिने जाते है। इस प्रकार 50 राज्यों के कुल 50 मत होते है और 26 या 26 से अधिक मत पाने वाला उम्मीदवार विजयी घोषित कर दिया जाता है। अमेरिकी संविधान के इतिहास में अभी तक केवल दो बार राष्ट्रपति प्रतिनिधि सभा द्वारा चुने गए हैं- सन् 1801 में जैफरसन और सन् 1825 में एडम्स।

13.8.5 राष्ट्रपति का पद ग्रहण :- निर्वाचित राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति 20 जनवरी को अपने-अपने पद की शपथ ग्रहण करते है और उसी दिन से उनका कार्यकाल आरम्भ हो जाता है। सर्वोच्च-न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश उन्हें पद तथा गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.9 राष्ट्रपति की शक्तियाँ

वर्तमान में अमेरिका के राष्ट्रपति की शक्तियाँ इतनी विशाल, व्यापक और विविध हैं कि उसे विश्व के संवैधानिक राज्यों में सर्वाधिक शक्तिशाली पदाधिकारी समझा जाता है। अमेरिकी संविधान निर्माता राष्ट्रपति को वैधानिक कार्यपालिका तथा राष्ट्र के नेता के रूप में देखना चाहते थे, दलीय नेता के रूप में नहीं। परन्तु कुछ ऐसे प्रभावों ने जो, शासन-पद्धति में ही निहित है, उसे तीनों ही बना दिया है। सी.एफ. स्ट्रांग ने कहा है कि ''विश्व में आज किसी संवैधानिक राज्य में कोई ऐसा पदाधिकारी नहीं जिसकी शक्तियाँ इतनी विशाल हों जितनी कि अमेरिका के राष्ट्रपति की हैं।'' सर हेनरी मेन भी लिखता है, ''इंगलैण्ड का सम्राट राज्य करता है परन्तु शासन नहीं, फ्रांस का राष्ट्रपति न तो राज्य करता और न शासन, अमेरिका का राष्ट्रपति न केवल शासन करता है अपितु राज्य भी करता है।'' वस्तुत: अमेरीकी राष्ट्रपति अपनी शक्तियों को अपने व्यक्तित्व, चरित्र, नेतृत्व की क्षमताओं, आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों और दलीय समर्थन की मात्रा से भी प्राप्त करता है।

अमेरिकी राष्ट्रपति की विशाल शक्तियों को निम्नलिखित शीर्षकों में समझ सकेंगे-

13.9.1 कार्यपालिका शक्तियाँ :- अमरीकी राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों को निम्नलिखित रुप से विश्लेषित किया जा सकता है -

1. कानूनों का क्रियान्वयन करना :- राष्ट्रपति राष्ट्रीय सरकार का मुख्य प्रशासक है। अत: संघीय कानूनों और सन्धियों को निष्ठापूर्वक लागू करना उसका मुख्य कर्त्तव्य है। राष्ट्रपति को किसी कानून को लागू न करने अथवा उसे लागू करने में देरी करने का कोई अधिकार नहीं। किसी कानून की वांछनीयता अथवा अवांछनीयता को देखने का कार्य कांग्रेस का है। और उसकी वैधता या अवैधता का परीक्षण करने का कार्य न्यायपालिका का है।

13. प्रशासन का संचालन करना :- राष्ट्र का प्रमुख शासक होने के नाते राष्ट्रपति ही संघीय सरकार के प्रशासन सम्बन्धी समस्त कार्यों के लिए अन्तिम रूप से उत्तरदायी है। प्रशासकीय विभागों का संगठन और विस्तार तो कांग्रेस करती है, पर उसके पुनर्गठन और कार्यों का निरीक्षण करना राष्ट्रपति के अधिकार में है। वह किसी भी विभाग के अधिकारी से किसी भी विषय पर प्रतिवेदन अथवा परामर्श माँग सकता है।

3. नियुक्ति सम्बन्धी शक्तियाँ :- राष्ट्रपति के पास संरक्षण की अपार शक्ति है। संविधान राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह कांग्रेस के निश्चयों और कानूनों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यकतानुसार नियुक्तियाँ करे। इनमें उच्चवर्गीय नियुक्तियाँ भी शामिल हैं और निम्नवर्गीय भी। उच्चवर्गीय पदों की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति और सीनेट दोनों की स्वीकृति से होती है जबकि निम्न वर्गीय पदों को राष्ट्रपति अपनी इच्छा से ही कर सकता है। उच्च वर्गीय पदों में मन्त्री अथवा सचिव, विदेशों में अमेरिकी राजदूत, वाणिज्य दूत, विशेष दूत, सर्वोच्च-न्यायालय के न्यायाधीश, सुरक्षा समिति तथा सर्वोच्च परिषद् के सदस्य, केन्द्रीय शासन के अध्यक्ष आदि बड़े-बड़े अधिकारों के पद सम्मिलित होते है। इन सभी की नियुक्तियों के सम्बन्ध में संविधान के अनुसार सीनेट की स्वीकृति या अनुसमर्थन आवश्यक है। व्यवहार में प्राय: सीनेट इनको अस्वीकृत नहीं करती।

निम्नस्तरीय पदों पर नियुक्तियाँ करने का अधिकार यद्यपि राष्ट्रपति का है तथापि सुविधा की दृष्टि से राष्ट्रपति ने यह भार विभिन्न विभागों के अध्यक्षों को सौंप दिया है। उच्च-स्तरीय नियुक्तियों के विषय में सीनेट के अनुसमर्थन का जो प्रतिबन्ध है, उसका प्रभाव व्यवहार में राष्ट्रपति की नियुक्ति सम्बन्धी शक्ति पर विशेष नहीं पड़ता। इसका प्रमुख कारण उस प्रथा का प्रचलन है, जिसे 'सीनेट की शालीनता'' सीनेट के प्रति शिष्टाचार ' (Senatorial Courtesy) कहा जाता है। इस प्रथा के अनुसार सीनेट के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा संघीय प्रशासन में की गई नियुक्तियों को इसलिए स्वीकार कर लेते है कि राष्ट्रपति राज्यों में उनकी पसन्द के व्यक्तियों को नियुक्त कर दें। सामान्यत: राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों को सीनेट का अनुसमर्थन मिल ही जाता है, किन्तु ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब सीनेट ने राष्ट्रपति की नामजदगियों को रद्द कर दिया। राष्ट्रपति बुश द्वारा प्रतिरक्षा मन्त्री के पद के लिए जान गोडविन टावर के नामांकन को 9 मार्च, 1989 को अस्वीकार कर दिया था। सीनेट के नामांकन को एक बार अस्वीकार करने के बाद उस पर पुनर्विचार नहीं कर सकती। मुनरो, ''राष्ट्रपति के पास नियुक्ति सम्बन्धी आधी शक्ति है, शेष सीनेट के पास है।''

4. पदच्युति की शक्ति – संविधान, सार्वजनिक पदाधिकारियों की पदच्युति के सम्बन्ध में मौन है। तथापि कांग्रेस द्वारा अन्तिम रूप से यही निर्णय किया गया है कि किसी को पदच्युत करने का अधिकार केवल राष्ट्रपति को ही होगा, और इसके लिए सीनेट की अनुमति आवश्यक नहीं होती। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तीन वर्ग अपवाद है, अर्थात् इन वर्गों के अधिकारियों को राष्ट्रपति स्वयं पदच्युत नहीं कर सकता–

1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश जिन्हें केवल महाभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है।
2. कांग्रेस द्वारा स्थापित विभिन्न आयोगों और बोर्डों के सदस्य जिन्हें कांग्रेस द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही पदच्युत किया जा सकता है।
3. लोकसेवा नियमों के अनुसार हुई नियुक्तियाँ जिन्हें केवल तभी विमुक्त किया जा सकता है जब उनके द्वारा लोकसेवा की कार्यकुशलता में बाधा पड़े।

   वस्तुत: राष्ट्रपति के हाथों में राष्ट्र के सम्पूर्ण प्रशासनिक ढाँचे पर नियन्त्रण रखने की इतनी अधिक शक्ति है कि वह उसके बल पर लोगों को स्वयमेव त्यागपत्र देने पर बाध्य कर सकता है।

5. क्षमादान, स्थगन और सर्वक्षमा का अधिकार – संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति को अन्य देशों के अध्यक्षों की भांति किसी अभियुक्त की सजा करने या कम करने का अधिकार प्राप्त है। वह इस शक्ति का प्रयोग कांग्रेस तथा न्यायालय से पूर्ण स्वतन्त्र हो कर करता है। वह किसी को क्षमादान भी कर सकता है।

6. मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व – राष्ट्रपति सीनेट की सहमति से अपने मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति करता है। वह मन्त्रिमण्डल का स्वामी है। वह किसी भी मन्त्री को मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित कर सकता है तथा किसी भी समय उसे हटा सकता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसके सहायक होते हैं, स्वामी नहीं।

13.9.2 विधायी शक्तियाँ :– संविधान निर्माताओं का प्रयत्न यह रहा था कि कार्यपालिका का व्यवस्थापन में कोई हाथ न रहे, किन्तु आज यह देखकर विस्मय होता है कि सर्वोच्च कार्यपालिका अथवा राष्ट्रपति का विधि-निर्माण में बहुत बड़ा हाथ है, अर्थात् अमरीकी राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रशासक ही नहीं है, वरन् यह कानून निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

1. सन्देश भेजने का अधिकार – राष्ट्रपति कांग्रेस को सन्देश भेज सकता है। राष्ट्रपति, कांग्रेस में स्वयं उपस्थित होकर सन्देश पढ़ सकता है अथवा उन्हें लिखित रूप से भेज सकता है। ये सन्देश राष्ट्रपति की नीति को स्पष्ट करते हैं और कांग्रेस इन्हें अपनी कार्यवाही में प्राथमिकता देती है। राष्ट्रपति के सन्देश समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते है जिनके द्वारा वह लोकमत को प्रभावित करता है, जिसके फलस्वरूप कांग्रेस राष्ट्रपति के सन्देशों के अनुसार आचरण करने को बाध्य हो जाती है।

2. विशेष अधिवेशन बुलाने का अधिकार – संविधान राष्ट्रपति को कांग्रेस का विशेष अधिवेशन आमन्त्रित करने की शक्ति प्रदान करता है। यह विशेष अधिवेशन कुछ दिनों तक चल सकता है अथवा उस समय तक चल सकता है जब तक कि नियमित अधिवेशन आरम्भ न हो। राष्ट्रपति कांग्रेस से नियमित अधिवेशन में अधिक काल तक बैठने के लिए माँग कर सकता है ताकि कानून बनाए जा सकें और यदि कांग्रेस इंकार करे तो वह विशेष अधिवेशन बुलाने के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। जैसाकि राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी. रूजवैल्ट ने 1933 ई. में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया था जो 100 दिन तक चला था।

3. निषेधाधिकार की शक्ति – राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा निर्मित विधेयकों पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर सकता है। परन्तु यह विशेषाधिकार (Veto)केवल निलम्बनकारी होता है, पूर्ण नहीं। व्यवस्था यह है कि कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कानून का रूप धारण नहीं कर सकता। कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत जो विधेयक अनुमति के लिए राष्ट्रपति के पास आया हो, उसे राष्ट्रपति अपने आक्षेपों सहित दस दिन के भीतर वापस लौटा सकता है। यह राष्ट्रपति का 'नियमित निषेधाधिकार' (Regular Veto) कहलाता है। इस प्रकार लौटाए गए विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते जब तक कि कांग्रेस के दोनों सदनों में 2/3 अथवा दो तिहाई बहुमत से ज्यों के त्यों पारित न हो जाएँ। यदि विधेयक कांग्रेस द्वारा पुन: पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति उसे नहीं रोक सकता।

जेबी निषेधाधिकार – जब कांग्रेस का अधिवेशन चल रहा हो, उस समय राष्ट्रपति के पास यदि कोई विधेयक स्वीकृति के लिए आता है, तो राष्ट्रपति के द्वारा उस पर 10 दिन तक विचार किया जा सकता है, 10 दिन के बाद राष्ट्रपति की बिना स्वीकृति के ही वह विधेयक कानून बन जाता है, परन्तु यदि इन 10 दिनों में कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हो जाए, तो राष्ट्रपति की स्वीकृति न मिलने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर यह विधेयक अपने आप ही निषिद्ध हो जाता है। इसमें राष्ट्रपति को प्रत्यक्ष रूप से निषेध करने की आवश्यकता नहीं होती और इसे राष्ट्रपति का 'जेबी निषेधाधिकार' (Pocket Voto) कहते हैं।

4. प्रशासकीय आदेश – यद्यपि राष्ट्रपति अध्यादेश तो जारी नहीं कर सकता तथापि ऐसी प्रथा है कि वह प्रशासकीय आदेश जारी कर सकता है और उन आदेशों के माध्यम से कार्यपालिका के विविध विभागों में कार्य किए जाने के नियम बना सकता है। राष्ट्रपति द्वारा जारी प्रशासकीय आदेशों को कानूनों के समान ही मान्यता प्राप्त होती है।

13.9.3 बजट तैयार करवाना :– संविधान ने वित्तीय शक्तियों के सम्बन्ध में कांग्रेस को सत्ता सम्पन्न बनाया था परन्तु अब व्यवहार में राष्ट्रपति ही अधिक शक्तिशाली बन गया है। सन् 1921 के "बजट एण्ड अकाउण्टिंग एक्ट" ने राष्ट्रीय सरकार के बजट निर्माण का उत्तरदायित्व कार्यपालिका को हस्तान्तरित कर दिया है। आय–व्यय का वार्षिक बजट राष्ट्रपति के निर्देशन में तैयार किया जाता है। वही बजट को कांग्रेस द्वारा पारित करवाता है। कांग्रेस राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत आय–व्यय की योजनाओं को अधिक या कम कर सकती है और वह किसी योजना या प्रोग्राम को जोड़ या निकाल सकती है, परन्तु जब तक इसके लिए कांग्रेस में व्यापक समर्थन प्राप्त नहीं होता तब तक राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत आय–व्यय की योजना में परिवर्तन करना सरल नहीं होता।

13.9.4 वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन :– संयुक्त राज्य अमरीका की कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते राष्ट्रपति अमरीका की परराष्ट्र नीति निर्धारित करता है और विश्व के अन्य राज्यों के साथ अमरीका के परराष्ट्र सम्बन्धों का संचालन करता है। अन्तरराष्ट्रीय मामलों में राष्ट्रपति देश की ओर से बोलने वाला सबसे प्रमुख व्यक्ति है। अमेरिका की विदेश नीति व उसके परिणामों की पूरी जिम्मेदारी उसी की है। राष्ट्रपति दूसरे राज्यों में अमरीका के राजदूतों, वाणिज्य दूतों आदि को नियुक्त करता है और अमरीकी नागरिकों के हितों की रक्षा करता है। राष्ट्रपति दूसरे राज्यों के राजदूतों के प्रमाण पत्रों को स्वीकार करके उन्हें मान्यता प्रदान करता है अथवा उन्हें अस्वीकार करके मान्यता देने से इंकार कर सकता हैं।

राष्ट्रपति ही विदेशों से सन्धियाँ सम्पन्न करता है और इन पर हस्ताक्षर करता है। यद्यपि इन सन्धियों अथवा समझौतों पर सीनेट के दो तिहाई मत के अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है, तथापि सन्धि का प्रारूप तैयार करने और उसके बारे में सम्बन्धित विदेशी राष्ट्र से वार्ता करने आदि का कार्य राष्ट्रपति ही करता है। व्यावहारिक दृष्टि से वही विदेश–नीति की रचना और घोषणा करता है। विदेश–नीति का रूप अक्सर स्वयं राष्ट्रपति पर ही निर्भर करता है।

13.9.5 सैनिक शक्तियाँ :– युद्ध और शान्ति, दोनों ही काल में राष्ट्रपति संयुक्त राज्य अमरीका की सेना का प्रधान सेनापति है। इस नाते वही उच्च सैनिक अधिकारियों की नियुक्तियाँ करता है, पर इन नियुक्तियों के लिए सीनेट का अनुसमर्थन आवश्यक होता है। सेनाध्यक्ष होने के नाते राष्ट्रपति जब भी आवश्यक समझे सब प्रकार की सेनाओं को कार्य करने का आदेश दे सकता है। वह अन्य राष्ट्रों के साथ युद्ध की घोषणा कर सकता है, लेकिन ऐसा करने के लिए सीनेट की स्वीकृति आवश्यक है।

13.9.6 न्यायिक शक्तियाँ :– राष्ट्रपति को न्यायिक क्षेत्र में भी शक्तियाँ प्राप्त हैं। सीनेट की सहमति से वह संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ करता है, किन्तु वह उन्हें पदच्युत नहीं कर सकता। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति अपराधी को क्षमा करने अथवा उसके प्राण दण्ड को स्थगित करने का विशेषाधिकार रखता है, परन्तु महाभियोग द्वारा दण्डित व्यक्तियों को राष्ट्रपति क्षमादान नहीं कर सकता है। राष्ट्रपति ऐसे अपराधियों को सामूहिक क्षमादान भी दे सकता है जिन्हें व्यक्तिगत रूप में दण्डित न कर संघीय कानून को भंग करने के अपराध में एक साथ दण्डित किया गया हो। राष्ट्रपति क्षमादान के अपने अधिकार का प्रयोग न्याय–विभाग की सिफारिश के अनुसार ही करता है।

13.9.7 राष्ट्रपति, एक दलीय नेता :– संविधान–निर्माताओं ने राष्ट्रपति को दलगत स्थिति से ऊपर रखने की योजना बनाई थी, परन्तु वे उसमें असफल रहे। 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में दल–पद्धति का अभ्युदय हो जाने के बाद से राष्ट्रपति दल के नेता और प्रत्याशी के रूप में निर्वाचित होने लगे और आज तो राष्ट्रपति द्वारा दल का नेतृत्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री के दलीय नेतृत्व से कम महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है। सम्पूर्ण देश में राष्ट्रपति ही दल का एक मात्र सर्वोच्च प्रतिनिधि होता है और दलीय नीतियों के कार्यान्वयन के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र की आँखें उसकी तरफ लगी रहती हैं। राष्ट्रपति को दल के सर्वोच्च नेता और निर्देशक की स्थिति प्राप्त है। इस स्थिति में वह दल की राष्ट्रीय समिति का अध्यक्ष हो जाता है। उसके दल के पदाधिकारी दल की सभी महत्त्वपूर्ण नीतियों और राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में उससे परामर्श करते हैं और उसके विचार सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णायक होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.9.8 अमरीकी राष्ट्र का सर्वोच्च नेता :- अमरीकी राष्ट्रपति अपने दल का ही नेता नहीं होता बल्कि वह राष्ट्र का नेता होता है। ब्रिटिश सम्राट् की भांति वह अपने राष्ट्र का प्रतीक है और अमेरिकी राजनीतिक जीवन की धुरी है। उसे देश का भाग्य-विधाता तथा संरक्षक कहा जाता है। वह सभी मामलों में राष्ट्र का प्रवक्ता होता है, सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व उसके द्वारा ही किया जाता है और कठिन तथा संकटपूर्ण स्थिति में व्यक्ति उसी की ओर बुद्धिमतापूर्ण तथा प्रभावशाली नेतृत्व के लिए देखते हैं। इन सब बातों ने उसे राष्ट्र के सर्वोच्च नेता की स्थिति प्रदान कर दी है और उसे यह स्थिति न केवल आन्तरिक राजनीति वरन् अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में भी प्राप्त होती है।

13.9.9 संकटकालीन शक्तियाँ :- अमरीकी संविधान में संकटकालीन शक्तियों का वर्णन नहीं है, किन्तु युद्ध, आन्तरिक अशान्ति अथवा आर्थिक संकट से उत्पन्न राष्ट्रीय संकटों के समय राष्ट्रपति अपार शक्तियों का स्वामी हो जाता है। जब तक संकटकाल रहता है तब तक जितने भी अधिकारों की वह माँग करता है और जितने भी अधिकारों का वह प्रयोग करता है, वे उसे प्राप्त होते हैं। अत: कांग्रेस के सहयोग से विभिन्न राष्ट्रपतियों ने अनेक शक्तियों को प्राप्त कर लिया।

13.10 सारांश

निष्कर्षत: यह कहना ठीक है कि राष्ट्रपति अपने कार्यकाल के लिए विश्व के अन्तिम एकतन्त्री शासकों में है जिसके अधिकारों में कमी नहीं की जा सकती, वरन् वृद्धि हो सकती है। पोटर ने लिखा है कि ''राष्ट्रपति का पद एक विस्तारशील शक्ति का पद है।'' वाशिंगटन के समय से लेकर जॉर्ज बुश तक राष्ट्रपति का पद विश्व का सबसे शक्तिशाली निर्वाचित पद हो गया है। उसकी वर्तमान शक्ति निरन्तर बढ़ती रही है। पहले राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता था। तब वह जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। किन्तु आज वह प्राय: प्रत्यक्ष रूप से जनता का प्रतिनिधित्व करता है। वह जनता की शक्ति एवं उसकी इच्छा का प्रतीक बन गया है। जैसे-जैसे राज्य का स्वरूप कल्याणकारी होता जा रहा है, कार्यपालिका का कार्यक्षेत्र बढ़ता जा रहा है और उसके साथ-साथ राष्ट्रपति की शक्तियाँ भी बढ़ती जा रही है। अत: आज की स्थिति के सम्बन्ध में स्ट्रोंग के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''विश्व के अन्य किसी भी संवैधानिक राज्य में अमरीकी राष्ट्रपति के समान व्यापक शक्तियों वाला कोई पदाधिकारी नहीं है।'' लेकिन राष्ट्रपति अधिनायकवादी आचरण नहीं कर सकता है। उस पर अमरीकी कांग्रेस, सर्वोच्च न्यायालय तथा जनमत का प्रभावशाली नियंत्रण रहता है। उसे संवैधानिक तथा मर्यादित आचरण करना पड़ता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति का चुनाव किस प्रकार होता हैं ? स्पष्ट करो।
2. संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति की शक्तियों का वर्णन करो।
3. अमरीकी राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया का वर्णन करें। व्यवहार में यह कहाँ तक प्रत्यक्ष निर्वाचन हो गया हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अमरीकी राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
2. अमरीकी राष्ट्रपति के निषेधाधिकार से क्या तात्पर्य है ?
3. युद्ध काल में अमरीकी राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में अधिनायक के समान हो जाता है ? स्पष्ट करो।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अमरीकी राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष होता है ?
2. अमरीकी राष्ट्रपति के पॉकेट वीटो से क्या तात्पर्य है ?
3. अमरीकी राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल में कुल कितने सदस्य होते हैं ?
4. अमरीका में एक व्यक्ति अधिक से अधिक कितनी बार राष्ट्रपति बन सकता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-14
अमेरिका की संघीय व्यवस्था का स्वरूप

संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 संघीय शासन क्या है ?

14.3 संघीय शासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं कारण

14.3.1 सुरक्षा

14.3.2 विशाल क्षेत्र

14.3.3 स्वतन्त्र भावनायें

14.3.4 विकेन्द्रित सामाजिक और राजनीतिक ढ़ाँचा

14.4 अमेरिका में संघ व्यवस्था : लक्षण

14.4.1 दोहरी शासन व्यवस्था

14.4.2 शक्तियों की सर्वोच्चता

14.4.3 संविधान की सर्वोच्चता

14.4.4 स्वतन्त्र न्यायपालिका

14.4.5 दोहरी नागरिकता

14.4.6 संघीय व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन में इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व

14.4.7 अविनाशी संघ

14.5 संघीय व्यवस्था की वर्तमान स्थिति

14.6 सारांश

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत अमरीकी संघीय शासन व्यवस्था के स्वरूप का उल्लेख किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- संघीय शासन व्यवस्था क्या है, की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- संघीय शासन व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समझ सकेंगे,
- संघीय शासन व्यवस्था की वर्तमान तथा भावी व्यवहारिकता का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- संघ में केन्द्रीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

अमेरिका की संघीय व्यवस्था विश्वविख्यात है। जिस प्रकार इंगलैण्ड संसदात्मक शासन प्रणाली का जन्मदाता कहलाता है, उसी प्रकार अमेरिका संघात्मक शासन प्रणाली का। अमेरिकी संघ का निर्माण करते समय अमरीकी संघ की इकाइयों को अपने राज्यों की सत्ता के प्रति बहुत अधिक मोह था। इस कारण उनके द्वारा एक ऐसे संघ का निर्माण किया गया, जिसमें केन्द्रीय सरकार को सीमित शक्तियाँ ही प्रदान की गयी थीं और इस बात का पूरा ध्यान रखा गया था कि केन्द्र अधिक शक्तिशाली होकर राज्यों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित न कर लें लेकिन अनेक बार संविधानों का विकास संविधान निर्माताओं द्वारा सोची गयी दिशा में नहीं होता। अमरिकी संविधान के अन्तर्गत भी संघीय व्यवस्था के सम्बन्ध में ऐसा ही हुआ है। संविधान को लागू करने के बाद से ही संयुक्त राज्य अमरीका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की आन्तरिक स्थिति और विदेशों के साथ उसके सम्बन्धों की स्थिति में इस प्रकार परिवर्तन हुआ कि केन्द्र की स्थिति अधिकाधिक प्रभावशाली होती गयी, और इकाइयों का महत्त्व कम होता गया। यही कारण है कि अमरीकी संघ में आज 13 के स्थान पर 50 इकाइयां हो गयी हैं।

14.2 संघीय शासन क्या है ?

संघवाद के अंग्रेजी रूपान्तर 'फेडरलिज्म' (Federalism) का विकास लेटिन भाषा के शब्द 'फोएडस' (Foedus) से हुआ है जिसका अर्थ है सन्धि अथवा समझौता। किसी भी संघीय व्यवस्था की स्थापना के लिए कुछ स्वतन्त्र राज्य अपने आपको अलग-अलग रखते हुए भी सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक संघ के रूप में संयुक्त कर लेते हैं। ये राज्य अपने कुछ सामान्य हित के विषयों को उस केन्द्रीय सत्ता के सुपुर्द कर देते हैं जिसकी जिम्मेदारी सम्पूर्ण देश के शासन की होती है। इसी केन्द्रीय अथवा नई सरकार को संघीय सरकार कहते हैं। संघीय सरकार की स्थापना से संघीय राज्यों की शक्तियों का पूर्ण-लोप नहीं होता, क्योंकि संघीय सरकार प्राय: उन्हीं कार्यों को करती है जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण देश से होता है। इस शक्ति-विभाजन की दो प्रणालियाँ प्रचलित हैं। प्रथम के अनुसार प्रशासन में कुछ विशेष अधिकार संघीय सरकार को दे दिए जाते हैं और शेष सब कार्यों की जिम्मेदारी संघ के अन्तर्गत अपने-अपने क्षेत्र में राज्यों पर होती है। द्वितीय के अनुसार राज्यों के अधिकार निश्चित कर दिए जाते है और बचे हुए विषयों पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में शक्ति विभाजन की प्रथम प्रणाली को अपनाया गया है। वहाँ केन्द्रीय सरकार के अधिकार निश्चित कर दिए गए है और शेष शक्ति विभिन्न राज्यों को दे दी गई है।

स्पष्ट है कि संघात्मक शासन में दोहरे शासन की व्यवस्था रहती है- एक केन्द्रीय शासन की और दूसरी राज्यों अथवा इकाइयों की। दोनों की ही अपनी अलग-अलग शासन-व्यवस्था होती है। संघीय संविधान में दो व्यवस्थापिकाएँ, दो कार्यपालिकाएँ, दो न्यायपालिकाएँ, दोहरी राजसत्ता , दोहरे कानून आदि का अस्तित्व पाया जाता है। प्रत्येक नागरिक की नागरिकता दोहरी होती है- एक संघीय शासन की और दूसरी राज्य सरकार की। इसके अतिरिक्त संविधान की सर्वोपरिता स्थापित होती है।

14.3 संघीय शासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

फिलाडेल्फिया सम्मेलन के द्वारा जब अमरीकी संविधान का निर्माण किया जा रहा था, उसके पूर्व अमरीकी क्षेत्र के 13 उपनिवेश पृथक्-पृथक् अस्तित्व में थे। लम्बे समय से अलग रहने के कारण उनमें अपनी पृथक् सत्ता के प्रति स्वाभाविक रूप से तीव्र मोह उत्पन्न हो गया था और वे इसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, लेकिन साथ ही ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने वाले इन 13 राज्यों को इस बात का पूरा भय था कि ब्रिटेन या यूरोप का अन्य कोई देश उन्हें पुन: पराधीन करने के लिए प्रयत्न कर सकता है। अत: बाहरी दबाव का सफलतापूर्वक मुकाबला करने के लिए उनका एक होना आवश्यक था। उनके सामने समस्या यह थी कि विविध राज्य अपनी पृथक्-पृथक् सत्ता बनाये रखते हुए भी एक हो जायें और ऐसा केवल संघीय व्यवस्था को अपनाकर ही किया जा सकता था। बर्न्स और पेल्टासन के शब्दों में, ''सन् 1787 में अमरीका के समक्ष संघीय व्यवस्था को अपनाने के अतिरिक्त दूसरा कोई व्यावहारिक विकल्प नहीं था।'' परिस्थितियों ने इन उपनिवेशों को संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत रहने के लिए बाध्य किया। अत: अमरीका में संघीय व्यवस्था अपनाने के निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं।

14.3.1 सुरक्षा :- संघ के निर्माण से पूर्व अमरीका में ब्रिटिश उपनिवेश के रूप में 13 राज्य विद्यमान थे। अनेक वर्षों से एक-दूसरे से पृथक् रहने के कारण वे अपनी प्रभुत्ता और स्वायत्तता को खोना नहीं चाहते थे। परन्तु बाह्य आक्रमणों का भय इतना अधिक था कि वे अपनी सुरक्षा के लिए एक होना चाहते थे। अत: अमरीकी संविधान निर्माताओं के समक्ष मूल समस्या ''विभिन्नता में एकता'' की थी। वे संघीय व्यवस्था को अपनाकर इस समस्या का समाधान कर सकते थे।

14.3.2 विशाल क्षेत्र :- अमरीका का विशाल क्षेत्र देश में संघीय व्यवस्था अपनाने के लिए उत्तरदायी रहा है। 18 वीं शताब्दी में जब संचार और आवागमन के साधनों का विकास नहीं हुआ था तो उस समय इतने विशाल क्षेत्र को एक केन्द्र के अन्तर्गत शासित करना एक कठिन कार्य था।

14.3.3 स्वतन्त्र भावनायें :- अमरीका निवासी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में अत्यधिक विश्वास करते हैं और वे इसे निरन्तर बनाये रखना चाहते हैं। एकात्मक शासन व्यवस्था शक्तियों के केन्द्रीकरण पर आधारित होने से स्वभावत: स्वतन्त्रता विरोधी है जबकि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संघात्मक शासन व्यवस्था शक्तियों के विभाजन या विकेन्द्रीकरण पर आधारित होने से स्वतन्त्रता की समर्थक है। अत: स्थानीय स्वायत्तता और स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए संविधान निर्माताओं ने एक अपेक्षाकृत निर्बल केन्द्रीय सरकार का निर्माण किया और उसकी शक्तियों को संविधान में गिनाया।

14.3.4 विकेन्द्रित सामाजिक और राजनीतिक ढाँचा :- तत्कालीन राजनीतिक दलों का स्वरूप स्थानीय और विकेन्द्रित अधिक था उनकी प्रकृति राष्ट्रीय व केन्द्रीयकृत कम थी, तथा वे केन्द्र की अपेक्षा राज्यों को शक्तिशाली बनाए रखने के पक्ष में थे, अत: यह स्वाभाविक था कि देश की शासन-व्यवस्था का रूप संघात्मक हो।

14.4 अमेरिका में संघ व्यवस्था लक्षण

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में कहीं पर भी 'संघीय' या 'संघ' शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन उसमें संघीय शासन के सभी तत्त्व नितान्त स्पष्ट है, जो संघीय तत्त्व अमेरिकी संविधान को 'आदर्श संघात्मक संविधान' सिद्ध करते हैं। ये तत्व इस प्रकार से हैं-

14.4.1 दोहरी शासन व्यवस्था :- सम्प्रभुता अविभाज्य होती है, तथापि उसकी अभिव्यक्ति एक से अधिक केन्द्रों द्वारा हो सकती है। संघात्मक शासन व्यवस्था में सम्प्रभुता की अभिव्यक्ति केन्द्रीय सरकार और इकाई-सरकारों (राज्य सरकारों) द्वारा होती है। अमेरिकी संविधान में प्रभुत्व शक्ति के दोहरे प्रयोग की व्यवस्था है- केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार अर्थात् दोनों को ही संवैधानिक मान्यता प्राप्त है और दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हैं। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में प्रभुता-शक्ति और उत्तरदायित्व का उपयोग करती हैं। कोई एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती, कोई अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण नहीं कर सकती और कोई दूसरे की सहमति के बिना शक्तियों के विभाजन में परिवर्तन नहीं कर सकती।

14.4.2 शक्तियों का विभाजन :- अमेरिका में संघ और राज्यों की सरकारों को संविधान द्वारा पूर्ण मान्यता प्राप्त है और उसके अनुसार उन्हें अलग-अलग इकाइयों के रूप में माना जाता है। संविधान में दो प्रकार की सरकारों के बीच शासन की शक्तियों के विभाजन की व्यवस्था की गई है। शक्तियों के विभाजन में अमेरिका में उस सिद्धान्त को काम में लाया गया है जिसे 'गणना व अवशेष' का सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत केन्द्रीय और इकाई सरकारों में से किसी एक की शक्तियों की गणना करके उन्हें निश्चित कर दिया जाता है और अवशिष्ट शक्तियों को दूसरे पक्ष में समझा जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में केन्द्रीय सरकार के अधिकार निश्चित कर दिए गए है और अवशिष्ट या शेष शक्तियाँ विभिन्न राज्यों को प्राप्त है। शक्तियों के विभाजन से सम्बन्धित व्यवस्था संविधान में दसवें संशोधन द्वारा की गई हैं जिसमें कहा गया है कि "वे सब शक्तियाँ जो संविधान द्वारा संयुक्त राज्य (संघ) को प्रदान न की गई हों और जिनका उसके द्वारा राज्यों के लिए निषेध न किया गया हो, क्रमश: राज्यों के लिए अथवा जनता के लिए सुरक्षित हैं।" अर्थात् अवशिष्ट शक्तियों को राज्यों के लिए सुरक्षित रखा गया है।

14.4.3 संविधान की सर्वोच्चता - संविधान के अनुच्छेद 6 की उपधारा 2 ने स्पष्ट रूप से संविधान की सर्वोपरिता प्रतिष्ठित कर दी गई है। जब कभी संघ-सरकार के अथवा किसी उप-राज्य के कानून का संविधान से विरोध उत्पन्न हो जाता है, तो संविधान को सर्वोच्च माना जाता है क्योंकि ऐसे विरोध में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम होता है। संविधान देश की सर्वोच्च विधि है।

14.4.4 स्वतन्त्र न्यायपालिका :- अमरीकी संविधान एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायालय की स्थापना करता है। न्यायालय ने, न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के माध्यम से, संविधान के अभिभावक एवं संरक्षणकर्त्ता और नागरिक अधिकारों के गारण्टीकर्त्ता के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। न्यायालय संविधान का अन्तिम व्याख्याता है और वह कानूनों, आदेशों अथवा नियमों की वैधता-अवैधता और औचित्य-अनौचित्य को निर्धारित करता है। इन्हीं अर्थों में, न्यायाधीश फ्रेंक फर्टर ने सर्वोच्च न्यायालय को "संविधान" की संज्ञा दी है, और जेम्स एम. बैक ने इसे "सतत संवैधानिक सभा" और "सन्तुलन चक्र" की संज्ञा दी है।

14.4.5 दोहरी नागरिकता :- संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में दोहरी नागरिकता को अपनाया गया है। प्रत्येक नागरिक संयुक्त राज्य अमरीका की नागरिकता के अतिरिक्त उस राज्य की नागरिकता का भी उपयोग करता है, जिसमें वह वास्तव में रहता है। उदाहरण के लिए, न्यूयार्क राज्य में रहने वाला नागरिक न्यूयार्क का नागरिक और इसके साथ ही संयुक्त राज्य अमरीका का भी नागरिक होता है।

14.4.6 संघीय व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन में इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व :- संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस के प्रथम सदन (प्रतिनिधि सभा) में प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है और इस सदन में बड़े राज्यों को अधिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है और छोटे राज्यों को कम, लेकिन द्वितीय सदन (सीनेट) में छोटी-बड़ी सभी इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। इसमें प्रत्येक इकाई के द्वारा अपने दो प्रतिनिधि भेजे जाते है। संविधान में यह भी व्यवस्था की गयी है कि सम्बन्धित राज्य की अनुमति के बिना किसी राज्य को उसे सीनेट में प्राप्त प्रतिनिधित्व से वंचित नहीं किया जा सकता है।

14.4.7 अविनाशी संघ :- अमरीकी संघ एक अविनाशी संघ है। गृह-युद्ध (1861-65) ने इस मुद्दे को हमेशा के लिए सुनिश्चित कर दिया है कि संघ के एकक उससे पृथक् नहीं हो सकते। सर्वोच्च न्यायालय ने भी 1869 में टैक्सास बनाम ह्वाइट के मुकदमे में इस बात को स्वीकार किया था कि ''अमरीकी संघ एक अविनाशी संघ है जो अविनाशी राज्यों से मिलकर बना है।''

14.5 संघीय व्यवस्था की वर्तमान स्थिति

आज अमेरिकी संघीय व्यवस्था का स्वरूप वह नहीं रहा है जो उस समय था जब 13 राज्यों ने मिलकर संघ की स्थापना की थी। उस समय संघीय सरकार को सीमित शक्तियाँ प्रदान की गई थीं और इस बात का विशेष ध्यान रखा गया था कि केन्द्र कहीं अत्यधिक शक्ति-सम्पन्न न हो जाए। परन्तु संविधान निर्माताओं की यह आकांक्षा भविष्य में फलीभूत न हो सकी। देश की बदलती हुई आन्तरिक दशाओं और देश के बढ़ते हुए वैदेशिक सम्बन्धों के साथ-साथ केन्द्र की स्थिति अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होती गई और आज तो यह प्रतीत होने लगा है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में एक केन्द्रीभूत प्रजातन्त्र स्थापित हो गया है। जिस तेजी से संघीय सरकार अधिकाधिक शक्तिशाली होती जा रही है, उसे देखते हुए लियोनार्ड ने तो यहाँ तक कह दिया है कि ''आगामी चौथाई शताब्दी में राज्य केवल खोखले बन जाएँगे और वे मुख्यत: संघीय विभागों के ग्रामीण जिलों के रूप में कार्य करेंगे तथा अपने भरण-पोषण के लिए संघीय कोष पर निर्भर रहेंगे।'' केन्द्र की बढ़ती हुई शक्तियों के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास, नियोजन पद्धति, आपातकालीन स्थिति, अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध तथा राष्ट्रपति का नेतृत्व मुख्य रुप से उत्तरदायी रहे हैं।

14.6 सारांश

संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र और राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों का रूप परिवर्तित होता रहता है और वस्तुस्थिति यह है कि अमरीकी संघ उस स्थिति से गुजर चुका है, जिसमें केन्द्र और इकाइयों को एक-दूसरे का प्रतिद्वन्द्वी समझा जाता था। वस्तुत: अमरीकी संघ में 'सहकारी संघ व्यवस्था' के युग का सूत्रपात हुआ है। राज्य आज की सक्रिय राजनीति के केन्द्र हैं। मुनरों के शब्दों में, ''राज्य अब भी वे धुरी हैं जिनके आस पास अमेरिका का सम्पूर्ण राजनीतिक चक्र घूमता है।'' किन्तु केन्द्रीकरण के कारण संघीय सरकार 'राष्ट्रीय सरकार' बन गई है। अमरीकी संघ में शक्ति सन्तुलन केन्द्र की तरफ झुक गया है। वर्तमान मे राज्यों की तुलना में केन्द्र की स्थिति अत्यन्त शक्तिशाली बन गई है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका की संघ व्यवस्था की व्यावहारिक स्थिति का परीक्षण करें।
2. ''संयुक्त राज्य अमेरिका की सच्ची संघीय सरकार के अन्तर्गत अब हम नहीं रहते।'' इस कथन की समीक्षा करें।
3. अमरीकी संघात्मक व्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय व्यवस्था के अपनाए जाने के कारण बताइए।
2. संघ-राज्य के कौन-कौन से तत्त्व हैं ? वे तत्व अमेरिकी संविधान में कहाँ तक विद्यामन हैं ?
3. अमरीकी संघ में केन्द्रीयकरण की वृद्धि के कारणों का वर्णन करों।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अमरीकी संघ में अवशिष्ट शक्तियाँ किसे प्रदान की गई है ?
2. प्रारम्भ में कितने राज्यों के मेल से 'संयुक्त राज्य अमेरिका' का निर्माण हुआ ?
3. अमेरिका में संघ प्रणाली अपनाये जाने के दो प्रमुख कारण बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-15
शक्ति पृथक्करण तथा नियंत्रण एवं संतुलन का सिद्धान्त

संरचना

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का अर्थ

15.3 अमरीकी संविधान में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त

15.4 अमेरिका के संविधान में नियन्त्रण और सन्तुलन का सिद्धान्त

15.4.1 कांग्रेस की शक्ति को नियन्त्रित करने की व्यवस्था

15.4.2 राष्ट्रपति को नियन्त्रित करने की व्यवस्था

15.4.3 सर्वोच्च न्यायालय को नियन्त्रित करने की व्यवस्था

15.5 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत अमेरिका में प्रचलित शक्ति पृथक्करण और नियन्त्रण एवं सन्तुलन सिद्धान्त का वर्णन किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की व्यवहार में स्थिति की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- नियन्त्रण और सन्तुलन की प्रणाली को समझ सकेंगे।
- अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था पर इनके प्रभावों को जान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

शासन की शक्तियों को अर्थात् व्यवस्थापिका कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों को संयुक्त भी रखा जा सकता है और एक-दूसरे से पृथक् भी रखा जा सकता है। इंग्लैण्ड में, जहाँ संसदीय शासन प्रणाली है, शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया। यहाँ कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में निरन्तर घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहता है। दूसरी ओर अमेरिका में अध्याक्षात्मक शासन प्रणाली का प्रचलन है, शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को अपनाया गया है। यहाँ शासन की शक्तियों को पृथक्-पृथक् शासनांगों में ही विभक्त नहीं किया गया, बल्कि उन्हें एक-दूसरे से अधिक से अधिक स्वतन्त्र रखने का प्रयास भी किया गया है।

अमरीका के संविधान निर्माता स्वतन्त्रता और सीमित शासन के कायल थे। वे इन्हें हर स्थिति में सुरक्षित एवं सुनिश्चित् करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि शक्ति मनुष्य को भ्रष्ट करती है और निरपेक्ष शक्ति उसे पूर्ण रूप से भ्रष्ट कर देती है। अत: अमरीका के संविधान निर्माता, शक्तियों के केन्द्रीकरण के स्थान पर शक्तियों का पृथक्करण चाहते थे। फिर भी संविधान-निर्माता यह जानते थे कि यदि सरकार के एक अंग पर दूसरे अंग का थोड़ा-सा भी नियन्त्रण स्थापित न किया गया तो सम्भव है कि सरकार का कोई भी अंग अपने क्षेत्र में निरंकुश हो जाए और उनमें कोई पारस्परिक सहयोग न रहे। इसलिए शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त के साथ-साथ 'नियन्त्रण और सन्तुलन' की पद्धति को जोड़ दिया गया।

15.2 शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का अर्थ

सरकार के तीन अंग होते हैं-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। सरकार के इन तीनों अंगों का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा होना चाहिए ? यह प्रश्न राजनीति विज्ञान में अत्यन्त विवादास्पद रहा है। इस सम्बन्ध में समय-समय पर जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया उनमें माण्टेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित 'शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

यह सिद्धान्त इस विचार पर आधारित है कि सभी शक्तियों का एक व्यक्ति में केन्द्रित हो जाने से व्यक्ति भ्रष्ट हो जाते है और अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करने लगता हैं। इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का विचार है कि व्यवस्थापिका का काम कानून बनाना होना चाहिए, कार्यपालिका उन कानूनों को क्रियान्वित करे तथा न्यायपालिका उन कानूनों के अनुसार निर्णय करे। माण्टेस्क्यु ने इस बात पर बल दिया है कि ''सरकार के तीन अंगों में से प्रत्येक अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र होना चाहिए, उसे अपने कार्यक्षेत्र तक ही सीमित रहना चाहिए और उसके द्वारा दूसरे अंग के कार्य को प्रभावित करने या उस पर नियन्त्रण स्थापित करने की चेष्टा नहीं की जानी चाहिए।''

15.3 अमरीकी संविधान में शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त

अमरीका का संविधान औपचारिक रूप से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की घोषणा नहीं करता और न ही किसी स्थान पर उसे परिभाषित या सुनिश्चित करता है। लेकिन यह सिद्धान्त अमरीकी संविधान की मूल भावना है। अमरीकी संविधान में ऐसी व्यवस्था रखी गई है कि सरकार के तीनों अंग अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से अपना-अपना कार्य करें और एक-दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप न करें। व्यवस्थापिका कानून बनाए, कार्यपालिका उन्हें कार्यान्वित करे और न्यायपालिका यह देखे कि संविधान के विरूद्ध कोई कार्य न किया जाए। संविधान के प्रथम तीन अनुच्छेदों में शासन शक्तियों का किया गया कठोर विभाजन इसकी व्यापकता को स्पष्ट कर देता है। अनुच्छेद 1, खण्ड 1 में कहा गया है कि ''व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियाँ कांग्रेस में निहित होगी।'' अनुच्छेद 2, खण्ड 1 में कहा गया है कि ''कार्यपालिका-शक्ति संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति में निहित होगी।'' अनुच्छेद 3, खण्ड 1 में कहा गया है कि ''न्याय सम्बन्धी शक्ति सर्वोच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालयों में निहित होगी।''

इस प्रकार उक्त तीन धाराओं में की गई व्यवस्था के अनुसार अप्रत्यक्ष रूप से माण्टेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्ति - पृथक्करण के सिद्धान्त को अमरीकी संविधान में स्थान दिया गया है तथा व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। संविधान निर्माता चाहते थे कि न केवल सिद्धान्त में, वरन् व्यवहार में भी सरकार के इन तीन अंगों की प्रकृति अलग-अलग होनी चाहिए तथा उनके द्वारा अपने कार्यों का सम्पादन एक-दूसरे से अधिकाधिक स्वतन्त्र रहते हुए किया जाना चाहिए। अत: अमेरिका के संविधान में शासन के तीनों विभागों को पृथक्-पृथक् ही नहीं कर दिया गया है, वरन् उन्हें अधिक-से-अधिक स्वतन्त्र करने की व्यवस्था भी की गई है। राष्ट्रपति जनता का प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रतिनिधि है और उसे अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए कांग्रेस पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। कांग्रेस उसे उसके पद से साधारणत: नहीं हटा सकती, क्योंकि ऐसा करने के लिए कांग्रेस को उसके विरूद्ध महाभियोग पारित करना पड़ता है जो अत्यन्त दुष्कर कार्य है। कांग्रेस की अपनी स्थिति भी स्वतन्त्र है, क्योंकि राष्ट्रपति उसका विघटन नहीं कर सकता। न्यायपालिका की स्थिति भी स्वतन्त्र है क्योंकि, यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या का निर्धारण कांग्रेस करती है तथा उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है, पर एक बार पद धारण करने के बाद न्यायाधीशों को महाभियोग की दुष्कर प्रक्रिया का सहारा लिए बिना हटाया नहीं जा सकता। अत: अमरीकी संविधान में शासन के विभिन्न अंग पृथक्-पृथक् ही नहीं है, वरन् वे परस्पर स्वतन्त्र भी है।

15.4 अमेरिका के संविधान में 'नियन्त्रण और सन्तुलन' का सिद्धान्त

अमेरिका के संविधान में शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त अपनाया गया है। लेकिन इसके साथ ही वे शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त की सीमाओं से भी परिचित थे। शक्ति-पृथक्करण के सबसे प्रमुख समर्थक मेडीसन ने अपने पत्र 'Hederalist' फेडरलिस्ट में लिखा था कि ''शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त का यह आशय नहीं कि व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध न रहे।'' उन्होंने स्पष्ट कहा कि ''जब तक ये तीनों अंग एक-दूसरे से सम्बद्ध न किए जाएँगे और इस तरह से नहीं मिला दिए जाएँगे कि एक का नियन्त्रण दूसरे पर स्थापित हो जाए, तब तक स्वतन्त्र सरकार की स्थापना कदापि नहीं हो सकती है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अमरीकी संविधान–निर्माताओं द्वारा यह भी सोचा गया है कि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को पूरी–पूरी सीमा तक अपनाने पर शासन का प्रत्येक अंग अपने निश्चित क्षेत्र में असीमित शक्तियाँ प्राप्त कर शक्ति का दुरुपयोग कर सकता है। अत: उनके द्वारा यह निश्चित किया गया कि तीनों अगों की शक्तियाँ अलग–अलग करने के साथ–साथ ऐसी व्यवस्था कर दी जाय कि एक अंग दूसरे अंग को नियन्त्रित करता रहे और ऐसा शक्ति सन्तुलन स्थापित कर दिया जाय कि कोई भी अंग बहुत अधिक शक्तिशाली न हो सके। इस प्रकार 'शक्ति पर शक्ति का नियन्त्रण' की अवधारणा का प्रतिपादन किया गया और शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त के सहायक रूप में एवं उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने हेतु नियन्त्रण और सन्तुलन के सिद्धान्त को अपनाया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शासन के विभिन्न अंगों को एक–दूसरे के क्षेत्राधिकार में कुछ शक्ति प्रदान की गई है। इस प्रकार सरकार के तीनों अंगों के सम्बन्ध में नियन्त्रण तथा सन्तुलन की व्यवस्था का अध्ययन निम्नलिखित प्रकार है:–

15.4.1 कांग्रेस की शक्ति को नियन्त्रित करने की व्यवस्था– संविधान सारी विधायी शक्ति कांग्रेस को प्रदान करता है। लेकिन कांग्रेस की इस शक्ति पर राष्ट्रपति और सर्वोच्च न्यायालय का प्रतिबन्ध है। कांग्रेस द्वारा पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति को 'विलम्बकारी निषेधाधिकार' और 'जेबी निषेधाधिकार' प्राप्त होता है। राष्ट्रपति को प्राप्त निषेधाधिकार की यह शक्ति कांग्रेस की कानून निर्माण की शक्ति पर एक प्रभावी नियन्त्रण है। राष्ट्रपति विधेयकों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। पर साथ–ही–साथ कांग्रेस को भी यह अधिकार है कि राष्ट्रपति द्वारा अस्वीकृत इस प्रकार के विधेयक को पुन: पारित कर दे। ऐसी दशा में कांग्रेस को ऐसे विधेयक को 2/3 बहुमत से पारित करना पड़ता है और तब राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति अवश्य देनी पड़ती है। राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त दूसरा वीटो 'जेबी निषेधाधिकार' है। इसका प्रयोग राष्ट्रपति कांग्रेस के अधिवेशन के अन्तिम 10 दिनों में ही कर सकता है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति किसी विधेयक को 10 दिन में स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकता है। इस प्रकार कांग्रेस के अधिवेशन के अंतिम 10 दिनों में जिन विधेयकों को राष्ट्रपति जेब में रख ले वे स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं।

कांग्रेस की कानून निर्माण की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय से ही प्रतिबन्धित होती है। संविधान की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा ऐसे कानूनों को अवैधानिक घोषित किया जा सकता है, जो उनके विचार में संविधान के प्रतिकूल हैं। इस प्रकार कांग्रेस को कानून निर्माण की शक्ति प्राप्त है, लेकिन इस सम्बन्ध में उसके द्वारा मनमानी नहीं की जा सकती है।

15.4.2 राष्ट्रपति को नियन्त्रित करने की व्यवस्था – राष्ट्रपति देश की कार्यपालिका का प्रधान है, लेकिन वह प्रशासनिक क्षेत्र में मनमानी करते हुए तानाशाह नहीं बन सकता। कांग्रेस द्वारा अनेक रूपों में राष्ट्रपति की शक्ति पर अंकुश रखा जाता है। सर्वप्रथम राष्ट्र के वित्त पर कांग्रेस का अधिकार है और कांग्रेस राष्ट्रपति द्वारा चाहे गये धन की स्वीकृति देने से इन्कार कर राष्ट्रपति की शक्ति पर अंकुश लगा सकती है। व्यवहार में, अनेक बार कांग्रेस ने अपनी इस शक्ति का प्रभावशाली रूप से प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति सीनेट की स्वीकृति के बिना नियुक्तियाँ नहीं कर सकता। राष्ट्रपति के द्वारा की गई नियुक्ति उसी समय लागू हो सकती है जबकि सीनेट के द्वारा उसकी स्वीकृति प्राप्त हो जाए। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन के अथक प्रयासों से वर्साय की सन्धि सम्पादित की गई तथा राष्ट्रसंघ की भी स्थापना की गई। परन्तु अमेरिका की सीनेट ने दोनों पर अपनी स्वीकृति नहीं दी। फलत: अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बन सका। इस प्रकार राष्ट्रपति पर कांग्रेस का नियन्त्रण रहता है।

15.4.3 सर्वोच्च न्यायालय को नियन्त्रित करने की व्यवस्था - संविधान सारी न्यायिक शक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान करता है। यह शासन का तीसरा अंग है। सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति तथा कांग्रेस के द्वारा बनाए हुए किसी भी कानून को अवैध घोषित कर सकता है, यदि वह संविधान के विरूद्ध हो। परन्तु कांग्रेस और राष्ट्रपति भी न्यायालय को अनेक तरह से नियन्त्रित करते है। कांग्रेस कानून बनाकर न्यायाधीशों की संख्या घटा या बढ़ा सकती है। न्यायाधीशों को कांग्रेस महाभियोग द्वारा हटा सकती है। कांग्रेस न्यायाधीशों के वेतन तथा भत्तों को कानून द्वारा घटा या बढ़ा सकती है। यदि सर्वोच्च न्यायालय कोई अनुचित निर्णय दे दे तो कांग्रेस संविधान में संशोधन करके उसे उचित घोषित कर लागू कर सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि न्यायापालिका द्वारा दण्डित किसी व्यक्ति को क्षमा कर दे, उसका दण्ड कम कर दे अथवा दण्ड स्थगित कर दे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

15.5 सारांश

इस प्रकार अमेरिकी संविधान शासन की शक्तियों के प्रयोग के लिए भिन्न संस्थाओं (शासनांगों) एवं भिन्न-भिन्न पदाधिकारियों की व्यवस्था करता है। शासन का प्रत्येक अंग संवैधानिक और राजनीतिक दृष्टि से दूसरे दो अंगों से स्वतन्त्र है। शासन का प्रत्येक अंग अपनी शक्तियों को सीधे संविधान से प्राप्त करता है, किसी दूसरे अंग से प्राप्त नहीं करता। कोई एक अंग न तो पूर्ण शासन की शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और न किसी दूसरे अंग की शक्तियों का प्रयोग करता है। शासनांगों की एक-दूसरे से यह स्वतन्त्रता ही शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का हृदय है। अत: शक्तियों के पृथक्करण के साथ ही नियन्त्रण एवं सन्तुलन की व्यवस्था शासनांगों को जोड़ने और मिलाने वाला यन्त्र है। जिसे अमरीकी राजनीतिक जीवन का आदर्श माना जाता है। नियन्त्रण तथा सन्तुलन के सिद्धान्त के कारण शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त की कमजोरियों तथा कमियों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। इससे तीनों संस्थाओं में संस्थागत सन्तुलन बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है। इससे तीनों संस्थाओं में संस्थागत सन्तुलन बनाये रखने का सफल प्रयास किया गया है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''अमरीकी संविधान शक्ति पृथक्करण एवं नियन्त्रण और सन्तुलन के सिद्धान्तों पर आधारित है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
2. शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त से आपका क्या तात्पर्य है? नियन्त्रण एवं सन्तुलन की व्यवस्था के द्वारा इसे किस प्रकार अमरीका में व्यवहारिक बनाया गया है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अमेरिकी संविधान में शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त से क्या तात्पर्य है? यह सिद्धान्त माण्टेस्क्यू के सिद्धान्त से कहाँ तक मेल खाता है।
2. अमेरिकी संविधान में कांग्रेस की शक्ति को किस प्रकार नियन्त्रित किया गया है? स्पष्ट करो।

अतिलघुतरात्मक प्रश्न

1. अमरीकी सीनेट, राष्ट्रपति को कैसे नियंत्रित करती है?
2. अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय अपने किस अधिकार द्वारा कांग्रेस एवं राष्ट्रपति को नियंत्रित करता है?
3. अमरीकी राष्ट्रपति अपनी किस शक्ति द्वारा कांग्रेस को नियंत्रित करता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-16
काँग्रेस

संरचना

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 प्रतिनिधि सभा

16.2.1 प्रतिनिधि सदन की रचना

16.2.2 सदस्यों की योग्यताएँ

16.2.3 सदस्यों के विशेषाधिकार

16.2.4 अधिवेशन

16.2.5 वेतन और भत्ते

16.2.6 गणपूर्ति

16.2.7 पदाधिकारी

16.3 प्रतिनिधि सभा की शक्तियाँ

16.3.1 विधायी शक्तियाँ

16.3.2 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ

16.3.3 निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ

16.3.4 न्यायिक शक्तियाँ

16.4 प्रतिनिधि सभा की दुर्बलता के कारण

16.4.1 अमरीका की अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली

16.4.2 विधान और वित्त के क्षेत्र में निर्बल

16.4.3 अल्पावधि

16.4.4 योग्य एवं अनुभवी सदस्यों का अभाव

16.4.5 प्रतिनिधि सभा में सर्वमान्य नेता का अभाव

16.4.6 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों में कमजोर स्थिति

16.4.7 विशाल आकार

16.4.8 कार्यविधि के नियम

16.5 सीनेट

16.5.1 सीनेट की रचना

16.5.2 सीनेट के सदस्यों के लिए योग्यताएँ

16.5.3 सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन

16.5.4. सीनेट के सदस्यों का कार्यकाल

16.5.5 वेतन भत्ते और उन्मुक्तियां

16.5.6 अधिवेशन

16.5.7 सीनेट का सभापति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.6 सीनेट की शक्तियाँ

16.6.1 विधायी शक्तियाँ

16.6.2 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ

16.6.3 न्यायिक शक्तियाँ

16.6.4 निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ

16.7 सीनेट का महत्त्व

16.7.1 संविधान निर्माताओं की इच्छा

16.7.2 प्रतिष्ठित सदन और प्रभावशाली मंच

16.7.3 संसदात्मक शासन प्रणाली का अभाव

16.7.4 सीनेट का लघु आकार

16.7.5 लम्बा कार्यकाल

16.7.6 प्रत्यक्ष निर्वाचन

16.7.7 समान विधायी एवं वित्तीय शक्तियाँ

16.7.8 सीनेट में वाद-विवाद की स्वतन्त्रता

16.7.9 दलीय नियन्त्रण का अभाव

16.7.10 कार्यकारिणी एवं न्यायिक शक्तियाँ

16.8 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत अमरीकी कांग्रेस के प्रतिनिधि सदन एवं सीनेट के संगठन का उल्लेख किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप प्रतिनिधि सदन की शक्तियाँ और विश्व के दूसरे शक्तिशली सदन सीनेट की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- अमरीकी प्रतिनिधि सदन की दुर्बलता के कारणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विश्व के दूसरे शक्तिशाली सदन के रूप में सीनेट को समझ सकेंगे।
- वर्तमान में सीनेट का क्या महत्त्व है, स्पष्ट कर सकेंगे।
- इन दोनों की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

1787 ई. के फिलाडेल्फिया सम्मेलन में पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात् अमरीकी संविधान निर्माता इस बात पर सहमत हुए कि अमरीका में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का निर्माण किया जाएगा। संविधान के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है कि, ''इसके अन्तर्गत प्रदान की गई व्यवस्थापन सम्बन्धी समस्त शक्तियाँ संयुक्त राज्य की एक कांग्रेस में निहित होगी जिसका निर्माण एक सीनेट व प्रतिनिधि सभा से मिलकर होगा।'' अत: द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के सिद्धान्त पर आम सहमति होने के उपरान्त भी एक गम्भीर समस्या यह उत्पन्न हो गई कि दोनों सदनों के संगठन का आधार क्या हो ? अन्त में इस बात पर सहमति हो गई कि निचले सदन अर्थात् प्रतिनिधि सभा का निर्माण जनसंख्या के आधार पर हो तथा उच्च सदन अर्थात् सीनेट का निर्माण संघीय इकाइयों की समानता के आधार पर हो। अमरीकी कांग्रेस में यदि सीनेट संघीय सदन है तो प्रतिनिधि सभा जनता का सदन है, जो उसका प्रतिनिधित्व करती है।

16.2 प्रतिनिधि सभा

अमरीकी कांग्रेस के दोनों ही सदन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं, लेकिन कांग्रेस का लोकप्रिय सदन प्रतिनिधि सभा ही है। पैटेर्सन के अनुसार ''प्रतिनिधि सभा लघु रूप में अमेरीकी राष्ट्र है। यह अमेरिकी जीवन की सुन्दर तस्वीर है जिसमें वहाँ की

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा स्वाभाविक विभिन्नताओं, उग्रताओं तथा मध्यमावस्थाओं का पूर्ण चित्रण है। इसके सदस्य विभिन्न राज्यों से जनसंख्या के आधार पर चुने जाने के कारण इसमें अमेरिकी जीवन की विविधता दिखाई देती है।'' यह एक ऐसा प्रथम सदन है जो विश्व के अन्य सब प्रथम सदनों की तुलना में कम शक्तिशाली है।

16.2.1 प्रतिनिधि-सदन की रचना- प्रतिनिधि सदन की रचना के विषय में संविधान में कहा गया है कि प्रतिनिधि सभा का प्रत्येक प्रतिनिधि कम-से-कम तीस हजार लोगों का प्रतिनिधित्व करेगा और प्रत्येक राज्य से कम-से-कम एक प्रतिनिधि अवश्य होगा, चाहे उसकी जनसंख्या तीस हजार से कम भी हो। लेकिन वर्तमान व्यवस्था के अनुसार एक प्रतिनिधि लगभग 5 लाख मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रारम्भ में प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों की संख्या 65 थी, किन्तु बाद में जनसंख्या के अनुसार बढ़ती गई। सन् 1962 से प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की संख्या स्थायी रूप से 435 निश्चित कर दी गयी हैं।

16.2.2 सदस्यों की योग्यताऐं- प्रतिनिधि सदन का सदस्य चुने जाने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ प्रत्याशी में होनी आवश्यक हैं-

- वह 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
- वह कम से कम 7 वर्ष से अमेरिका का नागरिक हो।
- वह उस राज्य का निवासी हो जहाँ से वह निर्वाचन लड़ना चाहता है।
- वह अमरीका मे नागरिक या सैनिक पदाधिकारी न हो।

16.2.3 सदस्यों के विशेषाधिकार- प्रतिनिधि सभा के सदस्यों को सदन में भाषण देने की स्वतन्त्रता है उन्हें अधिवेशन के दिनों में किसी दीवानी अभियोग के कारण गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। सदस्यों को नि:शुल्क डाक-तार तथा टेलीफोन की सुविधा भी उपलब्ध है।

16.2.4 अधिवेशन- अमरीकी संविधान के बीसवें संशोधन के अनुसार प्रतिनिधि सदन का अधिवेशन सीनेट के अधिवेशन के साथ 3 जनवरी को शुरू होता है। कांग्रेस के दोनों सदनों का अधिवेशन उस समय तक चलता रहता है, जब तक कि उसके सदस्य अधिवेशन के स्थगन के लिए मत न दें। दोनों सदनों का अधिवेशन एक साथ स्थगित होता है।

16.2.5 वेतन और भत्ते- प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को सीनेट के सदस्यों के समान वेतन और भत्ते प्राप्त है। वर्तमान में प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को 30 हजार डालर वार्षिक वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त क्लर्क, स्टेशनरी के लिए भत्ते मिलते है।

16.2.6 गणपूर्ति- प्रतिनिधि सदन की कार्यवाही के लिए कुल सदस्यों के बहुमत अर्थात् 218 सदस्यों की उपस्थिति की आवश्यकता होती है।

16.2.7 पदाधिकारी- प्रतिनिधि सदन का प्रमुख पदाधिकारी अध्यक्ष (स्पीकर) होता है। इसका निर्वाचन सदन द्वारा प्रथम सत्र में कर लिया जाता है। वास्तव में सदन में बहुमत प्राप्त दल इसका नामांकन करता है और सदन इसे औपचारिक रूप से निर्वाचित कर लेता है। प्रतिनिधि सदन के स्पीकर का पद एक दलीय पद है। उसका निर्वाचन निर्विरोध नहीं होता। उसका निर्वाचन ब्रिटेन की भाँति विपक्ष की सहमति से सर्वसम्मति के आधार पर नहीं होता। वह सदन में एक दलीय व्यक्ति की भाँति व्यवहार करता है। अर्थात् वह सदन में आरम्भ से अन्त तक एक दलीय व्यक्ति होता है।

16.3 प्रतिनिधि सभा की शक्तियाँ

प्रतिनिधि सभा अमरीकी कांग्रेस का निम्न सदन है, फिर भी इसकी शक्तियाँ उतनी व्यापक नहीं है जितनी सीनेट की है। कतिपय क्षेत्रों में यह सीनेट के समतुल्य शक्तियों का प्रयोग करती है, किन्तु अनेक ऐसी महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ, जो सीनेट को प्राप्त है, वे इसके पास नहीं है। प्रतिनिधि सभा के कार्यों एवं शक्तियों का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.3.1 विधायी शक्तियाँ- इस क्षेत्र में सीनेट एवं प्रतिनिधि सभा को समान शक्तियाँ प्राप्त है, केवल वित्त-विधेयकों का प्रस्तुतीकरण प्रतिनिधि सभा में ही हो सकता है, सीनेट में नहीं। इस सभा में सभी प्रकार के विधेयक प्रस्तुत किए जा सकते हैं और कोई भी विधेयक तब तक कांग्रेस द्वारा पारित नहीं समझा जा सकता जब तक सीनेट के समान ही प्रतिनिधि सभा की सहमति भी उस पर प्राप्त न हो जाए। दोनों सदनों में यदि किसी विधेयक पर मतभेद हो जाता है तो उसका निर्णय दोनों सदनों की एक सम्मिलित समिति द्वारा किया जाता है और यदि इसमें कोई समझौता नहीं हो पाता तो अन्त में सीनेट की ही विजय होती है।

16.3.2 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियां- प्रतिनिधि सदन की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ नाममात्र की हैं। अमरीका में अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था होने से वहाँ कार्यपालिका कांग्रेस से अनुपस्थित रहती है। कार्यपालिका का निर्माण न तो कांग्रेस से होता है और न वह उसके प्रति उत्तरदायी होती है। कार्यपालिका और कांग्रेस दोनों का कार्यकाल निश्चित होता है। सन्धियों के पुष्टिकरण, राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों की स्वीकृति एवं विविध विभागों की जाँच-पड़ताल आदि से ही सम्बन्धित कार्यवाही शक्तियाँ केवल सीनेट को प्राप्त है, प्रतिनिधि सभा को नहीं। प्रतिनिधि सदन कार्यपालिका शक्ति में केवल दो रूपों से सम्बन्धित है-प्रथम, युद्ध की घोषणा करने में वह सीनेट के साथ मिलकर इस शक्ति का प्रयोग करती है। दूसरे वह समितियों द्वारा प्रशासन के कार्यों की जाँच करवा सकती है।

16.3.3 निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ- कुछ विशेष परिस्थितियों में यदि राष्ट्रपति पद के लिए किसी उम्मीदवार को निर्वाचक मण्डल के मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता तो प्रतिनिधि सदन प्रथम तीन उम्मीदवारों में से किसी एक को राष्ट्रपति पद के लिए चुन लेता है। इस स्थिति में प्रतिनिधि सदन के सदस्य राज्यों के आधार पर मतदान करते हैं और सदन में किसी राज्य के चाहे कितने ही प्रतिनिधि क्यों न हों उनका एक ही मत होता है। बहुमत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को राष्ट्रपति चुन लिया जाता है।

16.3.4 न्यायिक शक्तियाँ- न्यायिक क्षेत्र में प्रतिनिधि सभा को केवल महाभियोग से सम्बन्धित अधिकार प्राप्त है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीश तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों पर महाभियोग लगाने की एकमात्र शक्ति प्रतिनिधि सदन के पास है। वह इन पर महाभियोग का आरोप ही लगा सकती है, परन्तु शेष सब कुछ अर्थात् अभियोग को सुनने, अभियोग की जाँच करने एवं उस पर निर्णय देने का अधिकार सीनेट को प्राप्त है।

16.4 प्रतिनिधि सभा की दुर्बलता के कारण

प्रतिनिधि सदन न केवल सीनेट से निर्बल या कमजोर है बल्कि वह विश्व की संसदों के निम्न सदनों की तुलना में भी निर्बल और प्रभावहीन सदन है। उसके पास ब्रिटिश कॉमन सभा या अमरीकी सीनेट की भाँति कार्यपालिका को नियन्त्रित करने की शक्ति नहीं, विधान और वित्त के क्षेत्र में उसकी स्थिति ब्रिटिश कॉमन सभा की भाँति अन्तिम नहीं है। इसकी दुर्बलता के निम्नलिखित कारण है-

16.4.1 अमरीका की अध्यक्षात्मक व्यवस्था- संसदीय व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यपालिका, व्यवस्थापिका में से ली जाती है और वह व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी होती है, लेकिन अमरीका में अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था होने के कारण कार्यपालिका न तो व्यवस्थापिका में से ली जाती है और न वह उसके प्रति उत्तरदायी ही होती है। परिणामस्वरूप कार्यपालिका को नियन्त्रित करने का अधिकार व्यवस्थापिका को प्राप्त नहीं होता है।

16.4.2 विधान और वित्त के क्षेत्र में निर्बल- भारत और ब्रिटेन के संविधान में कानून-निर्माण के क्षेत्र में प्रथम सदन को द्वितीय सदन की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गयी है, किन्तु अमरीका में सीनेट को हर प्रकार से प्रतिनिधि सभा के समान ही स्थिति प्राप्त है। यदि किसी विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद को सुलझाने के लिए बुलाई गई दोनों सदनों की समिति में कोई समझौता नहीं हो पाता, तो सीनेट की विजय होती है। वित्त विधेयकों में भी सीनेट अपने संशोधन करने के अधिकार द्वारा किसी भी वित्त विधेयक में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर सकती है अथवा एक प्रकार से नया प्रस्ताव भी रख सकती है। इस प्रकार वित्तीय क्षेत्र में भी सीनेट अधिक शक्तिशली हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.4.3 अल्पावधि– प्रतिनिधि सदन का कार्यकाल केवल 2 वर्ष है जो विश्व की संसदों के निम्न सदनों के कार्यकाल में सबसे कम है। छोटी कार्यावधि के परिणामस्वरूप अधिकांश प्रतिनिधि भावी निर्वाचन की चिन्ता में व्यस्त रहते हैं और इस कारण से सदन प्रभावपूर्ण तरीके से कार्य नहीं कर पाता।

16.4.4 योग्य एवं अनुभवी सदस्यों का अभाव– अल्पावधि, बड़ा आकार और कार्यप्रणाली की सीमाओं के कारण राष्ट्र के योग्य, अनुभवी, कुशल एवं महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति प्रतिनिधि सदन के सदस्य बनना पसन्द नहीं करते। वे सीनेट की लम्बी अवधि, छोटे आकार और कार्यप्रणाली की सरलता से प्रभावित होते हैं। अत: वे सीनेट का सदस्य बनना पसन्द करते हैं।

16.4.5 प्रतिनिधि सभा में सर्वमान्य नेता का अभाव– प्रतिनिधि सभा में ऐसे सर्वमान्य नेता का अभाव होता है जो सदन के समक्ष राष्ट्रीय नीति की रूपरेखा प्रस्तुत कर सके और विधायी प्रस्ताव उसके सम्मुख रख सके। अधिकृत नेता के अभाव में प्रतिनिधि सभा की शक्तियाँ बहुत कम हो जाती है।

16.4.6 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों में कमजोर स्थिति– भारत, ब्रिटेन, जापान आदि देशों में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होती है और यह तथ्य द्वितीय सदन की तुलना में प्रथम सदन को बहुत अधिक शक्तिशाली बना देता है, लेकिन अमेरिका में राष्ट्रपति पर नियन्त्रण की शक्ति सीनेट को प्राप्त है, प्रतिनिधि सभा को नहीं और इस बात ने सीनेट की तुलना में प्रतिनिधि सभा की स्थिति को बहुत निर्बल कर दिया है।

16.4.7 विशाल आकार– प्रतिनिधि सभा एक विशाल सदन है, जिसके 435 सदस्य होते है, वहाँ राजनीतिक दलों की चालें इतनी अधिक काम करती हैं कि उन पर नियन्त्रण करना और उन पर आवश्यक अनुशासन स्थापित करना कठिन हो जाता है। इसके विपरीत सीनेट एक छोटा सदन है, जिनमें कुल 100 सदस्य होते हैं। ये सदस्य अनुभवी,योग्य और शासन के कार्यों को समझने वाले होते हैं।

16.4.8 कार्य विधि के नियम– प्रतिनिधि सभा के कार्य विधि के नियम भी उसे दुर्बल बनाते हैं। सीनेटरों की अपेक्षा प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की भाषण की स्वतन्त्रता अत्यन्त सीमित है। फिर शक्तिशाली समितियों का अस्तित्व भी इस सदन को कमजोर एवं प्रभावहीन बनाता है। सदन के अधिकांश कार्य समितियों द्वारा ही सम्पादित होते हैं। प्रतिनिधि सभा अधिकांशत: समितियों के निर्णय पर केवल मुहर लगाती है।

उपर्युक्त सभी करणों से प्रतिनिधि सभा न केवल सीनेट की अपेक्षा कम शक्तिशाली है, अपितु विश्व के अन्य निचले सदनों से भी कम प्रभावपूर्ण है। अमेरिका में सीनेट का अद्वितीय अस्तित्व है और संविधान द्वारा उसे इतनी अधिक शक्तियाँ प्राप्त है कि प्रतिनिधि सभा उसके सामने लगभग महत्त्वहीन रह गई है। पर यह समझ लेना भ्रामक होगा कि प्रतिनिधि सभा का अमेरिका के शासन नियन्त्रण में कोई प्रभाव नहीं है। वस्तुत: प्रतिनिधि सभा ही जनता की सही रूप में प्रतिनिधि संस्था है और लोकसभा की प्रतीक है। व्यवस्थापन का कार्य, बजट-निर्माण और युद्ध की घोषणा की स्वीकृति आदि से सम्बन्धित उसके प्रमुख कार्यों के महत्त्व को कम नहीं आँका जा सकता। संयुक्तराज्य अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था में इस सदन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

16.5 सीनेट

सीनेट अमरीकी कांग्रेस का द्वितीय सदन या उच्च सदन है। यह अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था का प्रमुख केन्द्र बिन्दु है। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य था कि सीनेट केवल एक द्वितीय सदन ही नहीं होगी, न वह कांग्रेस का एक समस्तरीय सदन होगी, बल्कि वह ''समूची संघीय व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी'' होगी। इसी उद्देश्य से उन्होंने सीनेट को महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट शक्तियाँ प्रदान की। ब्रोगन ने लिखा है, ''सीनेट एक ऐसी संस्था है जो कभी नहीं मरती है। राष्ट्रपति आते है और जाते हैं, दो वर्ष के बाद प्रतिनिधि सदन समाप्त हो जाता है परन्तु सीनेट बनी रहती है।'' वस्तुत: सीनेट अमरीकी प्रशासन तन्त्र की धुरी है। यदि उसे निकाल दिया जाए तो अमरीकी शासन व्यवस्था धराशायी हो जाएगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.5.1 सीनेट की रचना– अमेरिका की सीनेट का निर्माण राज्यों की समानता के संघीय सिद्धान्त के आधार पर हुआ है। सीनेट में प्रत्येक राज्य को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। सभी राज्य अपने–अपने यहाँ से दो प्रतिनिधि चुनकर सीनेट के लिए भेजते है। संविधान के अनुच्छेद 5 में स्पष्ट उल्लेख है कि "किसी राज्य को उसकी सहमति के बिना सीनेट में प्रतिनिधित्व की समानता से वंचित नहीं किया जा सकता।" प्रारम्भ में जब 13 राज्यों ने मिलकर अमेरिकन संघ का निर्माण किया तो सीनेट के सदस्यों की संख्या केवल 26 थी। वर्तमान समय में अमेरिका संघ में 50 राज्य है, अत: सीनेट के सदस्यों की संख्या 100 है। इस प्रकार सीनेट राज्यों की समानता के सिद्धान्त पर गठित है।

16.5.2 सीनेट के सदस्यों के लिए योग्यताएँ – सीनेट के लिए निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिएँ–

1. वह 30 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
2. वह उस राज्य का नागरिक हो, जिसका प्रतिनिधित्व वह सीनेट में करना चाहता है।
3. वह कम से कम 9 वर्ष से संयुक्त राज्य अमरीका में निवास करता हो।

16.5.3 सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन– प्रारम्भ में सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन की व्यवस्था अप्रत्यक्ष रखी गयी थी अर्थात् उसके सदस्यों का निर्वाचन राज्यों की विधान सभाओं द्वारा होता था। परन्तु 1913 ई. में 17 वें संवैधानिक संशोधन ने सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन की प्रत्यक्ष व्यवस्था कर दी। अत: वर्तमान समय में सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन राज्य की जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के द्वारा, प्रत्यक्ष रूप से होता है।

16.5.4 सीनेट के सदस्यों का कार्यकाल– सीनेट एक स्थायी सदन है, जिसके सदस्य 6 वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचित किये जाते है। प्रति दो वर्ष बाद एक–तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण करते हैं, जिनके स्थान पर नवीन निर्वाचन कराये जाते हैं। सदस्यों के पुनर्निर्वाचन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अनेक सदस्य, सीनेट के लिए अनेक बार निर्वाचित होते रहते हैं।

16.5.5 वेतन भत्ते और उन्मुक्तियां– कांग्रेस के दोनों सदनों का वेतन, भत्ते और उन्मुक्तियां समान हैं। उन्हें 30 हजार डालर वार्षिक वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्हें यात्रा भत्ते व स्टेशनरी व्यय आदि कुछ अन्य खर्च भी प्राप्त होते हैं। सदस्यों को भाषण की स्वतन्त्रता भी प्राप्त है और सदन में किये गये उनके भाषण के आधार पर उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है।

16.5.6 अधिवेशन– अमरीकी संविधान के बीसवें संशोधन के अनुसार सीनेट का अधिवेशन 3 जनवरी की दोपहर को प्रतिनिधि सदन के साथ आरम्भ होता है। दोनों सदनों का अधिवेशन उस समय तक चलता रहता है जब तक वे अधिवेशन के स्थगन के लिए प्रस्ताव पास न करें।

16.5.7 सीनेट का सभापति– अमरीका का उपराष्ट्रपति सीनेट का पदेन सभापति होता है। वह सीनेट की बैठकों की अध्यक्षता करता है परन्तु वह उसका सदस्य नहीं होता। वह बाह्य व्यक्ति होता है। इसलिए उसे सदन के वाद–विवाद में हिस्सा लेने और मतदान करने का अधिकार नहीं होता। उसके पास केवल 'निर्णायक मत' का अधिकार होता है जिसका प्रयोग वह गतिरोध की स्थिति में करता है। जब सीनेट किसी मुद्दे पर समान रूप से विभाजित हो जाता है तो अध्यक्ष अपने निर्णायक मत का प्रयोग करता है।

फिलिबस्टर –सीनेट की कार्यवाही की एक विशेष बात (जिसे उसका दोष कहा जा सकता है) यह रही है कि सीनेट के सदस्यों को भाषण की असीम स्वतन्त्रता प्राप्त है। लेविस केंरोल ने कहा है कि सीनेट में "किसी भी प्रश्न के सम्बन्ध में किसी भी समय और कितने भी समय के लिए विचार–विमर्श किया जा सकता है।" सीनेट के सदस्यों की "अखण्ड भाषण प्रहार" की स्वतन्त्रता को ही फिलिबस्टर कहते हैं।

16.6 सीनेट की शक्तियाँ

अमरीकी सीनेट की शक्तियाँ बड़ी व्यापक है। वह विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली दूसरा सदन है। शासन का कोई अंग उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। अपनी विधायी, कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियों के आधार पर वह सर्वाधिक विलक्षण और सर्वाधिक शक्तिशाली उच्च सदन है। विकास और वित्त के क्षेत्र में वह प्रतिनिधि सदन के समकक्ष शक्तियों का उपयोग करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कार्यपालिका शक्तियों में वह राष्ट्रपति की नियुक्ति और सन्धि करने सम्बन्धी शक्तियों में साझीदार है। न्यायिक शक्तियों में अर्थात् प्रशासन की अकुशलता, अकर्मण्यता और बेईमानी का पर्दाफाश करने और महाभियोग के आरोपों की जाँच करने में उसकी शक्तियों की तुलना सर्वोच्च न्यायालय से की जा सकती है। सीनेट की शक्तियाँ उसे प्रथम श्रेणी का उच्च सदन बनाती है। वह द्वितीय श्रेणी का उच्च सदन नहीं, वह श्रेष्ठ एवं सर्वाधिक शक्तिशाली उच्च सदन है।

सीनेट की शक्तियों और कार्यों का अध्ययन अग्र रूपों में किया जा सकता है।

16.6.1 विधायी शक्तियाँ– सीनेट अमरीकी कांग्रेस का द्वितीय सदन है और सामान्यतया वर्तमान समय में प्रजातन्त्रात्मक देशों में व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन को कानून निर्माण में गौण स्थिति ही प्राप्त होती है, लेकिन अमरीकी सीनेट के सम्बन्ध में ऐसी स्थिति नहीं है।

साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में सीनेट को प्रतिनिधि सभा के बिल्कुल समान शक्तियाँ प्राप्त हैं। साधारण विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किये जा सकते हैं और वे तब तक पारित नहीं समझे जाते, जब तक दोनों सदन उन्हें स्वीकार न कर लें।

संवैधानिक विधेयकों के सम्बन्ध में भी दोनों की स्थिति पूर्णतया समान है। संविधान में संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किये जा सकते हैं और ऐसा प्रत्येक विधेयक पारित समझे जाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे दोनों सदन अपने–अपने 2/3 बहुमत से पारित करें।

जहाँ तक वित्त विधेयकों का सम्बन्ध हैं, उनके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें प्रतिनिधि सभा में प्रस्तुत किया जाए। पर केवल प्रस्तुतीकरण को छोड़कर अन्य सब बातों में सीनेट किसी भी वित्त विधेयक को पूर्णत: संशोधित कर सकती है। वस्तुत: कोई विधेयक तब तक कांग्रेस द्वारा पारित नहीं समझा जाता, जब तक सीनेट उसे पारित न कर दे।

16.6.2 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ– कार्यपालिका सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण शक्तियों ने सीनेट को विश्व के समस्त उच्च सदनों में अधिक शक्तिशाली स्थिति प्रदान की है। सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति सन्धियों की पुष्टि सम्बन्धी है। राष्ट्रपति द्वारा विदेशों के साथ की गई सन्धियाँ तब तक पूर्ण नहीं समझी जाती जब तक उन्हें सीनेट अपने 2/3 बहुमत से अनुमोदित न कर दे। इस शक्ति ने उसे राष्ट्र के वैदेशिक मामलों के नियन्त्रण और निर्देशन में काफी अधिकार दे दिया है और विदेश–नीति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की शक्ति का भागीदार बना दिया है। सीनेट की दूसरी प्रमुख कार्यपालिका सम्बन्धी शक्ति राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों के पुष्टिकरण या अनुसमर्थन की है। इस पुष्टिकरण के लिए साधारण बहुमत की आवश्यकता है। संविधान में यह व्यवस्था कर दी गई है कि सिर्फ सीनेट के परामर्श तथा स्वीकृति पर ही राजदूतों, मंत्रियों, न्यायाधीशों आदि की नियुक्ति राष्ट्रपति कर सकता है। इस शक्ति के द्वारा भी सीनेट राष्ट्रपति पर अपना नियंत्रण बनाए रखती है। व्यवहार में साधारणतया सीनेट राष्ट्पति द्वारा प्रस्तावित नियुक्तियों का अनुमोदन कर देती है, पर विशेष मामलों में उन्हें रद्द भी कर सकती है। सन् 1951 ई. में राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा हैलियोनिस राज्य में की गई संघीय न्यायाधीशों की नियुक्ति को सीनेट ने रद्द कर दिया था।

सीनेट की तीसरी कार्यपालिका–शक्ति विविध विभागों के विरूद्ध शिकायतों की जाँच करना है। इस बारे में सीनेट का निर्णय अन्तिम होता है। सीनेट को सब प्रकार के कार्यो में जाँच पड़ताल करने का अधिकार है। इस शक्ति के कारण सीनेट प्रशासन की अकुशलता, अकर्मण्यता और राजनीतिक बेईमानी का पर्दाफाश करती हैं।

16.6.3 न्यायिक शक्तियाँ– सीनेट को न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं जिनमें सबसे प्रमुख महाभियोग की जाँच का अधिकार है। प्रतिनिधि सभा में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सैनिक अधिकारियों तथा न्यायाधीशों पर देशद्रोह, भ्रष्टाचार तथा अन्य गम्भीर अपराध के लिए महाभियोग लगाया जा सकता है। महाभियोग की सुनवाई सीनेट में होती है और वही उस पर अपना निर्णय देती है। महाभियोग की सुनवाई के समय सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश सीनेट की अध्यक्षता करता है और अपराध सिद्धि के लिए 2/3 बहुमत की आवश्यकता होती है। महाभियोग की जाँच करने की प्रक्रिया में सीनेट सभी कार्य, जैसे आदेश जारी करना, गवाहों को बुलाना, उन्हें शपथ दिलाना आदि सम्पादित करती है। अभी तक सीनेट के द्वारा कुल 12 बार महाभियोग प्रस्तावों की जाँच की गयी और इनमें से 4 बार महाभियोग का प्रस्ताव पारित किया गया। लेकिन अभी किसी राष्ट्पति के विरुद्ध महाभियोग पारित नहीं किया जा सका है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16.6.4 निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ- सीनेट राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में डाले गए मतों की गिनती करती है और परिणामों की घोषणा करती है। यदि उपराष्ट्रपति पद के लिए किसी भी उम्मीदवार को निर्वाचक मण्डल के मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता तो सीनेट सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले प्रथम दो उम्मीदवारों में से एक का चयन उपराष्ट्रपति पद के लिए कर लेती है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सीनेट के कार्यों की प्रकृति बहुमुखी है।

16.7 सीनेट का महत्त्व

अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था में सीनेट सबसे ''अद्भुत आविष्कार' है। यह रीढ़ की ऐसी हड्डी है जिसे यदि निकाल दिया जाय तो संघीय शासन नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। यह गुरूत्वाकर्षक का ऐसा केन्द्र है जिसकी ओर सभी आकर्षित होते हैं। यह ऐसा सन्तुलन केन्द्र है जो प्रतिनिधि सदन की उच्छृंखलता और राष्ट्रपति की महत्त्वाकांक्षाओं को रोकता है। यह शक्ति और प्रभाव का ऐसा मंच है जिसे राष्ट्रपति को रिझाना पड़ता है। और राष्ट्रपति प्रेस को इसके विचार-विमर्श की समीक्षा कर उसे प्रकाशित करना पड़ता है। यह ऐसा लोकप्रिय सदन है जिसकी कोई उपेक्षा नहीं कर सकता। अमरीकी सीनेट विश्व में निर्विवाद रूप से श्रेष्ठ द्वितीय सदन है। विश्व में कोई ऐसा दूसरा (उच्च) सदन नहीं जिसकी इसके साथ तुलना की जा सके। विश्व में अधिकांश उच्च सदन या तो वंशानुगत हैं या उनका निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है या उनके सदस्य नामांकित किये जाते हैं। अत: वे अलोकतान्त्रिक सदन कहलाते हैं। अमरीकी सीनेट ही ऐसा उच्च सदन है जो राज्यों की जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होने के कारण लोकतान्त्रिक सदन कहलाता है। जिस प्रकार रोमन यह कहते हुए कभी नहीं थकते कि पीरूस के राजदूत ने रोमन सीनेट को राजाओं की सभा कहा था, वैसे ही अमरीकावासी भी अपनी सीनेट को 'राजनीतिज्ञों एवं सन्तों का ओलम्पियन निवास-स्थान' कहकर पुकारते हैं। अत: शक्ति और सम्मान की दृष्टि से सीनेट का महत्त्व निम्नलिखित रूपों में समझ सकेंगे-

16.7.1 संविधान निर्माताओं की इच्छा- अमरीका के संविधान निर्माता सीनेट को संघीय-शासन प्रणाली की रीढ़ बनाना चाहते थे। राष्ट्रपति द्वारा शक्तियों का स्वेच्छाचारी प्रयोग न हो सके, इसके लिए सीनेट को कतिपय ऐसी शक्तियाँ प्रदान की गई कि वह निरंकुश न बन सके और शक्ति-सन्तुलन बना रहे। इस तरह प्रतिनिधि सभा की मनमानी पर अंकुश रखने के लिए व्यवस्थापन के क्षेत्र में भी सीनेट को प्रतिनिधि सभा का समानपदीय बनाया गया और यह व्यवस्था की गई कि सभी प्रकार के विधेयक तभी कानून का रूप ले सकेंगे जब उन पर दोनों सदनों की सहमति हो जाए। स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने सीनेट को एक ऐसे संतुलन चक्र का स्थान देना चाहा जो राष्ट्रपति और प्रतिनिधि सभा दोनों को अपनी सीमाओं में रख सके। उनकी इच्छा का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि आज सीनेट विश्व के सभी द्वितीय सदनों से अधिक शक्तिशाली है।

16.7.3 प्रतिष्ठित सदन और प्रभावशाली मंच- सीनेट कानून बनाने वाले लोगों का प्रतिष्ठित सदन है। वह राज्यों का राजनीतिक इकाइयों के रूप में प्रतिनिधित्व करता है। वर्तमान में सीनेट के सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि नहीं वरन् समस्त राष्ट्र के प्रतिनिधि है। प्रतिनिधि-सभा में स्थानीय हितों का प्रभुत्व रहा है, परन्तु सीनेट में ऐसा नहीं है। इस द्वितीय सदन ने स्वभावत: प्रथम सदन की तुलना में श्रेष्ठता अर्जित की है और उनका सम्मान भी बढ़ा है।

राष्ट्रपति पद के बाद अमरीका में सीनेट ही सबसे प्रभावशली मंच है। राष्ट्रपति की ही तरह प्रमुख सीनेटरों के भाषणों और विचारों को समाचार-पत्रों में प्रथम पृष्ठ पर स्थान दिया जाता है। सीनेटरों के विचार जनमत को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं। इसके फलस्वरूप सीनेट के प्रभाव में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

16.7.3 संसदात्मक प्रणाली का अभाव- ब्रिटेन और भारत जैसे संसदात्मक प्रणाली वाले देशों में निम्न सदन उच्च सदन से इसलिए शक्तिशाली होता है कि वहाँ कार्यपालिका का निर्माण निम्न सदन से होता है, कार्यपालिका निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी होती है और उसका जीवन-मरण उसी पर निर्भर करता है। दूसरी ओर, अमरीका में कार्यपालिका, अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था होने के कारण, व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र होती है। उसका निर्माण न तो कांग्रेस के सदस्यों से होता है और न ही वह उसके प्रति उत्तरदायी होती है। कांग्रेस अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा कार्यपालिका को पदच्युत नहीं कर सकती और न ही कार्यपालिका कांग्रेस को समय से पूर्व भंग कर सकती है। अमरीका में सीनेट ही कार्यपालिका शक्तियों में साझेदार है। अत: वह प्रतिनिधि सदन से अधिक शक्तिशाली है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.7.4 सीनेट का लघु आकार– सीनेट के लघु आकार के कारण ही उसकी महत्ता तथा प्रतिष्ठा बढ़ी है। सीनेट की कुल सदस्य संख्या 100 है जबकि प्रतिनिधि सभा में 435 सदस्य हैं। छोटे आकार के कारण इसके सदस्यों में पारस्परिक घनिष्ठता रहती है और वे स्वतन्त्रतापूर्वक वाद–विवाद कर पाते हैं। इसमें प्रत्येक सदस्य का महत्त्व बना रहता है। प्रत्येक सदस्य सदन की विधायी क्रिया में भाग ले सकता हे। प्रत्येक सदस्य सीनेट की कम से कम दो समितियों का सदस्य अवश्य होता है। इससे उसे अपने व्यक्तित्व को उभारने का अवसर मिलता है।

16.7.5 लम्बा कार्यकाल– प्रतिनिधि सदन की तुलना में सीनेट के सदस्यों का कार्यकाल लम्बा है। जहाँ प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को प्रति 2 वर्ष बाद निर्वाचन की चिन्ता रहती है वहाँ सीनेट के सदस्यों को इसकी चिन्ता 6 वर्ष बाद करनी पड़ती है। सीनेट के सदस्यों के पुनर्निर्वाचन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि योग्य, लोकप्रिय एवं महत्त्वाकांक्षी सीनेटर बार–बार निर्वाचित होते रहते हैं। उदाहरणत: सीनेटर डी. स्मिथ 29 वर्षों तक सीनेट का सदस्य रहा।

16.7.6 प्रत्यक्ष निर्वाचन– सीनेट उसी प्रकार से एक लोकतान्त्रिक सदन है जिस प्रकार से प्रतिनिधि सदन एक लोकतान्त्रिक सदन है। जहाँ दूसरे देशों की व्यवस्थापिकाओं के उच्च सदन अप्रजातान्त्रिक होने से निर्बल हैं वहाँ अमरीकी सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष होने से वह प्रजातान्त्रिक है और सबल भी। यही उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा का आधार है।

16.7.7 समान विधायी एवं वित्तीय शक्तियाँ– विधान और वित्त के क्षेत्र में अमरीकी सीनेट एक अधीन सदन नहीं, वह एक समान सदन है। जहाँ ब्रिटिश लार्ड सभा विधान के क्षेत्र में एक विलम्बकारी और पुनरीक्षणकारी सदन है और वित्त के क्षेत्र में वह केवल एक माह तक देरी कर सकती है वहाँ अमरीकी सीनेट विधान के क्षेत्र में प्रतिनिधि सदन के समान शक्तियों का उपयोग करती है। वित्त विधेयक केवल प्रतिनिधि सदन में ही पेश किये जा सकते हैं परन्तु सीनेट शीर्षक को छोड़कर समूचे वित्त विधेयक को संशोधित एवं परिवर्तित कर सकती है।

16.7.8 सीनेट में वाद–विवाद की स्वतन्त्रता– अमरीकी सीनेट विश्व में सबसे अधिक विचार–विमर्श करने वाली निकाय है। यह ''स्वतन्त्र विवाद का मंच है।'' इसके सदस्यों को विचार व्यक्त करने की असीम स्वतन्त्रता प्राप्त है। सदस्यों के बोलने का समय प्राय: निश्चित नहीं किया जाता। सीनेटर जब एक बार सीनेट में बोलने खड़ा हो जाता है, तब वह जितनी देर चाहे बोल सकता है। परिणाम स्वरूप यहां विषयों पर विचार अधिक पूर्णता के साथ होता है और निश्चय पर पहुंचने के पूर्व उसके सभी पहलुओं पर पूर्णता के साथ विचार कर लिया जाता है। अच्छी तरह विचार के बाद किये गये निर्णय देश के लिए अधिक लाभकारी होते हैं और उनके कारण सीनेट की महत्ता में वृद्धि हुई है।

16.7.9 दलीय नियन्त्रण का अभाव– सीनेट के सदस्य दलीय नियन्त्रण से मुक्त हैं। वे दलीय भावनाओं से प्रभावित नहीं होते। वे विषयों पर स्वतन्त्र दृष्टिकोण अपनाते हैं। सीनेट के सदस्य स्वतन्त्रतापूर्वक किसी भी समय और किसी भी विषय पर बोल सकते हैं। वे व्यक्तिगत रूप से यह निश्चय करते है कि कौनसा रास्ता अपनाया जाए अथवा किस पक्ष को मत दिया जाए। अत: दलों के आधार पर निर्वाचित होने के बाद भी सदस्य दलीय रेखाओं में विभाजित नहीं होते और विषयों पर गुणों के आधार पर मतदान करते हैं। दलीय नियन्त्रण के अभाव में सीनेट की स्थिति शक्तिशाली बन गई है।

16.7.10 कार्यपालिका सम्बन्धी एवं न्यायिक शक्तियाँ– सीनेट के पास महत्त्वपूर्ण कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ हैं। वह राष्ट्रपति की निरंकुशता पर रोक का कार्य करती है, संधियों एवं नियुक्तियों में उसका निर्णय अन्तिम रहता है। न्यायिक शक्तियों के रूप में सीनेट एक प्रमुख जाँच निकाय का कार्य करती है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों पर लगाये गये महाभियोग के आरोपों की जाँच करने का एकमात्र अधिकार है।

अत: सीनेट अमेरिका के शासनतन्त्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली निकाय है। वस्तुत: सीनेट एक सफल, विशाल और अद्वितीय द्वितीय सदन के रूप में उभरी है और इसने अपने निर्माताओं के उद्देश्य की पूर्ति की है। अमेरिकी शासन–व्यवस्था में सीनेट ही एक ऐसा सदन है, जो व्यावहारिक एवं कारगर रूप में राष्ट्रपति के अधिकारों पर नियन्त्रण रख सकने में समर्थ हो सकी है। सीनेट अमेरिकी प्रशासन तन्त्र की धुरी है। यदि उसे निकाल दिया जाए तो अमेरिकी शासन–व्यवस्था धराशायी हो जाएगी। अमेरिकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सीनेट को हटाने का अर्थ संघीय सरकार की स्थिति को अत्यन्त कमजोर करना है। अन्त में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अमरीकी सीनेट विश्व में सबसे श्रेष्ठ उच्च सदन है। ऐसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ तथा शक्तिशाली सदन माना जाता है।

16.8 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अमरीकी शासन प्रणाली में प्रतिनिधि सभा एक दुर्बल सदन है। उसका नेतृत्व संगठित नहीं है। वह राष्ट्रीय संस्था की धुरी नहीं बन पाई है। उसे राष्ट्रीय प्रतिनिध्यात्मक संस्था नहीं कहा जा सकता। वह तो क्षेत्रीय प्रतिनिधियों का मंच मात्र है। अपने मतदाताओं के स्थानीय, व्यक्तिगत व विशिष्ट हितों के बोझ से वह इतनी दबी रहती है कि राष्ट्रीय नीति के निर्माण की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। संक्षेप में, प्रतिनिधि सभा न केवल सीनेट की तुलना में अपितु अन्य देशों के प्रथम सदनों की तुलना में अत्यधिक कमजोर सदन है। जबकि अमरीकी सीनेट ने विश्व के द्वितीय सदनों में प्रथम सदन का स्थान ले लिया है। जहाँ विश्व के अन्य देशों में द्वितीय सदनों की शक्ति में ह्रास हुआ है, वहाँ सीनेट की शक्ति में वृद्धि हुई है। यह सदन विश्व के द्वितीय सदनों में अद्वितीय है। अपने प्रभाव एवं प्रतिष्ठा के कारण सीनेट की सामयिकता तथा प्रासंगिकता बरकरार है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रतिनिधि सभा के संगठन, शक्तियों एवं भूमिका का परीक्षण करें।
2. संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट के संगठन, शक्तियों एवं भूमिका को इंगित करे।
3. संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट के सर्वशक्तिशाली द्वितीय सदन माने जाने के कारणों का वर्णन करों।
4. उन कारणों को स्पष्ट करें कि यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रतिनिधि सभा चुनी हुई एवं प्रतिनिधि संस्था है, परन्तु वह अशक्त है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रतिनिधि सभा की दुर्बलता के कारण बताइये।
2. अमरीकी सीनेट के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
3. ''अमरीकी सीनेट विश्व के द्वितीय सदनों में सर्वाधिक शक्तिशाली है।'' संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सीनेट के प्रतिनिधि सदन की तुलना में शक्तिशाली होने के कारण बताइये।
2. फिलिबस्टर से क्या तात्पर्य है।
3. प्रतिनिधि सदन और सीनेट के सदस्य संख्या कितनी हैं।
4. सीनेट का पदेन सभापति कौन होता है।
16. प्रतिनिधि सदन के सदस्य कितने वर्ष के लिए चुने जाते हैं।
6. अमरीकी सीनेट का चुनाव कैसे होता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–17

संघीय न्यायपालिका

संरचना

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 सर्वोच्च न्यायालय

- 17.2.1 रचना
- 17.2.2 न्यायाधीशों की नियुक्ति
- 17.2.3 न्यायाधीशों की योग्यताएँ
- 17.2.4 न्यायाधीशों का कार्यकाल
- 17.2.5 न्यायाधीशों का वेतन
- 17.2.6 महाभियोग की प्रक्रिया
- 17.2.7 सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि

17.3 सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ एवं क्षेत्राधिकार

- 17.3.1 प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार
- 17.3.2 अपीलीय क्षेत्राधिकार
- 17.3.3 संविधान तथा अधिकारों का संरक्षक
- 17.3.4 न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार

17.4 न्यायिक पुनरावलोकन

- 17.4.1 न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ
- 17.4.2 न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का आधार
- 17.4.3 न्यायिक पुनरावलोकन का प्रभाव
- 17.4.4 न्यायिक पुनरावलोकन का महत्त्व

17.5 सारांश

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत अमरीकी संघीय न्यायालय का संगठन, सर्वोच्च न्यायालय की कार्यप्रणाली एवं क्षेत्राधिकार का उल्लेख किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप न्यायपालिका की स्थिति एवं न्यायिक पुनरावलोकन की समीक्षा कर सकेंगे–

- सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका को समझ सकेंगे,
- न्यायिक पुनरावलोकन की प्रकृति और क्षेत्र का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- संविधान का संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका को समझ सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

''यदि अदालतें कानून के वास्तविक अर्थों और परिचालन की व्याख्या एवं अर्थ–निर्धारण न करें तो ये मृत अक्षरों के समान है।'' –**एलैक्जेण्डर हैमिल्टन**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

न्यायपालिका सभ्य राज्य की प्रथम आवश्यकता होती है। संघीय राज्य में इसकी आवश्यकता और भी अधिक है क्योंकि इसमें संघ सरकार और उसके एककों की सरकारों में शक्तियों का विभाजन किया जाता है। अत: अमेरिकी संविधान-निर्माताओं का विचार था कि एक ऐसी संघीय न्यायिक शक्ति की स्थापना की जानी चाहिए जो संघीय व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका की शक्ति में सामंजस्य स्थापित कर सके और ऐसी राष्ट्रीय न्यायपालिका के रूप में कार्य कर सके जो न केवल स्वयं अपने में पूर्ण हो बल्कि संघ एवं राज्यों के अन्य सभी न्यायालयों में उच्चतर हो तथा देश की कानूनी व्यवस्था के लिए अन्तिम रूप से उत्तरदायी हो। संविधान-निर्माताओं की मान्यता थी कि एक ऐसा 'सर्वमान्य मध्यस्थ' अवश्य होना चाहिए, जो समस्त राज्यों और संघ के स्वार्थों से ऊपर हो तथा निष्पक्ष रूप से इनके विवादों को निपटाए।

यही सब सोच-समझ कर अमेरिकी संविधान की तीसरी धारा में यह व्यवस्था की गई कि "न्याय-सम्बन्धी शक्ति एक सर्वोच्च न्यायालय और उन अन्य नीचे के न्यायालयों में निहित होगी जिनकी स्थापना व प्रतिष्ठा कांग्रेस विधि द्वारा समय-समय पर करेगी।" दूसरे शब्दों में, सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना करना तो अनिवार्य है, परन्तु अन्य संघीय न्यायालयों की स्थापना करना कांग्रेस की इच्छा पर निर्भर करता है। प्रथम कांग्रेस ने सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त निम्न संघीय न्यायालयों की स्थापना की थी और तब से अब तक ये संघीय न्याय व्यवस्था की अभिन्न अंग बनी हुई हैं। वर्तमान समय में संघीय न्यायपालिका में तीन श्रेणी के न्यायालय हैं- सर्वोच्च न्यायालय, अपीलीय न्यायालय और जिला न्यायालय आदि।

17.2 सर्वोच्च न्यायालय

अमरीकी संघीय न्याय व्यवस्था के शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है। इसकी व्यवस्था स्वयं संविधान में की गई हैं। इसकी स्थापना सन् 1789 ई. के न्यायपालिका अधिनियम द्वारा की गई थी। अमेरिका में संविधान की सर्वोच्चता है और इसीलिए उसकी व्याख्या करने वाली शक्ति के रूप में अमेरीका के सर्वोच्च न्यायालय संघ में उस न्यायिक सत्ता की आश्यकता का प्रतीक है जिस पर संविधान के निर्वहन का और केन्द्र तथा राज्यों अथवा राज्यों के पारस्परिक विवादों को हल करने का दायित्व है। इस शक्ति के कारण उसकी बड़ी प्रतिष्ठा है।

17.2.1 रचना- सर्वोच्च न्यायालय के संगठन को निर्धारित करने का अधिकार कांग्रेस को दिया गया है। प्रारम्भ में इसके न्यायाधीशों में एक मुख्य न्यायाधीश तथा पाँच अन्य न्यायाधीशों को नियुक्ति की गई थी, परन्तु 1869 ई. में कांग्रेस द्वारा 9 न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई और उस समय से यह संख्या अब तक चली आ रही है। अत: वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 8 अन्य न्यायाधीश हैं।

17.2.2 न्यायाधीशों की नियुक्ति- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है, किन्तु इन नियुक्तियों की पुष्टि सीनेट द्वारा आवश्यक है। सीनेट राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्ति को रद्द कर सकती है। उदाहरणार्थ, सन् 1968 में राष्ट्रपति जॉनसन द्वारा नियुक्त मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त फोर्टास के लिए सीनेट ने स्वीकृति नहीं दी।

17.2.3 न्यायाधीशों की योग्यताएँ- न्यायाधीशों की योग्यता के सम्बन्ध में संविधान मौन है। किन्तु प्राय: ऐसे व्यक्ति को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है जो ख्याति प्राप्त वकील, कानून के प्राध्यापक, सार्वजनिक व्यक्ति तथा प्रशासकीय अभिकरणों के परामर्शदाता रह चुकें हों।

17.2.4 न्यायाधीशों का कार्यकाल- अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश आजीवन न्यायाधीश पद पर नियुक्त होता है। वह अपने 'सदाचार काल' तक न्यायाधीश बना रहता है। वह चाहे तो 70 वर्ष की अवस्था में त्यागपत्र देकर, पूरे वेतन पर, पदमुक्त हो सकता है। उसे केवल महाभियोग द्वारा ही अपने पद से हटाया जा सकता है। इस प्रकार किसी भी न्यायाधीश को उसकी इच्छा के विरूद्ध त्याग पत्र देने को विवश नहीं किया जा सकता। न्यायाधीश स्वेच्छा से ही अवकाश ग्रहण कर सकते है।

17.2.5 न्यायाधीशों का वेतन- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन कांग्रेस द्वारा निर्धारित किया जाता है और न्यायाधीश की पदावधि में इस वेतन में वृद्धि तो की जा सकती है, लेकिन कमी नहीं। वर्तमान समय में मुख्य न्यायाधीश को 40 हजार डालर और अन्य न्यायाधीशों को 35 हजार डालर वार्षिक वेतन प्राप्त होता है। यह वेतन आय-कर से मुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त उन्हें विविध प्रकार के भत्ते भी प्रदान किये जाते हैं।

17.2.6 महाभियोग- सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश को केवल महाभियोग के आधार पर ही पदच्युत किया जा सकता है। महाभियोग का प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में प्रस्तावित किया जाता है और प्रतिनिधि सभा द्वारा 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित कर दिये जाने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर सीनेट द्वारा उसकी जाँच की जाती है। यदि सीनेट भी अपने 2/3 बहुमत से प्रस्ताव की पुष्टि करदे, तो महाभियोग का प्रस्ताव पारित समझा जाता है और सम्बन्धित न्यायाधीश को पद त्याग करना होता है। अब तक के संवैधानिक इतिहास में संघीय न्यायपालिका के 9 न्यायाधीशों के विरूद्ध महाभियोग का प्रस्ताव रखा गया और इनमें से केवल 4 के विरूद्ध यह प्रस्ताव पारित हो सका।

17.2.7 सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि- अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय का सत्र प्रतिवर्ष अक्टूबर के प्रथम सोमवार से प्रारम्भ होता है ओर जून के शुरू में समाप्त हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर मुख्य न्यायाधीश विशेष सत्र भी बुला सकता है। मुख्य न्यायाधीश बैठकों की अध्यक्षता करता और निर्णयों की घोषणा करता है। मुकदम की सुनवाई तथा निर्णय के लिए 6 न्यायाधीशों की गणपूर्ति आवश्यक है। मुकदम का निर्णय बहुमत से होता है।

17.3 सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ एवं क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय को संविधान से ही शक्तियाँ प्राप्त होती हैं और इस रूप में वह अमरीकी संघ की कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका दोनों से ही स्वतन्त्र है। मुनरो के शब्दों में ''अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति इतनी अधिक है जितनी दुनिया के किसी न्यायालय ने बहुत ही कम प्रयुक्त की है।''

सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों तथा इसके क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है-

17.3.1 प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार- सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक अधिकार-क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। संविधान में स्पष्ट उल्लेख है कि ''उन सब मामलों में जिनका सम्बन्ध राजदूतों से, राज्य के मन्त्रियों से अथवा अन्य दौत्य अधिकारियों से हो, और उन सब मामलों में जिनमें कोई राज्य एक पक्ष है, सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र प्रारम्भिक होगा।'' इसके अतिरिक्त ऐसे विवाद भी जिनमें संघ और राज्य या राज्यों के मध्य विवाद हो, सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में आते हैं।

17.3.2 अपीलीय क्षेत्राधिकार- सर्वोच्च न्यायालय में अधिकांश मुकदमें, पुनर्विचार अर्थात् अपील के लिए आते है। दूसरे शब्दों में, राज्यों के उच्च न्यायालयों और निम्न संघीय न्यायालयों के निर्णय के विरूद्ध की गई अपीलों पर विचार करना सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य कार्य है। न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार पर कांग्रेस का पूर्ण नियन्त्रण है। कांग्रेस न्यायालय के इस क्षेत्र को अधिक या कम कर सकती है या इसे पूर्णत: समाप्त कर सकती है। सन् 1925 ई. के कांग्रेस के अधिनियम द्वारा अपील का अधिकार केवल निम्नलिखित विषयों तक सीमित कर दिया गया है-

1. वे मुकदम जिनमें संघीय संविधान, संघीय कानून या संघीय सन्धि का कोई मुद्दा या प्रश्न निहित हो, जबकि राज्यों के न्यायालय राज्यों में उस कानून को वैध ठहरायें।
2. वे मुकदमे जिनमें संघीय कानून तथा सन्धियों को राज्य के न्यायालय में संविधान के विरूद्ध घोषित कर दिया हो।

स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार केवल संवैधानिक मामलों में है और साधारण मामलों में राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपील तभी की जा सकती है, जबकि राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा अपील करने की अनुमति दे दी हो।

17.3.3 संविधान तथा अधिकारों का संरक्षक- सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अभिभावक और संरक्षक है। वह संविधान की व्याख्या करता है तथा उसकी रक्षा करता है। सर्वोच्च न्यायालय विभिन्न आदेश, परमादेश तथा लेख आदि के द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है।

17.3.4 न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार- सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार न्यायिक पुनरावलोकन का है। इस अधिकार के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय, संघीय कांग्रेस तथा राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों की संवैधानिकता पर विचार करता है तथा उन्हें वैध या अवैध घोषित करता है। इस वैधता का निर्णय दो कसौटियों पर होता है, प्रथम, राज्य विधान मण्डल को संविधान के अनुसार उस कानून विशेष को निर्मित करने का अधिकार है या नहीं ? द्वितीय, कानून विधि की उचित प्रक्रिया द्वारा बनाया गया है या नहीं ? न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति ने सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका को अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया है।

17.4 न्यायिक पुनरावलोकन

सर्वोच्च न्यायालय की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार है, जिसके आधार पर सर्वोच्च

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

न्यायालय ने संविधान के संरक्षक की स्थिति प्राप्त कर ली है। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या का एकमात्र अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत यह कांग्रेस के कानूनों, राष्ट्रपति के आदेशों, प्रशासन के नियमों और विनियमों तथा राज्यों के कानूनों की समीक्षा करता है और जब कभी वे संविधान के विपरीत होते हैं तो यह उन्हें रद्द या अवैध घोषित कर सकती है। सर्वोच्च न्यायालय की इस शक्ति के सम्बन्ध में न्यायाधीश हूज ने कहा है कि ''अमरीकन जनता संविधान के अधीन अवश्य रहती है, परन्तु संविधान वही है, जो न्यायाधीश कहते है।''

17.4.1 न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ- अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति न्यायिक पुनरावलोकन की है। इसका अर्थ है न्यायालय द्वारा कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के कार्यों की वैधता की जाँच करना। इस शक्ति के अधीन वह संविधान की व्याख्या करता है। कार्विन ने न्यायिक पुनरावलोकन को स्पष्ट करते हुए कहा कि ''न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य न्यायालयों की उस शक्ति से है जो उन्हें अपने न्याय क्षेत्र के अन्तर्गत लागू होने वाले व्यवस्थापिका के कानूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के सम्बन्ध में तथा इन कानूनों को लागू करने से इंकार करने के सम्बन्ध में प्राप्त हैं, जिन्हें वह अवैध और इसलिए व्यर्थ समझे।''

17.4.2 न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का आधार- अमरीका में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का कोई संवैधानिक आधार नहीं है। संविधान निर्माताओं का भी ऐसा कोई विचार नहीं था कि न्यायपालिका को इस प्रकार की किसी शक्ति से विभूषित किया जाए। राष्ट्रपति जैफरसन ने कहा था कि यदि न्यायपालिका कांग्रेस एवं राष्ट्रपति, अर्थात् व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के कार्यों का पुनरावलोकन करने के अधिकार का प्रयोग करती है तो न केवल यह शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का ही उल्लंघन है, वरन् संविधान निर्माताओं के विचारों का भी अनादर है।

परन्तु अधिकांश विचारकों का निश्चित मत है कि न्यायालयों की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति संवैधानिक धाराओं में अन्तर्निहित है। यह अमरीकी राजनीतिक जीवन की वास्तविकता है। डायसी ने लिखा है कि ''वस्तुत: अमरीका में प्रत्येक न्यायाधीश का यह अधिकार ही नहीं बल्कि कर्त्तव्य भी है कि उस विधि या नियम को अवैध समझे जो संविधान की धाराओं के विपरीत हो।'' संविधान, सर्वोच्च न्यायालय को स्पष्ट रूप से न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्रदान नहीं करता। फिर भी न्यायालय की यह शक्ति संविधान का अभिन्न अंग बन गयी है। इसका कारण यह है कि संविधान अनुच्छेद 6, खण्ड 2 में राष्ट्रीय सर्वोच्चता के जिस सिद्धान्त को स्वीकार करता है, अनुच्छेद 3, खण्ड1 में संयुक्त राज्य अमरीका की जिस न्यायिक शक्ति को सर्वोच्च न्यायालय और अन्य निम्न संघीय न्यायालयों में निहित करता है और अनुच्छेद 3, खण्ड 2 में न्यायालयों की जिस न्यायिक शक्ति को संघीय संविधान, संघीय कानूनों और संघीय सन्धियों के अधीन उत्पन्न होने वाले मुकदमों तक व्याप्त करता है उनमें न्यायालयों की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति निहित है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के कारण न्यायालय कांग्रेस के कानूनों को या राष्ट्रपति के आदेशों या प्रशासनिक अभिकरणों के नियमों और विनियमों या राज्यों के कानूनों को रद्द करने की शक्ति रखती है यदि वे संघीय संविधान के विपरीत या विरूद्ध हैं। संविधान की इन्हीं धाराओं ने न्यायालयों को संविधान का अभिभावक और संरक्षक तथा अन्तिम निर्वचक बना दिया है।

अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग सर्वप्रथम 1803 ई. में मार्बरी बनाम मैडीसन के मुकदम में किया था। उपर्युक्त प्रसिद्ध विवाद इस प्रकार का था कि 1801 ई. को राष्ट्रपति एडम्स ने मारबरी को कोलम्बिया जिले का न्यायाधिकारी नियुक्त किया, लेकिन उपर्युक्त आदेश मारबरी को भेजे जाने के पूर्व ही राष्ट्रपति एडम्स का कार्यकाल समाप्त हो गया और नवीन राष्ट्रपति जैफरसन व उनके न्यायमंत्री मेडीसन ने मारबरी को उपर्युक्त आदेश भेजने से इंकार कर दिया। अत: मारबरी ने मेडीसन के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अभियोग चलाया। मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने मेडीसन के कार्य को अवैध ठहराया। इस निर्णय के बाद से ही अमेरिकी न्याय व्यवस्था में यह सुनिश्चित हो गया है कि न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार है।

17.4.3 न्यायिक पुनरावलोकन का प्रभाव- सन् 1803 ई. में मारबरी बनाम मेडीसन के विवाद में न्यायमूर्ति मार्शल द्वारा न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया और तब से अब तक इस सिद्धान्त का अमरीका के राजनीतिक जीवन पर पर्याप्त संवैधानिक प्रभाव पड़ा है।

1. इस शक्ति के आधार पर ही सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य विधान-मण्डलों और संघीय कांग्रेस द्वारा निर्मित सैकड़ों नियमों को अवैधानिक घोषित कर न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया है।
2. इसके आधार पर ही राज्यों की तुलना में संघ की स्थिति सुदृढ़ हो गई है और साथ ही इस शक्ति ने राज्यों के अधिकारों की रक्षा करने में भी सहायता प्रदान की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. इसका व्यापक प्रभाव राज्य के पुलिस अधिकार पर पड़ता है, जिसमें सार्वजनिक सुरक्षा, जनकल्याण, स्वास्थ्य, नैतिकता आदि सामाजिक विषय निहित है।
4. इस शक्ति के बल पर सर्वोच्च न्यायालय ने न केवल संविधान की आत्मा और भाषा का ही निर्वचन ही किया है बल्कि नीतियों का निर्धारण भी किया है। इसलिए न्यायाधीशों को 'संविधान का नया निर्माता' तक कह दिया गया है।

17.4.4 न्यायिक पुनरावलोकन का महत्त्व– न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के प्रयोग द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान को समयानुकूल बनाया है, उसके कठोर स्वरूप को लचीला बनाया है, 'अन्तर्निहित शक्तियों के सिद्धान्त' (Theory of Implied Powers) का विकास किया है, राष्ट्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाया है। इस कारण न्यायिक पुनरावलोकन शक्ति का महत्त्व बढ़ता गया जिसके कारण निम्नलिखित है–

1. संविधान की पवित्रता की रक्षा–न्यायिक पुनरावलोकन संविधान की पवित्रता की रक्षा का एक अमोघ अस्त्र है। संविधान की रक्षा करते हुए उसने लोकतन्त्र के आदेश तथा प्रशासन की मनमानी से भी देश की रक्षा की है।
2. संघ प्रणाली की रक्षा–संघात्मक शासन–व्यवस्था में जहाँ केन्द्र और राज्यों के बीच अनेक संवैधानिक विवाद उत्पन्न हो सकते हैं, वहाँ यह उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक भी है, कि सर्वोच्च न्यायालय के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति हो और सर्वोच्च न्यायालय ने इसे भली भांति निभाया है। इसी आधार पर डॉ. फाइनर लिखते हैं कि ''यह एक सीमेन्ट है, जिसने सारे संघीय ढाँचे को स्थिरता दी है।''
3. नागरिक अधिकारों की रक्षा–सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी इस शक्ति के बल पर सदैव ही नागरिक अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की रक्षा का कार्य किया है।
4. कानून की वैधता पर विचार–कांग्रेस की अपेक्षा न्यायालय कानूनों की वैधता पर समुचित विचार कर सकता है। न्यायाधीश कानून के विशेषज्ञ होते हैं, और फिर न्यायालय तटस्थ भाव से कानून की वैधता पर विचार करने का सामर्थ्य रखता है।

17.5 सारांश

अमेरिका में संघीय न्यायपालिका की कार्य–प्रणाली एवं गौरवमय इतिहास को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह एक स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका है। कार्यपालिका, न्यायाधीशों को पदच्युत् नहीं कर सकती हैं। आजीवन न्यायाधीश अपने पदों पर बने रह सकते हैं। न्यायाधीशों की पदच्युति की प्रक्रिया अत्यन्त कठोर है, और व्यवहार में उसका क्रियान्वयन कठिन है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से यह प्रकट होता है कि उसका इतिहास स्वतन्त्रता, निर्भीकता तथा निष्पक्षता की कहानी है। अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय लोकतन्त्र का प्रहरी एवं स्वाधीनता की सुदृढ़ चट्टान कहा जा सकता है। इस प्रकार अमरीकी शासन व्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। वह संविधान का प्रहरी और विधानमण्डल का तीसरा सदन है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय के संगठन, शक्तियों और भूमिका का परीक्षण कीजिए।
2. ''सर्वोच्च न्यायालय संविधान और नागरिक अधिकारों का रक्षक है।'' इस कथन की दृष्टि में अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों एवं स्थिति का विवेचन कीजिए।
3. न्यायिक पुनरावलोकन रो आप क्या रागझते है? अगेरिका गें न्यायिक पुनरावलोकन के कार्यकरण की विवेचना कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. न्यायिक पुनरावलोकन से क्या तात्पर्य है?
2. न्यायिक पुनरावलोकन के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति कौन करता है?
2. 1803 ई. में किस वाद से न्यायिक पुनरावलोकन सिद्धान्त का प्रचलन हुआ?
3. अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय में कुल कितने न्यायाधीश होते हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-18
राजनीतिक दल

संरचना

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 अमेरिका में राजनीतिक दलों का उदय एवं विकास
18.3 दलीय संगठन
    18.3.1 राष्ट्रीय स्तर पर दलीय संगठन
    18.3.2 राज्य स्तर दलीय संगठन
    18.3.3 स्थानीय स्तर पर दलीय संगठन
18.4 अमरीकी दलों के सिद्धान्त एवं नीतियाँ
18.5 अमरीकी दलों की विशेषताएँ
    18.5.1 द्विदलीय प्रणाली
    18.5.2 वर्गीय मतभेद
    18.5.3 ढ़ीले संगठन
    18.5.4 दबाव समूहों का प्रभाव
    18.5.5 लूट प्रथा का प्रचलन
    18.5.6 संविधानेत्तर विकास
    18.5.7 मध्यमार्गीय नीतियाँ
    18.5.8 मौलिक सैद्धान्तिक मतभेदों का अभाव
    18.5.9 एकता और अनुशासन की भावना का अभाव
18.6 सारांश

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में अमरीकी राजनीतिक दल प्रणाली का वर्णन किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- अमरीकी राजनीतिक दलों के उद्भव तथा विकास को समझ सकेंगे,
- राजनीतिक दलों के संगठन एवं कार्यप्रणाली को समझ सकेंगे,
- राजनीतिक दलों की विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे,
- अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था में उनके महत्त्व को जान सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

''एक से अधिक राजनीतिक दलों का अस्तित्व ही सच्चे लोकतन्त्र की पहचान है।'' -**लास्की**

लोकतन्त्र के पहियों के रूप में राजनीतिक दल अपरिहार्य हैं। लोकतन्त्र का चाहे उसका कोई भी स्वरूप क्यों न हो, राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में यह अकल्पनीय है। इसलिए उन्हें 'लोकतन्त्र का प्राण' कहा गया है। यदि राजनीतिक दलों को शासन का चतुर्थ अंग कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। दल-प्रणाली के बिना लोकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली कार्य ही नहीं कर सकती। शासन का रूप चाहे संसदात्मक रूप हो या अध्यक्षात्मक, दल प्रणाली के अभाव में उसका क्रियान्वयन असम्भव है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राजनीतिक दल वास्तव में अमेरिकी संवैधानिक ढांचे को मानस और रूधिर प्रदान करके गतिशील तथा कार्यकारी बनाए हुए है। वे अमेरिका में प्रभावशाली ढंग से प्रजातान्त्रिक तरीकों द्वारा सरकार के संलाचन का कार्य कर रहे हैं। वे अमेरिकी राजनीतिक जीवन का अविच्छिन्न अंग बन गए हैं और अमेरिका के सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन पर छा गए हैं। उन्होंने एक प्रकार से अमेरिका के संविधान में परिवर्तन-सा कर दिया है। उन्हीं के प्रभाव से राष्ट्रपति का चुनाव, जो पहले अप्रत्यक्ष था, अब प्रत्यक्ष रूप से होने लगा है। इस कारण राजनीतिक दल अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। यद्यपि अमेरिका के संविधान निर्माताओं ने जनता से दलीय बुराइयों तथा विकृत्तियों से बचने की अपील की थी।

18.2 अमेरिका में राजनीतिक दलों का उदय एवं विकास

अमेरिकी संविधान-निर्माता दलीय व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे। यद्यपि वे दलों को तेय दृष्टि से देखते थे और ऐसी शासन व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे जो राजनीतिक दलों की गुटबन्दियों से मुक्त हो, तथापि उन्हें यह आशंका भी थी कि जिस प्रकार के लोकतन्त्र की वे परिकल्पना कर रहे हैं, उसमें राजनीतिक दलों का विकास अवश्य हो जाएगा। इतना ही नहीं, फिलाडेल्फिया सम्मेलन में ही दलों का भी अंकुर फूट चुका था। इस समय प्रतिनिधि दो गुटों में विभक्त थे-संघवादी और संघ-विरोधी। संघवादी संघीय सरकार को शक्तिशाली बनाना चाहते थे, जबकि संघ-विरोधी राज्य सरकारों को शक्तिशाली बनाने के पक्ष में थे। इस पृष्ठभूमि में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि प्रथम राष्ट्रपति वाशिंगटन के शासन-काल में ही अमेरिका में राजनीतिक दलों का स्पष्ट रुप से अभ्युदय हो गया। राष्ट्रपति हैमिल्टन के अधीन एक दल ऐसी कार्य-नीति का समर्थक था जिसमें यह माना गया था कि संघीय सरकार शक्तिशली हो। दूसरी ओर जैफरसन राज्य सरकारों को शक्तिशाली बनाने के पक्ष में था। संघवादियों और रिपब्लिकनों में परराष्ट्र नीति, कानून निर्माण आदि के प्रश्नों पर तो मतभेद थे ही, संविधान की व्याख्या करने में भी ये एकमत नहीं थे।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से दो विभिन्न दलों का प्रादुर्भाव हो चुका था जिनके अपने-अपने नेता थे और जिनके सिद्धान्तों तथा विचारों में परस्पर अन्तर था। फिर भी अभी तक राजनीतिक दल राजनीतिक मंच पर अपने पूर्ण रूप में प्रकट नहीं हुए थे। वाशिंगटन ने अपने मन्त्रिमण्डल में दोनों गुटों के नेताओं - हैमिल्टन और जैफरसन को स्थान दिया तथा दोनों गुटों की खाई को पाटने का प्रयत्न किया। परन्तु राजनीतिक दल के जो अंकुर प्रस्फुटित हो चुके थे, वे वृक्षों का रूप धारण करने से रूक नहीं सके। सन् 1776 ई. में राष्ट्रपति के चुनाव के समय दलबन्दी स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ गई, जिसमें संघवादियों ने राष्ट्रपति भवन में प्रवेश किया। अगले चुनावों में सत्ता जैफरसन के अनुयायियों के हाथ में पहुँच गई। अब रिपब्लिकन -डेमोक्रेटिक दल दो गुटों में विभक्त हो गया-एक गुट नेशनल रिपब्लिकन कहलाया और दूसरा डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन। सन् 1856 ई. में नेशनल रिपब्लिकन दल का पूर्ण विघटन हो गया। उसके भग्नावशेष में से एक दल का जन्म हुआ, जिसका नाम रिपब्लिकन दल रखा गया। इस प्रकार मौलिक रिपब्लिकन दल के अवशेष पर वर्तमान के दोनों राजनीतिक दलों का उदय और विकास हुआ-रिपब्लिकन दल तथा डेमोक्रेटिक दल। आज अमरीकी राजनीति में 'रिपब्लिकन' और 'डेमोक्रेटिक' दलों का ही प्रभुत्व है। शेष राजनीतिक दलों का राजनीतिक दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है।

18.3 दलीय संगठन

अमेरिका के दोनों प्रधान दलों का संगठन प्राय: समान है। दोनों ही दलों का संगठन सभी स्तरों-राष्ट्रीय, राज्यीय और स्थानीय स्तरों पर विद्यमान है। दलों के संगठन का निर्माण भी वहाँ की निर्वाचन व्यवस्था के इर्द-गिर्द हुआ है। दलों के पिरामिड स्वरूप को निम्नलिखित सारणी द्वारा अभिव्यक्त किया गया हैं-

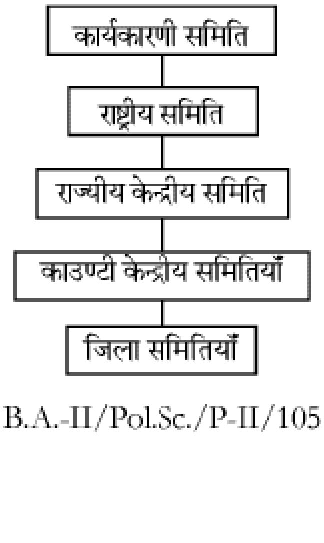

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

18.3.1 राष्ट्रीय स्तर पर दलीय संगठन- राष्ट्रीय स्तर पर दलीय संगठन के प्रमुख अंग है-1. राष्ट्रीय सम्मेलन, 2. राष्ट्रीय समिति, 3. राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा 4. राष्ट्रीय समिति सचिवालय। राष्ट्रीय सम्मेलन दोनों दलों में दल का सर्वोच्च निकाय माना जाता है। सम्मेलन, दल के सदस्यों में एकता स्थापित करता है और उसकी नीति की अभिव्यक्ति के मंच के रूप में कार्य करता है। यह सम्मेलन प्रत्येक चौथे वर्ष होता है और दल की ओर से राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों का चयन करता है। यह दल की नीति का निर्धारण भी करता है। चूँकि राष्ट्रीय सम्मेलन प्रत्येक चौथे वर्ष होता है, अत: दल का संचालन वस्तुत: राष्ट्रीय समिति नाम की संस्था करती है। व्यवहार में, राष्ट्रीय समिति नीति निर्धारण का कार्य करती हैं। राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय अपने दल के प्रत्याशी की ओर से समिति सक्रिय रूप से चुनाव प्रचार का कार्य करती है। निर्वाचन के पश्चात् समिति की राजनीतिक सक्रियता कम हो जाती है। राष्ट्रीय समिति का अध्यक्ष वही व्यक्ति होता है जिसे राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी चाहता है। समिति तो केवल राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित व्यक्ति के नाम का पुष्टिकरण करने का कार्य मात्र करती है। अध्यक्ष का मुख्य कार्य राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी निर्वाचन के अभियान का संचालन करना होता है। यदि उसके दल का व्यक्ति राष्ट्रपति बन जाता है तो उसे प्राय: मन्त्रिमण्डल में शामिल कर लिया जाता है। यदि उसके दल का प्रत्याशी हार जाता है तो वह अध्यक्ष पद पर नहीं रहता एवं समिति चार वर्ष के लिए दूसरा अध्यक्ष चुन लेती है। सचिवालय, दल की स्थिति सुदृढ़ बनाने का कार्य करता है।

18.3.2 राज्यों में दलीय संगठन- दोनों दलों का प्रत्येक राज्य में भी संगठन होता है। इनके भी सम्मेलन तथा राज्य समितियाँ रहती हैं। राज्यों के सम्मेलन प्रति दूसरे वर्ष होते हैं और इसमें वे सभी प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं जो राज्य के क्षेत्रों द्वारा निर्वाचित होना चाहते हैं। प्रत्येक राज्य में दलों की राज्य समिति होती है, इसमें राज्य की काउण्टियों तथा शहरों के प्रतिनिधि होते हैं। इसका कार्य राज्य में दल के हितों की रक्षा करना होता है।

18.3.3 स्थानीय स्तर पर दलीय संगठन- स्थानीय स्तर पर भी दोनों दलों का संगठन समान है। इस स्तर पर सबसे छोटी इकाई प्रोसिंक्ट कमेटी है। प्रत्येक समिति में दल का एक नेता और एक कप्तान होता है। वह दल की ओर से मतदाताओं से सीधे सम्पर्क स्थापित करने के लिए उत्तरदायी होता है। शहरी क्षेत्रों में वार्ड-समितियां भी होती हैं जो शहरी मतदान समितियों के कार्य का संचालन करती हैं। देहाती क्षेत्रों में कस्बा व ग्राम समितियां हैं। ये देहाती क्षेत्रों में प्रेसिंक्ट इकाइयों की देख-रेख करती हैं और स्थानीय शासन से सम्बन्धित कार्यों की योजना बनाती हैं। सारांश में, राजनीतिक दलों का राष्ट्र-व्यापी संगठन पाया जाता है।

18.4 अमरीकी दलों के सिद्धान्त एवं नीतियाँ

अमेरिकन राजनीतिक दलों में कोई महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक या वैचारिक भेदभाव नहीं पाए जाते हैं। लोकतन्त्र और प्रतिनिधि शासन के बारे में दोनों का एक ही मत रहा है। दोनों ही दल देश की प्रगति और समृद्धि को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहे हैं। दोनों ही दल वियतनाम युद्ध से सम्मान के साथ निकलना चाहते थे, सोवियत रूस और चीन से सहयोग करना चाहते थे। दोनों ही दलों में सभी वर्गों और विचारधाराओं के लोग हैं, दोनों ही न तो दक्षिणपंथी है और न वामपंथी। वहाँ दलों को अपनी नीति और कार्यक्रम की व्याख्या करने और उन्हें क्रियान्वित करने की विशेष चिन्ता नहीं होती, उनका सबसे बड़ा लक्ष्य तो शक्ति प्राप्त करना होता है तथा उसे बनाए रखना होता है।

फिर भी समय-समय पर दोनों दलों में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर मतभेद पैदा हुआ। उदाहरणार्थ देश में प्रभुत्व कृषि का हो या उद्योग का, आन्तरिक सुधार, दास प्रथा, आयात-निर्यात नीति, प्रथम महायुद्ध के बाद राष्ट्रसंघ की सदस्यता के प्रश्नों आदि मतभेद रहे हैं। पिछले वर्षों में रिपब्लिकन दल का कार्यक्रम यह रहा है-संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन, सैनिक तैयारी, राष्ट्रवादी चीन की सहायता करना, श्रमिकों के लिए बीमा, सरकारी नियन्त्रण का विरोध आदि। डेमोक्रेटिक दल के कार्यक्रम में निजी उद्योगों का समर्थन, राज्यों में जाति-भेद का अन्त, 'नाटो' सन्धि संगठन का समर्थन आदि। स्पष्ट है कि दोनों ही दलों की वैदेशिक तथा आर्थिक नीति में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। इसीलिए ब्राइस ने कहा है कि ''अमेरिका के राजनीतिक दल ऐसी दो बोतलों के समान हैं जो खाली हैं और जिन पर अलग-अलग लेबिल लगे हुए हैं।'' फाइनर के अनुसार, ''अमेरिका में केवल एक दल रिपब्लिकन-कम डैमोक्रेटिक है जो आदतों और पद की होड़ के द्वारा दो समान राज्यों में विभाजित है और जिसमें से एक का नाम रिपब्लिकन तथा दूसरे का डेमोक्रेटिक है।'' अत: अमरीका में दोनों ही दलों की विदेश एवं आन्तरिक नीति समान रही है। तथापि सिद्धान्तों और विचार सम्बन्धी आधारभूत अन्तरों के न होते हुए भी दोनों दलों के निश्चित राजनीतिक कार्यक्रम रहते हैं जिनके अनुसार वे कार्य करते हैं और चुनाव लड़ते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

18.5 अमरीकी दलों की विशेषताएँ

संयुक्त राज्य अमेरिका के राजनीतिक दलों की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है-

18.5.1 द्विदलीय प्रणाली- अमेरिका की दलीय व्यवस्था द्विदलीय है। प्रारम्भ में वहाँ पर फेडरलिस्ट और डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन्स थे, आज कल वहाँ दो ही दल है-रिपब्लिकन्स और डेमोक्रेटिक दल। वहाँ अन्य दल यदि मैदान में आते हैं तो वे निर्वाचन में सफलता के निकट नहीं पहुँच पाते। देशव्यापी तीसरे दल के निर्माण के समस्त प्रयत्न विफल हो चुके है। मुनरो के शब्दों में, ''जब द्विदलीय व्यवस्था ठीक कार्य कर रही है तो तीसरी और चौथी पार्टी के लिए कोई स्थान नहीं हैं।'' संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिकों के व्यावहारिक दृष्टिकोण ने तीसरे दल के विकास की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की।

18.5.2 वर्गीय मतभेद- अमेरिकी दलों में सैद्धान्तिक मदभेद न होकर, वर्गीय मतभेद है। वहाँ राजनैतिक दलों में विचारधारा के स्थान पर परम्परा एवं भौगोलिक प्रभाव का आधार अधिक है। कोई अमेरिकी किसी दल को प्राय: इस कारण नहीं अपनाता है कि वह दल उसकी विचारधारा के अनुकूल है, अपितु इसलिए ग्रहण करता है कि उसके पिता या सम्बन्धियों ने उसे अपना रखा है या वह दल उसके समाज, जाति, व्यवस्था या धर्म के साथ जुड़ा है। वस्तुत: अमेरिका में दल हितों के गुट है, सिद्धान्तों के समूह नहीं है। अमरीकी राजनीतिक दलों का वर्गीय चरित्र स्पष्ट है। उच्च वर्गों के लोग रिपब्लिक दल के समर्थक हैं तो नीग्रो लोगों का झुकाव डेमोक्रेटिक पार्टी की तरफ है।

18.5.3 ढीले संगठन- अमरीकी दलों का संगठन ढीला-ढाला है। ब्रिटिश दलों की भाँति कठोर दलीय संगठन एवं अनुशासन का अभाव है। जहाँ ब्रिटिश दल, राष्ट्र स्तर पर सुसंगठित होने से राष्ट्रीय नेतृत्व, निर्देशन और मार्गदर्शन देने की स्थिति में हैं वहाँ अमरीकी दल राष्ट्र स्तर पर सुसंगठित न होने से इस प्रकार की भूमिका निभाने में असमर्थ हैं। जहाँ ब्रिटिश प्रधानमंत्री पद से मुक्त होने के बाद भी दल को निर्देश देने एवं नियन्त्रित करने की स्थिति में होता है वहाँ अमरीकी राष्ट्रपति इस स्थिति में नहीं होता। लास्की ने कहा है कि अमरीकी दल ''केवल निर्वाचन के समय ही राष्ट्रीय दल है अन्यथा वे प्रभावशाली स्थानीय संस्थायें हैं जो विचार के इर्द-गिर्द नहीं बल्कि व्यक्तियों के इर्द-गिर्द संगठित हैं।''

18.5.4 दबाव समूहो का प्रभाव- अमरीकी दल विचारों, जाति या धर्म पर आधारित नहीं। वे ''हितों'' और ''हितों की सिद्धि'' पर आधारित संगठन हैं। दबाव समूह राजनीतिक दलों में सक्रिय रहते है और दबाव डालकर अपने स्वार्थों को प्राप्त करने में लगे रहते हैं। दबाव समूहों की बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुए यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि अमरीकी राजनीति दलों के बजाय दबाव समूहों की राजनीति में परिवर्तित हो गई है।

18.5.5 लूट प्रथा का प्रचलन- अमरीकी दल पद्धति पर लूट प्रथा, भ्रष्टाचार, पेशेवर राजनीतिज्ञों का जितना प्रभाव है, उतना ब्रिटिश दल पद्धति पर नहीं। अमरीकी दल स्वार्थ सिद्धि से प्रेरित होते हैं। राजनीति में जो लोग सक्रिय रहते है उनका ध्येय वैयक्तिक स्वार्थों की पूर्ति है, न कि सार्वजनिक हित साधना। अमरीकी दलों के साथ ऐसे लोग जुड़े रहते हैं जो बदले में कुछ निजी लाभ प्राप्त करना चाहते है। इसे वहाँ 'लूट प्रथा' भी कहते हैं।

18.5.6 संविधानेत्तर विकास- अमरीकी संविधान में दलीय व्यवस्था का कोई उल्लेख नहीं है। दलों की उत्पति, उनका विकास तथा संगठन सब कुछ परम्परागत है, संवैधानिक नहीं। संविधान निर्माता दल प्रणाली के दोषों के कारण उससे बचना चाहते थे, परन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। आज राजनीतिक दलों का ही बोलबाला है। ये राजनीतिक व्यवस्था के लिए अपरिहार्य बन गये हैं।

18.5.7 मध्यमार्गीय नीतियाँ- अमरीकी जनता उग्रता अथवा अतिवादियों को पसन्द नहीं करती। वह मध्य मार्ग में विश्वास करती है। अत: अमरीका में उग्र नीतियों अथवा क्रान्तिकारी परिवर्तनों में विश्वास करने वाले किसी दल को जन समर्थन प्राप्त नहीं हो सकता। परिणाम स्वरूप दलों को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त करने के लिए मध्यमार्गी नीतियों का समर्थन करना पड़ता है। यही कारण है कि अमरीकी दल सिद्धान्तों के स्थान पर समस्याओं अथवा मुद्दों पर अधिक बल देते हैं।

18.5.8 मौलिक सैद्धान्तिक मतभेदों का अभाव- अमेरिका के राजनीतिक दलों में मौलिक सैद्धान्तिक मतभेदों का अभाव है। वहाँ उनका कोई सुपरिभाषित सामाजिक उद्देश्य भी नहीं है। दोनों ही दलों की मुख्य नीतियाँ लगभग समान है। इन दलों का सम्बन्ध अधिकांशत: स्थानीय मुद्दों या समस्याओं से होता है, सामान्य या राष्ट्रीय मुद्दों से नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.5.9 एकता और अनुशासन की भावना का अभाव- एकता और अनुशासन ब्रिटिश दलों की पहचान है। वस्तुतः संसदीय प्रणाली की सफलता दलीय एकता और अनुशासन पर निर्भर करती है। वहाँ दल का कोई सदस्य अपनी राजनीतिक मृत्यु का खतरा मोल लेकर ही दलीय अनुशासन की अवहेलना कर सकता है। दूसरी ओर अमरीकी दल अत्यधिक अव्यवस्थित, असंगठित और अपूर्ण समूह है। अमरीका में दल का सचेतक कांग्रेस के सदस्यों पर प्रभावशाली सिद्ध नहीं होता। अनेक बार कांग्रेस के सदस्य अपने ही दल के राष्ट्रपति की नीतियों का घोर विरोध करते हैं और विपक्ष के साथ मतदान करते हैं।

18.6 सारांश

इस प्रकार अमरीकी संविधान-निर्माताओं ने राजनीतिक दलों को शंका की दृष्टि से देखा था। परन्तु कालान्तर में अमरीकी शासन प्रणाली में राजनीतिक दलों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गई। राजनीतिक दल मूल अमरीकी राजनीतिक संस्थायें हैं। उन्होंने सरकार का संचालन किया है। उन्होंने शक्ति पृथक्करण और संघीय व्यवस्था द्वारा उत्पन्न की गई बाधाओं को तोड़ा है। उन्होंने राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ किया है, वर्ग संघर्ष को कमजोर किया है तथा प्रजातन्त्र का विकास किया है। इसलिए दलीय व्यवस्था वहाँ के राजनीतिक जीवन की प्राण है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में दल व्यवस्था के स्वरूप एवं भूमिका की विवेचना करें।
2. संयुक्त राज्य अमेरिका की दलीय प्रणाली की विशेषताएँ बताइए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की भूमिका का संक्षिप्त परीक्षण कीजिए।
2. अमरीकी राजनीतिक दलों के संगठनात्मक ढांचे का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अमरीका के दो प्रमुख दलों के नाम बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-19
स्विट्जरलैण्ड का संविधान

संरचना

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 स्विस संविधान के अध्ययन का महत्त्व
19.2.1 विश्व का सर्वाधिक प्राचीन गणतन्त्र
19.2.2 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का गढ़
19.2.3 स्थायी तटस्थता
19.2.4 बहुल कार्यपालिका
19.2.5 विविधता में एकता
19.3 स्विस संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
19.3.1 प्राचीन इकाई
19.3.2 हैल्वेटिक प्रजातन्त्र
19.3.3 नेपोलियन युग
19.3.4 वियना कांग्रेस और नवीन संविधान
19.3.5 सन् 1874 ई. का संविधान
19.4 स्विस संविधान की विशेषताएँ
19.4.1 निर्मित एवं लिखित संविधान
19.4.2 कठोर संघात्मक स्वरूप
19.4.3 निराला संघात्मक स्वरूप
19.4.4 गणतन्त्रवादी स्वरूप
19.4.5 प्रत्यक्ष लोकतन्त्र
19.4.6 बहुल कार्यपालिका
19.4.7 निराली संसदीय व्यवस्था
19.4.8 अनूठी व्यवस्थापिका
19.4.9 अधिकार पत्र का अभाव
19.4.10 न्यायपालिका की दुर्बल स्थिति
19.4.11 कैण्टनों की स्वायत्तता
19.4.12 विभिन्नता में एकता
19.4.13 शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का अभाव
19.4.14 धर्मनिरपेक्ष राज्य
19.5 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत स्विट्जरलैण्ड के संविधान का विकास: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं महत्त्व का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने पश्चात् आप :

- स्विस संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- स्विस संविधान की विशेषताओं को समझ सकेंगे,
- स्विस बहुल कार्यपालिका की भूमिका को समझ सकेंगे,
- संसदीय और अध्यक्षीय शासन प्रणाली के मिश्रण का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- स्विस संविधान के महत्त्व को जान सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

''स्विट्जरलैण्ड अशान्ति के समुद्र में शान्ति का द्वीप है।'' **जॉन ब्राउन मैसन**

स्विट्जरलैण्ड विश्व के सबसे छोटे स्वतन्त्र राज्यों में से एक है। प्राकृतिक दृष्टि से रमणीक यह एक पर्वतीय देश है जिसके उत्तर में जर्मनी, पूर्व में आस्ट्रिया, दक्षिण में इटली और पश्चिम में फ्रांस है। साधारण व्यक्ति के लिए स्विट्जरलैण्ड विश्व का सबसे प्रमुख प्राकृतिक सौन्दर्य का केन्द्र स्थल है, लेकिन राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी के लिए परम महत्त्व का विषय है। यह प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का घर और विश्व की सबसे प्रमुख राजनीतिक प्रयोगशाला है। यदि इंग्लैण्ड संसदीय पद्धति का जन्मदाता है और अमेरिका संघ प्रणाली का आदर्श है तो स्विट्जरलैण्ड को प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के प्रयोग की राजनीतिक प्रयोगशाला होने का गौरव प्राप्त है। वस्तुत: स्विस नागरिकों में प्रजातन्त्र की भावना प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। वे अपने देश के शासन में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। इसलिए आज स्विट्जरलैण्ड विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्रजातन्त्रों में से एक माना जाता है।

19.2 स्विस संविधान के अध्ययन का महत्त्व

स्विट्जरलैण्ड का संवैधानिक महत्त्व इस बात में है कि यह प्रत्यक्ष लोकतंत्र का घर है जहाँ जनता की सम्प्रभुता को व्यावहारिक और वास्तविक रूप देने का महान् कार्य किया गया है। विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा इस देश से प्रत्यक्ष लोकतंत्र की संस्थाएँ अधिक विकसित और विस्तृत हुई है और आज तक व्यवहार में लाई जा रही हैं। अत: सुविधा की दृष्टि से स्विट्जरलैण्ड के संवैधानिक महत्त्व का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है :

19.2.1 विश्व का सर्वाधिक प्राचीन गणतन्त्र :- स्विट्जरलैण्ड विश्व का सर्वाधिक प्राचीन गणतन्त्रीय राज्य है। स्विस गणतन्त्र का जन्म सन् 1848 ई. में हुआ था। सन् 1848 ई. के पूर्व भी स्विट्जरलैण्ड में इस प्रकार का राजतन्त्र नहीं रहा, जिस प्रकार का राजतन्त्र इंगलैण्ड, फ्रांस या सोवियत रूस में था। स्विस नागरिकों में गणतन्त्रवाद की भावना इतनी प्रबल है कि वहाँ राजा की ही नहीं वरन् किसी शासक की भी निरंकुश शक्ति को सहन नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि स्विस कार्यपालिका शक्ति किसी एक व्यक्ति में निहित नहीं होकर, अनेक व्यक्तियों में निहित है। रैपार्ड इसी बात को दृष्टि में रखते हुए लिखते हैं कि ''स्विट्जरलैण्ड युगों से गणराज्य रहा है।''

19.2.2. प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का गढ़ :- स्विट्जरलैण्ड प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की राजनीतिक प्रयोगशाला के रूप में सुविख्यात है। स्विस संविधान ही प्रारम्भिक सभाओं, लोकनिर्णय, आरम्भिक आदि प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की नवीन पद्धतियों का उद्गम स्थल है। अत: यह ठीक ही कहा गया है कि यदि ब्रिटेन संसदात्मक व्यवस्था का और अमरीका संघात्मक व्यवस्था का जनक है, तो स्विट्जरलैण्ड आधुनिक विश्व में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का घर होने का दावा कर सकता है।

19.2.3 स्थायी तटस्थता :- अन्तरराष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से भी स्विट्जरलैण्ड की राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। स्विट्जरलैण्ड ने स्थायी तटस्थता को अपनाकर 'अशान्ति के समुद्र में बसने वाले शान्ति द्वीप' की स्थिति प्राप्त कर ली है। सर्वप्रथम 1815 ई. की वियना कांग्रेस द्वारा स्विट्जरलैण्ड की स्थायी तटस्थता को मान्यता प्रदान की गयी। 1919 की वर्साय सन्धि और उसके बाद के अन्य अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में स्विट्जरलैण्ड ने सदा इस बात पर बल दिया कि स्विट्जरलैण्ड को स्थायी रूप से एक तटस्थ राज्य घोषित किया जाए और सभी राज्यों ने स्विट्जरलैण्ड की इस स्थिति को स्वीकार किया। विश्व के सभी देशों ने इसकी स्थायी तटस्थता को मान्यता दी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.2.4. बहुल कार्यपालिका :- स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका भी अनूठी है, जिसका उदाहरण विश्व में बहुत कम मिलता है। भारत, ब्रिटेन और अमरीका में एकल कार्यपालिका ही है, लेकिन स्विट्जरलैण्ड में 7 सदस्यों की बहुल कार्यपालिका को अपनाया गया है। यह कार्यपालिका न तो पूर्ण अंशों में संसदात्मक है और न ही अध्यक्षात्मक, वरन् इसमें दोनों के ही गुणों को ग्रहण करते हुए विश्व के सम्मुख एक नवीन उदाहरण उपस्थित किया गया है।

19.2.5 विविधता में एकता :- स्विट्जरलैण्ड ने विविधता के बीच एकता का भी आदर्श उदाहरण उपस्थित किया है। इस देश में यद्यपि विभिन्न भाषा-भाषी और धर्मावलम्बी पाए जाते हैं तथापि उनमें राष्ट्रीय एकता विद्यमान है। स्विस गणतन्त्र राष्ट्र की एकता और सुदृढ़ता का अपूर्व आदर्श है। देश के 19 पूर्ण कैण्टनों और 6 अर्द्ध-कैण्टनों में कई प्रजातियाँ निवास करती हैं जो विभिन्न भाषाओं और धर्मों की अनुगामिनी हैं। देश की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या जर्मन भाषा-भाषी है, लगभग पाँचवाँ भाग फ्रेंच भाषा-भाषी है और शेष इटालियन भाषा बोलते हैं। किन्तु इन सब विविधताओं में एकता का अद्भुत अस्तित्व स्विट्जरलैण्ड में देखने को मिलता है। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण इस देश के संविधान का अपूर्व महत्त्व है।

19.3 स्विस संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्विस संविधान का वर्तमान रूप वस्तुत: एक क्रमिक विकास का परिणाम है।

19.3.1 प्राचीन इकाई (1291-1798) :- वर्तमान स्विट्जरलैण्ड के निर्माण की प्रक्रिया और इसके संवैधानिक विकास का प्रारम्भ 1291 से समझा जा सकता है जबकि ऊरी, स्वेज और अण्डरवाल्डेन द्वारा आत्म रक्षा हेतु एक राज्यमण्डल की स्थापना की गयी। यही से भावी स्विस-संघ का सूत्रपात होता है। इसके पूर्व इन कैण्टनों में कोई समन्वयकारी सत्ता नहीं थी। ये कैण्टन हेब्सबर्ग शासकों के अधीन थे। सन् 1353 ई. में इस राज्यमण्डल में आठ कैण्टन शामिल हो गए। सन् 1648 तक राज्यमण्डल में कैण्टनों की संख्या तेरह हो गई। सन् 1648 की वेस्टफेलिया की सन्धि में इसे एक सम्प्रभु राज्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई।

19.3.2 हैल्वेटिक प्रजातन्त्र (1798-1803) :- स्विस राज्यमण्डल की दुर्बलता का लाभ उठाकर फ्रांस ने सन् 1798 ई. में इस पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। नेपोलियन ने राज्यमण्डल के स्थान पर फ्रांसीसी नमूने का हेल्वेटिक गणतन्त्र स्थापित कर दिया। अब शासन का स्वरूप एकात्मक और केन्द्रीकृत हो गया। सर्वत्र नौकरशाही का बोलबाला बढ़ गया। अत: इस व्यवस्था के प्रति असन्तोष की लहर हुई। इसके फलस्वरूप सन् 1803 ई. में नेपोलियन ने हेल्वेटिक गणतन्त्र का अन्त कर दिया।

19.3.3 नेपोलियन युग (1803-1815) :- स्विस लोगों के विद्रोह से बाध्य होकर 1803 ई. में नेपोलियन को कैण्टनों की स्वतन्त्रता फिर से स्वीकार करनी पड़ी। 1803 के मध्यस्थता अधिनियम द्वारा स्विट्जरलैण्ड में पुन: एक संघात्मक राज्य की स्थापना की गई। केन्द्र में एक भाषा डायट की स्थापना हुई। 6 नए कैण्टन स्थापित किए गए। इस प्रकार कुल कैण्टनों की संख्या 19 हो गई।

19.3.4 वियना कांग्रेस और नवीन संविधान (1815-1848) :- सन् 1813 ई. में नेपोलियन के पतन के बाद यूरोप के मित्र राष्ट्रों ने 1814 में स्विस 'डाइट' (Diet) को एक नया संविधान बनाने के लिए विवश किया। यह नव-निर्मित संविधान 1815 के पैरिस समझौते के रूप में वियना कांग्रेस द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इसके द्वारा कैण्टनों को शासन के उस रूप में बनाए रखने की अनुमति दे दी गई, जो उनके पुराने संविधान में प्रचलित थी। वियना कांग्रेस ने जहाँ एक ओर स्विट्जरलैण्ड की आन्तरिक राजनीतिक व्यवस्था निर्धारित की, वहाँ स्थायी रूप से इसकी तटस्थता को मान्यता प्रदान कर सदैव के लिए इसकी विदेश नीति भी निर्धारित कर दी। यह वस्तुत: इस कांग्रेस का सबसे महत्त्वपूर्ण और स्थायी कार्य था। इसी समय स्विस राज्यमण्डल की सदस्य संख्या 22 हो गई।

सन् 1815 के पेरिस समझौते द्वारा अनुसमर्थित संविधान के अन्तर्गत सब कैण्टनों को समान राजनीतिक स्तर का मान लिया गया और स्थानीय मामलों में उन्हें पूरी स्वतंत्रता प्रदान की गई। इस व्यवस्था के फलस्वरूप सन् 1815 से 1830 तक देश में शांति और समृद्धि रही परन्तु उदारवादी भावना और लोकतन्त्र की प्रगति को अवश्य धक्का पहुंचा। जुलाई, 1830 में फ्रांस में पुन: क्रान्ति होते ही स्विट्जरलैण्ड में भी उदारवादी क्रान्ति का बिगुल बज गया। इसके फलस्वरूप देश में प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर एक आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ, जिसका उद्देश्य कैण्टनों के संविधान में परिवर्तन करना था। सन् 1847 में उग्र संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई और 7 कैण्टनों ने राज्यमण्डल से पृथक् होने की घोषणा कर दी। परिणाम स्वरूप सन् 1847 ई. में गृह युद्ध छिड़ा और राज्य संघ की सेनाओं ने पृथक् होने वाले कैण्टनों को पराजित कर दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गृहयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् यह अनुभव किया गया कि केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली होनी चाहिए। फलस्वरूप फरवरी, 1848 ई. में एक आयोग की नियुक्ति की गई। इस आयोग ने एक नया संविधान बनाया। जिसे लोगों ने जनमत-संग्रह द्वारा स्वीकार किया। इससे वह संविधान अस्तित्व में आया जिसे सन् 1848 का संविधान कहा जाता है।

19.3.5 सन् 1874 का संविधान :- सन् 1848 ई. के संविधान के लागू होने के बाद यह मांग की जाने लगी कि केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में और अधिक वृद्धि होनी चाहिए। अत: संघीय सभा द्वारा एक पूर्णत: संशोधित संविधान का प्रारूप तैयार किया गया, जिसे कैण्टनों और जनता के बहुमत द्वारा स्वीकार किये जाने के बाद 26 मई, 1874 ई. को लागू कर दिया। यही स्विट्जरलैण्ड का वर्तमान संविधान है।

19.4 स्विस संविधान की विशेषताएँ

स्विस संविधान विश्व का एक अनूठा संविधान है। इस संविधान द्वारा जिस शासन प्रणाली की स्थापना की गई है, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। यह न तो विशुद्ध संसदात्मक है और न विशुद्ध अध्यक्षात्मक ही: बल्कि इसमें दोनों का सम्मिश्रण किया गया है। अत: स्विस संविधान जिन प्रमुख विशेषताओं के कारण अनुपम और अनूठा है, वे निम्नलिखित हैं -

19.4.1 निर्मित एवं लिखित संविधान :- स्विट्जरलैण्ड का संविधान अपने मूल रूप में निर्मित और लिखित है। जिसे एक आयोग ने काफी विचार-विमर्श के बाद तैयार किया था और जो संघ की डाइट द्वारा स्वीकृत होकर 12 सितम्बर, 1848 से देश में लागू किया गया था। बाद में सन् 1874 ई. तक संविधान में पुन: व्यापक परिवर्तन किए गए, तथापि शासन का मूल ढाँचा 1848 में निर्मित और 1874 में संशोधित प्रस्ताव पर ही आधारित है। अत: यह कहा जा सकता है कि यह निश्चित प्रक्रिया द्वारा निर्मित हुआ है।

स्विट्जरलैण्ड का संविधान एक लम्बा प्रलेख है। जिसमें 123 धाराएँ और 3 इकाई है। स्विस संविधान अमेरिकी संविधान की अपेक्षा काफी बड़ा है। स्विस संविधान के इस अपेक्षाकृत बड़े आकार के पीछे मूल कारण संविधान निर्माता संघ सरकार तथा कैण्टनों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन चाहते थे, अत: उन्होंनें संविधान में उन साधारण बातों का भी उल्लेख कर दिया जिन्हें सामान्य विधेयकों के अधिकार-क्षेत्रों में रहना चाहिए था जैसे -मछली पकड़ना, जुआ खेलना आदि।

19.4.2 कठोर संविधान :- स्विस संविधान एक कठोर संविधान है। इसे सरलता से संशोधित नहीं किया जा सकता। संविधान में संशोधन का प्रस्ताव संघीय सभा के दोनों सदनों द्वारा पारित होना चाहिए और उसके बाद उसका समर्थन मतदाताओं तथा कैण्टनों के बहुमत से होना चाहिए। फिर भी यह संविधान इतना कठोर नहीं है, जितना कि अमेरिका का। यही कारण है कि जहाँ स्विस संविधान में अब तक 57 संशोधन हो चुके हैं, वहाँ अमेरिकी संविधान में अब तक केवल 27 संशोधन हुए है। स्विस संविधान की कठोरता से इसकी संघात्मकता की रक्षा होती है, परन्तु संविधान में परिस्थितियों के अनुरूप ढलने की क्षमता भी है।

19.4.3 निराला संघात्मक स्वरूप :- अमरीकी संविधान की भांति स्विस संविधान भी संघात्मक शासन-प्रणाली की स्थापना करता है। स्विस संविधान अनुच्छेद 1 में स्विट्जरलैण्ड को एक राज्यमण्डल घोषित किया गया है। परन्तु यह एक संघ है , परिसंघ नहीं। स्विस संघ कैन्टनों का कोई ढीला संघ नहीं। इसके कैन्टनों को संघ से पृथक् होने का कोई अधिकार नहीं। यह ''अविनाशी कैन्टनों का अविनासी संघ है।'' इसके कैन्टनों को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता और न कभी संघ को समाप्त किया जा सकता है। स्विस संघ में 19 पूर्ण कैण्टन तथा 6 अर्द्ध-कैण्टन सम्मिलित है। अत: स्विस संविधान में संघात्मक शासन के सभी प्रमुख लक्षणों -लिखित और कठोर संविधान, संविधान द्वारा केन्द्र और इकाइयों में शक्तियों का विभाजन, संघीय न्यायपालिका, राज्यों की नागरिकता और संघीय व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन में सभी इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गयी है।

19.4.4 गणतन्त्रवादी स्वरूप :- स्विस संविधान का स्वरूप गणतन्त्रात्मक है। यह विश्व का सबसे प्राचीनतम गणराज्य है। संवैधानिक दृष्टि से इस गणराज्य का जन्म 1848 ई. में ही हुआ, किन्तु गणतन्त्र की परम्परा यहाँ लगभग 600 वर्ष से चली आ रही है। 1870 ई. तक सान मेरिनो तथा हंसा टाऊन जैसे दो कम महत्त्वपूर्ण राज्यों के अतिरिक्त स्विट्जरलैण्ड ही यूरोप का एकमात्र गणराज्य था। यूरोप और एशिया में प्राय: सभी देशों में जब स्वेच्छाचारी और निरंकुश राजाओं का शासन था, उस समय भी स्विट्जरलैण्ड के समस्त कैण्टनों में लोकतन्त्रात्मक गणराज्य स्थापित था और वहां की जनता को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे, जिनके आधार पर वह शासन तथा शासनाधिकारियों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखती थी। वहां किसी भी समय राजतन्त्र नहीं रहा। रेपार्ड का कहना है कि ''स्विट्जरलैण्ड में युगों से गणतन्त्र रहा है।''

Jain (Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.4.5 प्रत्यक्ष लोकतन्त्र :– प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र स्विस संविधान की आधारभूत विशेषता है। स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थाओं –विशेषकर जनमत संग्रह और आरम्भक का इतना अधिक प्रयोग होता है कि वे प्राय: स्विस संस्थायें बन गयी हैं। संघीय स्तर पर देश की जनता कानून बनाने में भाग लेती है, व्यवस्थापिका द्वारा बनाए हुए किसी कानून को रद्द कर सकती है। यही अवस्था कैण्टनों में भी है। कुछ कैण्टनों में जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को वापस बुलाकर उनका पद भी समाप्त कर सकती है। अत: शासन के प्रत्येक कार्य में जनता प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य भाग लेती है। इसके कतिपय कैन्टनों में इस प्रकार की व्यवस्था का प्रचलन है।

19.4.6 बहुल कार्यपालिका :– स्विस कार्यपालिका, जो संघीय परिषद् कहलाती है, बड़ी अनूठी है। यह एक बहुल कार्यपालिका है जिसमें सात सदस्य होते हैं। सदस्यों का निर्वाचन चार वर्षों के लिए संघीय सभा द्वारा होता है। इन सभी सदस्यों की स्थिति समान होती है। इनमें प्रत्येक व्यक्ति बारी–बारी से एक वर्ष के लिए परिषद्–प्रधान होता है। इस प्रधान को ही स्विट्जरलैण्ड का राष्ट्रपति कहा जाता है। परन्तु यहाँ राष्ट्रपति वस्तुत: राष्ट्र की धुरी नहीं होता। उसमें तथा परिषद् के अन्य सदस्यों में कोई अन्तर नहीं होता और वह किसी भी प्रकार परिषद् के अन्य सदस्यों की अपेक्षा राष्ट्र के शासन संचालन के लिए अधिक उत्तरदायी नहीं होता। वह राष्ट्र की सर्वोच्च अधिशासी समिति का सभापति मात्र होता है और इस स्थिति से यह औपचारिक प्रधान के रूप में उन औपचारिक क्रियाकलापों को करता है, जिन्हें अन्य देशों के राज्य प्रधान करते हैं। इस प्रकार परिषद् के सभी सदस्यों की स्थिति समान है।

19.4.7 निराली संसदीय व्यवस्था :– स्विस संघीय परिषद् में एक साथ अमरीकी अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का स्थायित्व और ब्रिटिश संसदात्मक शासन प्रणाली के उत्तरदायित्व की भावना पायी जाती है। उदाहरणत: स्विस संघीय परिषद् संघीय सभा की सेविका और अभिकर्त्ता है। यह उसके आदेश और निर्देश में कार्य करती है। यह उसके प्रति उत्तरदायी है। परन्तु इस पर भी स्विस संघीय सभा स्विस संघीय परिषद् को, ब्रिटिश संसद की भांति, अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके समय से पूर्व पदच्युत नहीं कर सकती और न ही स्विस संघीय परिषद्, ब्रिटिश कार्यपालिका (मन्त्रिमण्डल) की तरह, संघीय सभा को समय से पूर्व विघटित कर सकती है। इस तरह अमरीकी राष्ट्रपति के कार्यकाल की तरह स्विस संघीय परिषद् का कार्यकाल निश्चित होता है। स्थायित्व की दृष्टि से अध्यक्षीय प्रकार की होते हुए भी स्विट्जरलैण्ड में शक्तियों का वह पृथक्करण नहीं पाया जाता, जो अध्यक्षीय प्रकार की शासन–व्यवस्थाओं में पाया जाता है। इस प्रकार शासन–व्यवस्था अनेक बातों में संसदीय शासन–व्यवस्था से मिलती–जुलती है और अनेक बातों में अध्यक्षीय शासन–व्यवस्था से मिलती है।

19.4.8. अनूठी व्यवस्थापिका :– स्विस व्यवस्थापिका के दो सदन हैं– राज्यपरिषद् और राष्ट्रीय परिषद। परन्तु सम्भवत: विश्व में स्विट्जरलैण्ड ही एक ऐसा देश है जहाँ विधायिका के दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर हैं। अमरीकी प्रतिनिधिसभा सीनेट के सामने फीकी है। ब्रिटिश लार्डसभा तुलना में कॉमन सभा से बहुत कमजोर है, जबकि स्विस व्यवस्थापिका के बारे में स्ट्रांग ने लिखा है– ''संसार में स्विस व्यवस्थापिका ही एक ऐसी व्यवस्थापिका है जिसके दोनों सदनों के कार्यों में कोई महत्त्वपूर्ण भेद नहीं है।'' स्विस कार्यपालिका की तरह स्विस व्यवस्थापिका भी संसार में अद्वितीय है। स्विस व्यवस्थापिका के दोनों सदनों की समान स्थिति है।

19.4.9. अधिकार पत्र का अभाव :– स्विस संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों को क्रमबद्ध रूप से किसी एक इकाई में नहीं लिखा गया। जैसाकि भारतीय संविधान के भाग 3 में लिखा गया है। फिर भी स्विस संविधान के अनेक अनुच्छेदों में नागरिकों के अधिकारों की व्यवस्था की गई है। उदाहरणार्थ संविधान के अनुच्छेद 4 में उसे अधिकार की रक्षा का प्रावधान है, जिसे कानूनी स्वतन्त्रता कहा जाता है। अनुच्छेद 27 में सबके लिए यह अधिकार देने की व्यवस्था है कि कैण्टनों के स्कूलों में सभी धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त के आधार पर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर सकें। अनुच्छेद 49 के अन्तर्गत सबको धर्म व उपासना सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी गई। संविधान का अनुच्छेद 55 सबको प्रेस व प्रकाशन सम्बन्धी स्वतन्त्रता देता है। अनुच्छेद 60 स्विट्जरलैण्ड के सभी नागरिकों को इस बात का अधिकार देता है कि, वे किसी भी कैण्टन में स्वतन्त्रता पूर्वक रह सकें और वहाँ उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव न हो। अर्थात् स्विस संविधान में अधिकारों का अलग से इकाई नहीं है।

19.4.10 न्यायपालिका की कमजोर स्थिति :– संघीय शासन–व्यवस्था का यह एक मुख्य लक्षण माना जाता है कि संघीय न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या और रक्षा का अधिकार प्राप्त हो अर्थात् वह संघ और इकाइयों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता की जाँच करने और किसी विधि के संविधान के प्रतिकूल होने पर उन्हें अवैध घोषित करने में सक्षम हो। इसे ही संवैधानिक भाषा में ''न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार'' कहते हैं। लेकिन स्विस संविधान संघीय, न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार केवल आंशिक रूप में ही देता है। स्विस सर्वोच्च न्यायालय, जिसे संघीय न्यायाधिकरण कहा जाता है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कैण्टनों के कानूनों और प्रशासनिक कार्यों को तो अवैध घोषित कर सकता है, पर संघीय व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून अथवा संघीय प्रशासन के कार्यों को अवैध घोषित नहीं कर सकती। स्पष्ट है कि स्विस संघीय न्यायपालिका को संविधान की रक्षा का कार्य नहीं सौंपा गया है। उसकी स्थिति संयुक्त राज्य अमेरिका की न्यायपालिका की तुलना में कमजोर है।

19.4.11 कैण्टनों की स्वायत्ता :- स्विस संघ में सम्मिलित कैण्टनों को पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त है। कैण्टनों के अलग-अलग संविधान हैं। उनको वे सभी शक्तियाँ प्राप्त हैं, जो स्पष्ट रूप से संघीय सरकार को नहीं दी गई हैं। यद्यपि संघ स्थापित करने की प्रक्रिया में कैण्टनों को अपनी सम्प्रभुता को थोड़ा सीमित अवश्य करना पड़ा, फिर भी कैण्टनों के अधिकार पूर्णत: सुरक्षित हैं। इतना ही नहीं, वास्तव में संघीय सरकार को कैन्टनों से ही शक्ति प्राप्त हुई है। स्विस नागरिक 'राज्यमण्डल' की अपेक्षा कैण्टन को अधिक चाहते हैं। ''मैं कैन्टन का हूँ और कैन्टन मेरा है'' जैसी भावना 'राज्यमण्डल' के प्रति नहीं पाई जाती। स्विस नागरिकों के लिए कैन्टन ही सब कुछ हैं, राज्यमण्डल एक नीरस प्रजातंत्र है, कैन्टन एक जीवित अवयव है। कैण्टनों के प्रति स्विस नागरिकों की भक्ति ने उनकी स्वायत्तता को बरकरार रखा है।

19.4.12 विविधता में एकता :- स्विट्जरलैण्ड विविध धर्मों, भाषाओं और संस्कृतियों का देश है। फिर भी वहाँ जातीय वैमनस्य, धार्मिक मतान्धता और भाषायी कटुता नहीं है। सभी एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता का दृष्टिकोण अपनाते हैं और अपने आपको 'स्विस' समझते हैं। राष्ट्रीय एकता और देश भक्ति की भावनायें जो स्विस लोगों में विद्यमान हैं वे अन्यत्र नहीं पायी जातीं।

19.4.13 शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त का अभाव :- स्विस संविधान में अमेरिकी संविधान की भाँति शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है। वहाँ तो सारी शक्ति के अन्तिम स्रोत वहाँ के कैण्टन और नागरिक हैं। स्विस विधानमण्डल का कार्यपालिका पर पूर्ण अधिकार है। कार्यपालिका केवल विधानमण्डल के निर्णयों को लागू करती है। स्विस न्यायपालिका को भी अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की भांति संविधान की व्याख्या करने अथवा न्यायिक पुनरावलोकन का कोई अधिकार नहीं है। संविधान में संशोधन प्रत्यक्ष लोकतान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा होता है और न्यायपालिका पर स्विस संविधान की रक्षा करने का दायित्व नहीं है।

19.4.14 धर्मनिरपेक्ष राज्य :- संविधान द्वारा स्विट्जरलैण्ड में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है। अनुच्छेद 27 के अनुसार स्विट्जरलैण्ड के सभी नागरिकों को धर्मनिरपेक्षता के साथ प्रारम्भिक शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 49 तथा 50 के अनुसार सभी नागरिकों को धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। किसी भी धर्म के नागरिकों को विशेषाधिकार प्रदान नहीं किया गया है।

19.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में, स्विट्जरलैण्ड विश्व की सबसे प्रमुख राजनीतिक प्रयोगशाला है और उसका संविधान बहुत विलक्षण है। स्विट्जरलैण्ड निश्चित ही उन देशों में से है जिसकी शासन-व्यवस्था ने सारे विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है, और यह सम्पूर्ण संवैधानिक जगत के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। अत: यदि इंगलैण्ड संसदीय पद्धति की संस्थाओं का जन्म दाता है और अमेरिका संघ प्रणाली का प्रतिमान है तो स्विट्जरलैण्ड प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का अत्युत्तरा उदाहरण है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्विट्जरलैण्ड के संविधान की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. स्विस संविधान की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। कहाँ तक उन्होंने स्विट्जरलैण्ड में सरकार को स्थिरता और कुशलता प्रदान की है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विस संविधान के अध्ययन का क्या महत्त्व है ?
2. स्विस संविधान के विकास के मुख्य चरणों पर प्रकाश डालिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विस संविधान में कितने अनुच्छेद हैं ?,
2. स्विस संविधान में कितने संशोधन किये गये हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-20
स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था

संरचना

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 स्विस संघीय व्यवस्था की विशेषताएँ

20.2.1 दोहरी शासन व्यवस्था

20.2.2 शक्तियों का विभाजन

20.2.3 संविधान की सर्वोच्चता

20.2.4 स्वतन्त्र न्यायपालिका

20.2.5 कैण्टनों की स्वायत्तता

20.2.6 दोहरी नागरिकता

20.3 स्विस संघ के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति

20.4 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। स्विट्जरलैण्ड में अमेरिका की भांति संघीय शासन प्रणाली अपनाई गई है, फिर भी स्विस संघवाद अमेरिकी संघवाद से बहुत भिन्न है, जिसे विद्यार्थी निम्नलिखित तथ्यों का अध्ययन करने से समझ सकेंगे-

- स्विस संघीय व्यवस्था के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- संघीय व्यवस्था की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- स्विस संघ के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति एवं कैण्टनों और संघ सरकार के आपसी सम्बन्धों को समझ सकेंगे।
- स्विस संघ की केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को समझ सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

स्विस संविधान में स्विट्जरलैण्ड के लिए 'राज्यमण्डल' शब्द का प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं, इस 'राज्यमण्डल' में सम्मिलित कैण्टनों को 'प्रभुसत्ता सम्पन्न कैण्टन' भी कहा गया है। स्विस संविधान के अनुच्छेद 5 में कहा गया है कि 'स्विस राज्यमण्डल, कैण्टनों के राज्य-क्षेत्रों और उनकी प्रभुसत्ता की गारन्टी देता हैं।' किन्तु यथार्थ दृष्टि से विचार करने के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्विस संविधान एक राज्यमण्डल की नहीं, अपितु संघ की स्थापना करता है। स्विस संविधान ढीले संघ की स्थापना नहीं करता है, वरन् उसमें केन्द्र को पर्याप्त शक्ति-सम्पन्न बनाया गया है। स्विस कैण्टनों को संघ से अलग हो जाने का अधिकार नहीं है। इसे 'अक्षुण्ण कैन्टनों का अक्षुण्ण संघ कहा गया है।' कैण्टन अपने आन्तरिक शासन के सम्बन्ध में पूर्ण स्वायत्तशासी हैं, किन्तु उन्हें प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य नहीं कहा जा सकता। कैण्टनों की प्रभुसत्ता पूर्ण नहीं है, उनकी प्रभुसत्ता का कुछ अंश केन्द्रीय सरकार में निहित है। अत: इस संघ में 19 पूर्ण और 6 अर्द्ध कैण्टनों से मिलकर स्विस संघ का निर्माण हुआ है। जर्चर के लिखा है- ''संघवाद वह

मूल वैधानिक सिद्धान्त है, जिसके ऊपर स्विट्जरलैण्ड का शासन आधारित है। मुख्यत: इस पद्धति द्वारा स्विट्जरलैण्ड ने कैण्टनों की स्वायत्तता को नष्ट किए बिना राष्ट्रीय एकता उपलब्ध की है। वास्तव में स्विट्जरलैण्ड एक सच्चा संघ है, यद्यपि संविधान ने उसे राज्यमण्डल ही कहा है।'' स्विस संघीय व्यवस्था की भी अपनी त्रिशिष्टता है।

20.2 स्विस संघीय व्यवस्था की विशेषताएँ

स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था में उन सभी मुख्य तत्त्वों का समावेश है जो एक संघात्मक व्यवस्था के लिए आवश्यक है। अत: स्विस संघीय व्यवस्था का स्वरूप इस प्रकार है-

20.2.1 दोहरी शासन व्यवस्था :- संघात्मक शासन-प्रणाली की आधारभूत विशेषता यह है कि देश में दोहरा शासन हो- केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन। केन्द्र में एक अलग सरकार हो तथा प्रान्तों में अलग-अलग सरकारें हो। दोनों सरकारों की अपनी-अपनी व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका हों। स्विट्जरलैण्ड इस कसौटी पर खरा उतरता है। संघ व्यवस्था के अनुरूप स्विट्जरलैण्ड में दोहरी शासन प्रणाली का प्रचलन है। यह संघ 25 कैण्टनों के सम्मिलन से बना है -जिसमें 19 पूर्ण कैण्टन हैं और 6 अर्द्ध-कैण्टन। अर्द्ध-कैण्टन भी पूर्ण कैण्टनों के समान ही स्वतन्त्र हैं।

20.2.2 शक्तियों का विभाजन :- स्विट्जरलैण्ड में अन्य संघीय संविधानों की तरह ही संविधान द्वारा शक्तियों का विभाजन किया गया है। शक्तियों के विभाजन में 'गणना व अवशेष' के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। संघीय सरकार की शक्तियों की गणना कर अवशिष्ट शक्तियों को कैण्टनों की सरकारों के अधीन माना गया है। राष्ट्रीय महत्त्व के विषय संघ-सरकार के कार्य-क्षेत्र में रखे गए हैं और शेष विषय कैण्टनों के अधिकार में। संविधान में शक्तियों का विभाजन निम्नलिखित चार भागों में बाटा जा सकता है -

1. संघीय अधिकार क्षेत्र :- स्विस संविधान के प्रथम इकाई में संघ सरकार की शक्तियाँ दी गई हैं। इन शक्तियों में वैदेशिक सम्बन्ध, सैनिक मामले, युद्ध और शांति की घोषणा, रेल डाक टेलीफोन, कैण्टनों के आपसी विवादों को निपटाना आदि।

20. समवर्ती अधिकार :- कुछ विषय ऐसे हैं जिन पर कैण्टनों तथा संघीय सरकार दोनों का अधिकार-क्षेत्र है। परन्तु यदि संघ और कैण्टनों के कानूनों में विरोध हो तो संघीय कानून ही मान्य होते हैं, कैण्टनों के नहीं।

3. विभक्त अधिकार :- स्विस शासन व्यवस्था में शक्तियों के विभाजन की एक विशेषता यह है कि वहाँ एक सूची विभाजित विषयों की है। ऐसे विषयों का कुछ भाग केन्द्र के अधिकार में है और कुछ भाग कैण्टनों के अधिकार में है। उदाहरण स्वरूप, विदेशों से सन्धियाँ करना संघीय अधिकार-क्षेत्र में है, परन्तु कैण्टन अपने निकटवर्ती देशों से संविधान द्वारा निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत कुछ विषयों पर सन्धियाँ कर सकते हैं। इसी तरह कुछ शिक्षा की व्यवस्था और संचालन का कार्य भी संघ तथा कैण्टनों में विभक्त है।

4. अवशिष्ट अधिकार :- उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त सब अवशिष्ट अधिकार कैण्टनों को सौंपे गए हैं। इन अवशिष्ट अधिकारों का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

इस तरह स्पष्ट है कि स्विस संविधान में संघात्मकता का आवश्यक तत्त्व, शक्तियों का विभाजन विद्यमान है।

20.2.3 संविधान की सर्वोच्चता :- संघात्मक शासन वाले देश का संविधान लिखित और सर्वोच्च होना चाहिए। यह तत्व भी स्विस संविधान में पूरी तरह विद्यमान है। संविधान लिखित है तथा किसी प्रकार के विवाद का निर्णय संविधान के उपबन्धों के अन्तर्गत ही होता है। संविधान वहाँ सर्वोच्च कानून है और शासन के सभी अंगों को उसी के द्वारा शक्ति प्राप्त होती है। कैण्टनों की सरकारों को शासन सम्बन्धी अधिकार केन्द्र-प्रदत्त न होकर संविधान द्वारा दिए हुए हैं। संविधान संघ के साथ-साथ कैण्टनों को भी स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करता है और संघ व कैण्टन दोनों के लिए ही वह समान रूप से मान्य है। दोनों में से कोई भी संविधान की अवहेलना नहीं कर सकता।

20.2.4 स्वतन्त्र न्यायपालिका :- न्यायपालिका की सर्वोच्चता के विषय में स्विट्जरलैण्ड संघात्मकता की कसौटी पर पूरा खरा नहीं उतरता। इस सम्बन्ध में वह अमेरिका के संघ से भिन्न है। स्विस सर्वोच्च-न्यायालय को संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के समान संविधान की व्याख्या करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि स्विट्जरलैण्ड का न्यायालय किसी भी संघीय कानून को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संघीय संविधान के किन्हीं उपबन्धों का अतिक्रमण करने वाला बतलाकर उसे अमान्य घोषित नहीं कर सकता है। किन्तु स्विस संघीय न्यायाधिकरण कैण्टनों द्वारा पास किए गए कानूनों को असंवैधानिक घोषित कर सकता है, यदि वे संघीय संविधान की भावना के विपरीत हों।

20.2.5 कैण्टनों की स्वायतता :- स्विस कैण्टन अमेरिका के राज्यों की भांति संघ निर्माण से पूर्व के हैं और उन्होंने संघ में शामिल होते समय इस बात का ध्यान रखा है कि वे अपने प्रभुत्व का पर्याप्त अंश अपने पास रखें। उन्हें अविशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त हैं। संघीय सरकार की संस्थाओं में कैण्टनों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। संघीय सभा के उच्च सदन 'राज्य परिषद्' में कैण्टनों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। संघीय संविधान की संशोधन प्रक्रिया में भी कैण्टनों को मान्यता प्राप्त है। संघीय संविधान के अतिरिक्त स्विट्जरलैण्ड में कैण्टनों के अलग-अलग संविधान हैं।

20.2.6 दोहरी नागरिकता :- अमरीकी संघ की भांति स्विट्जरलैण्ड में भी नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त है- एक तो संघ की नागरिकता और दूसरी राज्यों की नागरिकता। स्विस संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा है- ''किसी भी कैण्टन का प्रत्येक नागरिक स्विस नागरिक है।'' स्विस संविधान के बारे में रेपर्ड ने भी लिखा है, ''एक सामान्य स्विस नागरिक के जीवन में, कैण्टन व प्राय: कम्यून संघ राज्य की अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। वह स्विस नागरिक होने से पहले कैण्टन और यहाँ तक कि कम्यून का नागरिक है।'' संघात्मक व्यवस्था के उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर स्विटजरलैण्ड को एक संघात्मक राज्य की संज्ञा दी जा सकती है।

20.3 स्विस संघ में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति

स्विस शासन-व्यवस्था में कुछ ऐसे तत्व विद्यमान है जिनसे यह प्रकट होता है कि वह सच्चा संघ नहीं है और उसमें केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है, उन्हें निम्नलिखित रूप से रखा जा सकता है।

1. स्विट्जरलैण्ड की केन्द्रीय सत्ता बहुत शक्तिशाली है और आवश्यकता पड़ने पर कैण्टनों में सैनिक शक्ति का प्रयोग कर सकती है।
2. केन्द्र को अधिकार है कि आन्तरिक अव्यवस्था होने पर वह किसी भी कैण्टन का शासन अपने अधिकार में ले ले।
3. प्रत्येक क्षेत्र में संघीय संविधान के नियम लागू होते हैं। इस प्रकार कैण्टन यथार्थत: कहीं भी शक्ति सम्पन्न नहीं है।
4. कैण्टन का कोई कानून यदि संघीय कानून के प्रतिकूल हो, तो संघीय कानून को ही मान्यता मिलती है।
5. कैण्टनों के पास केवल स्थानीय महत्त्व की शक्तियाँ हैं, जबकि संघीय सरकार के पास सम्प्रभु शक्तियाँ हैं जिनके माध्यम से वह कैण्टनों पर हावी रह सकता है। अकेली मुद्रा एवं बैंक व्यवस्था से सम्बन्धित अधिकार ही इतना व्यापक है कि उसके प्रयोग से केन्द्र समस्त कैण्टनों के आर्थिक और व्यापारिक जीवन पर नियन्त्रण कर सकता है।
6. कैण्टनों का अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। वे राज्य संघ की इकाइयाँ मात्र है।
7. कैण्टनों के संघीय क्षेत्र में हस्तक्षेप को केन्द्र अनेक उपायों से रोक सकता है पर संघीय हस्तक्षेप को रोकने के साधन कैण्टनों के पास नहीं हैं।
8. कैण्टनों के आपसी झगड़ों के निपटारे की संघ को हो निर्णायक शक्ति प्राप्त है।
9. कैण्टन न संघ से पृथक् हो सकते हैं और न ही परस्पर कोई सन्धि ही कर सकते हैं।
10. कैण्टनों को अपने संवैधानिक संशोधनों पर संघ की स्वीकृति लेनी पड़ती है। कैण्टनों का संशोधन संघीय संविधान के प्रतिकूल नहीं हो सकता।
11. संघीय न्यायालय कैण्टनों के कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है, पर संघीय कानूनों को अवैध घोषित करने का उन्हें अधिकार नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपर्युक्त व्यवस्थाओं के कारण ही डूपरीज ने कहा है कि ''स्विट्जरलैण्ड के संविधान ने संघ को वस्तुत: ऐसा रूप प्रदान कर दिया है मानो वह कैण्टनों का शिक्षक और निरीक्षक हो।'' केन्द्रीयकरण की इस प्रवृत्ति को स्वाभाविक मानते हुए डॉ. बी.एम. शर्मा ने अपनी पुस्तक 'संघवाद और संघात्मक शासन' में लिखा है कि संघों की आधुनिक प्रवृत्तियों द्वारा केन्द्रीय सरकार की प्रशासकीय तथा वित्तीय शक्तियाँ बढ़ती जा रही हैं जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की शक्तियाँ कम होती जा रही हैं।

20.4 सारांश :-

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि कैण्टनों की संवैधानिक शक्ति शून्य है। सूक्ष्म अवलोकन से मालूम होता है कि स्विस संघीय व्यवस्था के आकर्षण –केन्द्र कैण्टन है और कैण्टनों की अपनी राजनीतिक तथा उनका अपना जीवन भी है। यदि केन्द्रीय सरकार कैण्टनों की शक्तियों पर अनधिकार प्रहार करती है, तो कैण्टनों के पास अपनी रक्षा के साधन आरम्भक और जनमत–संग्रह हैं। छोटे या बड़े सभी कैण्टनों को स्विट्जरलैण्ड के उच्च सदन में समान प्रतिनिधित्व का अधिकार है और इसके द्वारा कैण्टनों के हितों का संरक्षण होता है तथा केन्द्र द्वारा कैण्टनों की शक्ति को कुचलने का प्रयास सफल नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त नागरिकों के जीवन में संघ की अपेक्षा कैण्टनों का प्रभाव अधिक व्यापक रुप से दिखाई देता है। कैण्टन राजनीतिक प्रयोगशालाओं के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। स्विस जनता स्वतन्त्रता–प्रिय है और कैण्टनों की स्वायत्तता उनके लिए महत्त्वपूर्ण है। इससे निश्चित ही कैण्टनों का महत्त्व प्रकट होता है तथा एकात्मकता के विरुद्ध संघात्मकता को प्रोत्साहन मिलता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्विट्जरलैण्ड में संघ व्यवस्था के प्रमुख लक्षणों की विवेचना करें।
2. ''स्विस संविधान राज्यमण्डल नहीं, बल्कि एक संघ है।'' क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विट्जरलैण्ड संघ पर एक आलोचनात्मक समीक्षा लिखिए।
2. स्विट्जरलैण्ड की संघात्मक व्यवस्था में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का उल्लेख कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विस संघ के घटक कैण्टनों की संख्या कितनी हैं ?
2. स्विस संघ में अवशिष्ट शक्तियाँ किसको प्रदान की गई हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–21
संघीय सभा

संरचना

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 संघीय व्यवस्थापिका की विशेषताएँ

21.2.1 सत्ता की सर्वोच्चता

21.2.2 समानपदीय द्वि–सदनीय व्यवस्था

21.2.3 उच्च स्तर के वाद–विवाद

21.2.4 विविध भाषाओं का प्रयोग

21.2.5 विधेयकों का एक साथ दोनों सदनों में रखा जाना

21.2.6 शान्त और गम्भीर वातावरण

21.3 संघीय सभा का संगठन

21.3.1 रचना

21.3.2 चुनाव

21.3.3 कार्यकाल

21.3.4 अधिवेशन एवं गणपूर्ति

21.3.5 वेतन एवं भत्ते

21.3.6 अध्यक्ष और उपाध्यक्ष

21.4 राज्य परिषद्

21.4.1 रचना

21.4.2 कार्यकाल

21.4.3 अधिवेशन एवं गणपूर्ति

21.4.4 वेतन भत्ते

21.4.5 अध्यक्ष और उपाध्यक्ष

21.5 संघीय सभा की शक्तियाँ और कार्य

21.5.1 विधायी शक्तियाँ

21.5.2 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ

21.5.3 वित्तीय शक्तियाँ

21.5.4 न्यायिक शक्तियाँ

21.5.5 संविधान में संशोधन की शक्ति

21.5.6 कैण्टनों से सम्बन्धित शक्ति

2.6 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

21.0 उद्देश्य :-

इस इकाई के अन्तर्गत संघीय सभा की रचना, संगठन और शक्तियों का वर्णन किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप–

- संघीय व्यवस्थापिका की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- संघीय सभा द्वि–सदनीय विधानमण्डल के संगठन को समझ सकेंगे,
- संघीय सभा की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

स्विट्जरलैण्ड में सर्वोच्च विधायिका–शक्ति 'संघीय सभा' नामक एक द्वि–सदनीय व्यवस्थापिका में निहित है, जिसके दो सदन 'राष्ट्रीय परिषद्' व 'राज्य परिषद्' कहलाते हैं। संविधान के अनुच्छेद 71 में यह कहकर उसकी सर्वोच्चता प्रदर्शित है कि ''जनता के अधिकारों व कैण्टनों के अधिकारों के प्रतिबन्ध के साथ–साथ राज्यमण्डल की सर्वोच्च शक्ति संघीय सभा में निहित है।'' केन्द्रीय शासन में संघीय सभा को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है। इस सभा द्वारा पारित किसी भी कानून को संघीय कार्यपालिका अथवा संघीय न्यायाधिकरण अवैध घोषित नहीं कर सकता। अर्थात् स्विस संघीय सभा एक शक्तिशाली विधानमण्डल है और कार्यपालिका तथा संघीय न्यायाधिकरण को इसके अधीन किया गया है, परन्तु संघीय सभा ब्रिटिश संसद की भांति सम्प्रभुत्व सम्पन्न संस्था नहीं है।

21.2 संघीय व्यवस्थापिका की विशेषताएँ

संघीय व्यवस्थापिका की मूलभूत विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से रखा जा सकता है –

21.2.1 सत्ता की सर्वोच्चता :- प्रायः संघीय शासन व्यवस्था में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका पर न्यायपालिका का नियंत्रण स्थापित किया जाता है किन्तु स्विस व्यवस्थापिका इस दृष्टि से अनूठी है। स्विट्जरलैण्ड में व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता इस सीमा तक स्थापित की गई है कि न्यायपालिका को व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों के पुनरावलोकन का अधिकार भी प्राप्त नहीं है। इतना ही नहीं, कुछ मामलों में तो उसे संघीय न्यायपालिका के निर्णयों को भी रद्द कर देने का अधिकार है। संघीय सभा ही स्विस कार्यपालिका अर्थात् संघीय परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन करती है तथा संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों का चयन करती है। वस्तुतः स्विस संघीय सभा की स्थिति अमेरिकी कांग्रेस और भारतीय संसद् दोनों से ही उच्चतर है। कैण्टन के कानून से संघीय कानून की उच्च स्थिति भी संघीय व्यवस्थापिका की सर्वोच्च शक्ति को इंगित करती है।

इस प्रकार स्विस संघीय सभा पर न तो कार्यपालिका का अंकुश है और न सर्वोच्च न्यायालय का। स्विस संघीय सभा की सत्ता पर यदि कोई प्रतिबन्ध है तो वह जनता व कैण्टनों का है।

21.2.2 समानपक्षीय द्वि–सदनीय व्यवस्था :- स्विस संघीय सभा के दोनों सदन–राष्ट्रीय परिषद् तथा राज्य परिषद् अपने–अपने अधिकारों तथा शक्तियों में समान हैं। अन्य देशों जैसे इंग्लैण्ड, अमेरिका में व्यवस्थापिका के दोनों सदन शक्तिशाली नहीं है। स्ट्रांग के शब्दों में, ''स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका की तरह ही वहाँ की व्यवस्थापिका भी विशिष्ट है। संसार में वही एक ऐसी व्यवस्थापिका है जिसके उच्च सदन की शक्ति निचले सदन की शक्ति से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है।'' ऐसी स्थिति केवल यही विद्यमान है।

21.2.3 उच्च स्तर के वाद–विवाद :- स्विस विधानमण्डल की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें बड़े संयत भाषण दिये जाते हैं। इसके वाद–विवाद का स्तर बहुत ऊँचा होता है। इसमें समस्त कार्य शांतिपूर्ण तरीके से किये जाते हैं। तालियों की गड़गड़ाहट, नारेबाजी, 'शेम–शेम' की आवाजें बहिर्गमन करने, आसन के आदेशों की अवहेलना आदि इसमें शायद ही कभी सुनने में आती हैं। इसके सदस्य बहुत ही योग्य एवं सुशिक्षित होते हैं। ब्राइस का कहना है कि ''स्विस लोगों के लिए राजनीति एक गंभीर कार्य है, खेल नहीं।'' इसीलिए जर्चर ने इसे ''विश्व की सर्वाधिक गंभीर रूप से कार्य करने वाली विधायिका कहा है।'' उच्च स्तर के वाद–विवाद इसकी प्रतिपर्दा तथा गरिमा में अभिवृद्धि करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

21.2.4 विविध भाषाओं का प्रयोग :- स्विस व्यवस्थापिका के सदस्य देश की विविध भाषाओं का प्रयोग करने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं क्योंकि संविधान के अन्तर्गत उन सभी भाषाओं को राजकीय मान्यता प्राप्त है। संसदीय कार्यवाही का प्रकाशन भी जर्मन, फ्रैंच तथा कभी–कभी इटालियन भाषा में किया जाता है।

21.2.5 विधेयकों का एक साथ दोनों सदनों में रखा जाना :- स्विस विधान मण्डल की एक अन्य विशेषता यह है कि यहाँ विधेयक दोनों सदनों में एक साथ प्रस्तुत किए जाते हैं। ऐसा इस उद्देश्य से किया जाता है कि दोनों सदन एक दूसरे से प्रभावित हुए बिना, स्वतन्त्र रूप से उन पर विचार कर सकें और उन्हें पर्याप्त अवसर भी मिले।

21.2.6 शान्त और गम्भीर वातावरण :- संघीय सभा विश्व की सबसे अधिक सुचारु ढ़ग से कार्य करने वाली संस्था कही जाती है। वह अपना कार्य चुपचाप करती रहती है। उसकी कार्यवाही बड़ी शान्त और गम्भीरता से चलती है और वहाँ अशोभनीय तथा असंसदीय दृश्य प्राय: देखने को नहीं मिलते हैं।

21.3 संघीय सभा का संगठन – राष्ट्रीय परिषद्

21.3.1 रचना :- राष्ट्रीय परिषद् संघीय सभा का निम्न सदन है जो स्विस लोगों का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए इसे 'लोक सदन' कहते है।

राष्ट्रीय परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या 200 है। यह संख्या राज्य परिषद् के सदस्यों की संख्या से 4 गुना है, परन्तु वह ब्रिटिश कॉमन सभा और अमेरिकी प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की संख्या से कम है। स्विस संविधान के अनुच्छेद 72 के अनुसार प्रति 24,000 की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि इस सभा के लिए चुना जाता है। यदि किसी पूर्ण कैण्टन अथवा अर्द्ध–कैण्टन की जनसंख्या इससे कम होती है तो उसे कम से कम एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होता है।

21.3.2 चुनाव :- अनुच्छेद 73 के अनुसार राष्ट्रीय परिषद् का निर्वाचन गुप्त मतदान द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है। प्रत्येक कैण्टन का एक निर्वाचन–क्षेत्र होता है जिसमें प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए विविध दल अपने–अपने प्रत्याशियों की सूची प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार प्रत्याशी वैयक्तिक हैसियत से नहीं अपितु दलीय हैसियत से चुनाव लड़ते हैं। प्रत्येक सूची में उतने ही नाम होते हैं जितने स्थान उस कैण्टन के हैं और मतदाता उतने ही मत देने का अधिकारी होता है जितने सदस्यों का निर्वाचन उस कैण्टन से होता है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का प्रयोग उन्हीं कैण्टनों में किया जाता है जहाँ एक से अधिक सदस्यों का निर्वाचन होना हो। जिन कैण्टनों में केवल एक सदस्य चुना जाता है, वहाँ मतदान साधारण प्रणाली द्वारा होता है। अनुच्छेद 74 के अनुसार प्रत्येक स्विस नागरिक (स्त्री व पुरुष) को जो 20 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है, राष्ट्रीय परिषद् के निर्वाचनों में मतदान करने का अधिकार है बशर्ते कि उसे उसके अधिवास कैण्टन ने विधान द्वारा सक्रिय नागरिक अधिकारों से वर्जित न किया हो। अनुच्छेद 75 के अनुसार प्रत्येक स्विस नागरिक मताधिकार प्राप्त होने पर राष्ट्रीय परिषद् की सदस्यता का पात्र बन जाता है अर्थात् वह चुनाव लड़ सकता है।

21.3.3 कार्यकाल :- राष्ट्रीय परिषद् का निर्वाचन 4 वर्ष के लिए होता है। इसका निर्वाचन प्रति 4 वर्ष बाद अक्टूबर मास के अन्तिम रविवार को होता है। इसका कार्यकाल अमरीकी प्रतिनिधि सदन की भांति निश्चित् है। इसे संघीय परिषद् समय से पूर्व विघटित नहीं कर सकती जैसाकि ब्रिटिश अथवा भारतीय कार्यपालिका संसद् को समय से पूर्व विघटित कर सकती है। संविधान के पूर्ण संशोधन पर मतभेद की दशा में इस सदन का विघटन 4 वर्ष से पहले भी किया जा सकता है।

21.3.4 अधिवेशन एवं गणपूर्ति :- अनुच्छेद 86 के अनुसार राष्ट्रीय परिषद् का वर्ष में एक बार साधारण अधिवेशन होना आवश्यक है। परन्तु व्यवहार, में वर्ष में इसके चार अधिवेशन मार्च, जून, सितम्बर और दिसम्बर माह में होते हैं जो प्राय: 10 से 12 सप्ताह तक चलते हैं। इसके अधिवेशन राज्य परिषद् के साथ बुलाये जाते हैं। राष्ट्रीय सभा के सदस्यों के एक –चौथाई लोग या कैण्टनों की सम्पूर्ण संख्या के एक–चौथाई कैण्टनों की ओर से मांग की जाए तो संघीय परिषद दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकती है।

अनुच्छेद 87 के अनुसार राष्ट्रीय परिषद् किसी विषय पर तब तक विचार–विमर्श आरम्भ नहीं कर सकती जब तक उपस्थित होने वाले सदस्यों की संख्या उसके कुल सदस्यों की संख्या के अनुपात में निपरेक्ष बहुमत में न हो अर्थात् 101 सदस्यों की उपस्थिति किसी विषय पर विचार–विमर्श करने के लिए अनिवार्य है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

21.3.5 वेतन एवं भत्ते :- राष्ट्रीय परिषद् के सदस्यों को कोई निश्चित वेतन नहीं मिलता। इन्हें संघीय कोष से केवल भत्ता मिलता है। यह भत्ता 150 फ्रेंक प्रतिदिन की दर से अधिवेशनों के दिनों में उपस्थित होने पर मिलता है।

21.3.6 अध्यक्ष और उपाध्यक्ष :- अनुच्छेद 78 के अनुसार राष्ट्रीय परिषद् किसी भी साधारण अथवा असाधारण अधिवेशन के लिए अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। इस व्यवस्था पर भी 1848 ई. से इस परम्परा का विकास हुआ है कि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को एक वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है, प्रत्येक अधिवेशन के लिए नहीं। जो व्यक्ति अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष पद पर है, वह अगले वर्ष उस पद पर निर्वाचित नहीं हो सकता।

अध्यक्ष का कार्य राष्ट्रीय परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करना है। सदन में शान्ति व्यवस्था बनाए रखना तथा सदन की कार्यवाही को अनुशासनपूर्वक चलाना उसी का कार्य है। किसी विषय पर बराबर मत आने पर उसे अपने निर्णायक मत के प्रयोग का अधिकार होता है। वह ब्रिटिश स्पीकर की भांति निष्पक्ष नहीं होता और न अमरीकी स्पीकर की भांति शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण होता है, फिर भी उसके पद का बड़ा महत्त्व होता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसके कार्यों का सम्पादन करता है। सामान्यत: अगले वर्ष उपाध्यक्ष ही अध्यक्ष बनता है।

21.4. राज्य परिषद्

21.4.1 रचना :- राज्य परिषद् संघीय सभा का उच्च सदन है। अन्य संघीय राज्यों की भांति यह सदन स्विस राज्यमण्डल के कैण्टनों का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें प्रत्येक कैण्टन को आकार और जनसंख्या की भिन्नताओं के बावजूद समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। इसमें प्रत्येक पूर्ण कैण्टन दो और प्रत्येक अर्द्ध-कैण्टन एक प्रतिनिधि भेजता है। स्विस राज्य मण्डल में कुल 22 कैण्टन हैं। (19 पूर्ण कैन्टन और 06 अर्द्ध कैण्टन)। अत: इसके सदस्यों की संख्या 44 है।

स्विस संविधान में राज्य परिषद् के सदस्यों की चुनाव-विधि को निश्चित नहीं किया गया है अपितु इसे कैण्टनों की इच्छा पर ही छोड़ दिया गया है। इसीलिए, 14 कैण्टनों तथा 3 अर्द्ध कैण्टनों में इसका चुनाव समस्त मताधिकार प्राप्त नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र वाले ग्लेरस तथा 3 अर्द्ध कैण्टन राज्य परिषद् के लिए अपने प्रतिनिधियों का चुनाव 'जनसंख्या' (लैण्ड्जीमाइण्ड) द्वारा करते हैं तथा 4 कैण्टनों में इन्हें विधानमण्डल द्वारा निर्वाचित किया जाता है। इस तरह से राज्य परिषद् के सदस्यों के चुनाव की समान विधि नहीं है।

21.4.2 कार्यकाल :- राज्य परिषद् के सदस्यों का कार्यकाल निश्चित नहीं है। इसका कार्यकाल कैण्टनों की इच्छा पर निर्भर करता है। 15 कैण्टन तथा 5 अर्द्ध कैण्टन राज्य परिषद् में अपने प्रतिनिधि 4 वर्ष के लिए चुनते हैं, 2 कैण्टन तथा 1 अर्द्ध कैण्टन 3 वर्ष के लिए और शेष 2 कैण्टन एक वर्ष के लिए। कार्यकाल की दृष्टि से भी कैण्टनों में भिन्नता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

21.4.3 अधिवेशन एवं गणपूर्ति :- राज्य परिषद् की बैठकें राष्ट्रीय परिषद् की बैठकों के साथ ही आरम्भ होती हैं। इसका वर्ष में कम से कम एक अधिवेशन होना आवश्यक है। परन्तु व्यवहार में, इसके चार अधिवेशन मार्च, जून, सितम्बर और दिसम्बर माह में होते हैं।

राज्यपरिषद् में गणपूर्ति के लिए 44 में से 23 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है।

21.4.4 वेतन भत्ते :- राज्य परिषद् के सदस्यों को वेतन एवं भत्ते 'कैण्टन कोष' से प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि उनके वेतन और भत्ते समान नहीं होते। परन्तु जब कभी वे संघीय सभा की किसी समिति की बैठक में हिस्सा लेते हैं तो उस समय उन्हें संघीय कोष से भत्ता मिलता है जो सभी का समान होता है।

21.4.4 अध्यक्ष और उपाध्यक्ष :- राष्ट्रीय परिषद् की भांति ही राज्य परिषद् भी अपने सदस्यों में से ही अपना अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनती है, किन्तु यह चुनाव एक वर्ष के लिए किया जाता है। संविधान के अनुसार यह निश्चय किया गया है कि किसी एक कैण्टन के प्रतिनिधियों में से अध्यक्ष-उपाध्यक्ष लगातार दो वर्ष तक नहीं चुने जा सकते। इस व्यवस्था का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि समस्त कैण्टनों के प्रतिनिधियों को इन पदों पर आसीन होने का अवसर मिल जाता है। यह परम्परा स्थापित हो गयी है कि गत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वर्ष के उपाध्यक्ष को अगले वर्ष अध्यक्ष बना दिया जाता है। अध्यक्ष सदन की अध्यक्षता करता है, सदन में शांति और सुव्यवस्था स्थापित रखता है, सदन के नियमों का क्रियान्वयन करता है तथा समान मत होने पर निर्णायक मत देता हैं।

21.5 संघीय सभा की शक्तियाँ और कार्य

स्विट्जरलैण्ड में संघीय सभा के दोनों सदनों — राष्ट्रीय परिषद् और राज्य परिषद् को विधायी, प्रशासनिक तथा वित्तीय सभी क्षेत्रों में समान शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अनुच्छेद 71 के अनुसार संघीय सभा ''स्विस राज्य मण्डल की सर्वोच्च सत्ता'' है। संघीय सभा द्वारा पारित किये गये कानूनों पर न तो कार्यपालिका निषेधाधिकार या वीटो (Veto) और न न्यायपालिका निषेधाधिकार या वीटो (Veto) का प्रयोग हो सकता है। स्विट्जरलैण्ड में न तो राष्ट्रपति संघीय सभा द्वारा पारित कानूनों पर निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है और न स्विस न्यायाधिकरण किसी संघीय कानून को अवैध घोषित कर रद्द कर सकती है।

इस दृष्टि से स्विस संघीय सभा ब्रिटिश संसद की भांति सम्प्रभु प्रतीत होती है। परन्तु दोनों में एक आधारभूत अन्तर यह है कि जहाँ स्विस संघीय सभा द्वारा पारित कानूनों पर जनमत संग्रह का प्रयोग किया जा सकता है और लोग संघीय सभा द्वारा पारित किसी कानून को अस्वीकार कर सकते हैं वहां ब्रिटिश संसद् द्वारा पारित कानूनों पर जनमत संग्रह के उपाय का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

स्विस संघीय सभा की शक्तियों का विवेचन मुख्यत: अनुच्छेद 84 और 85 में किया गया है। अनुच्छेद 84 के अनुसार संघीय सभा उन सभी विषयों पर कानून का निर्माण कर सकती है जो संविधान राज्यमण्डल को प्रदान करता है। वह उन विषयों पर भी कानून का निर्माण कर सकती है जो किसी अन्य संघीय सत्ता को प्रदान नहीं किये गये हैं। अनुच्छेद 85 में संघीय सभा की शक्तियों को 14 खण्डों में विभक्त किया गया है। इनमें अभिव्यक्त शक्तियाँ अत्यधिक व्यापक हैं। इसकी शक्तियाँ केवल विधायी प्रकृति की नहीं, वे कार्यपालिका और न्यायिक प्रकृति की भी हैं। जर्चर ने ठीक ही लिखा है कि 'संसार में ऐसी बहुत कम संसदें हैं जो स्विस विधानमण्डल से अधिक मिले–जुले कार्य करती हैं।' संघीय सभा के कार्यों की प्रकृति बहुमुखी या बहु–आयामी है।

संघीय सभा की शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है।

21.5.1 विधायी शक्तियाँ :- संघीय सभा मूलत: एक विधायी सभा है और इसका प्रमुख कार्य कानून निर्माण है। संविधान द्वारा संघीय अधिकार क्षेत्र में रखे गये सभी विषयों पर इसे कानून निर्माण की शक्ति प्राप्त है। कार्यकारिणी अथवा संघीय परिषद् भी विधेयक आदि तैयार करके व्यवस्थापिका के विचार–विमर्श और स्वीकृति के लिए प्रस्तावित करती है, किन्तु प्राय: व्यवस्थापिका अर्थात् संघीय सभा ही अपनी ओर से विधि निर्माण के प्रस्ताव प्रस्तावित करती है, यद्यपि उसकी इस शक्ति पर जनमत संग्रह तथा जनता के आरम्भन का नियन्त्रण रहता है। जनता अपने वैकल्पिक व्यवस्थापन सम्बन्धी जनमत–संग्रह के अधिकार के अन्तर्गत संघीय सभा द्वारा पारित कानूनों को अस्वीकार कर सकती है, परन्तु ऐसा केवल उसी व्यवस्थापन के विषय में होता है, जिस नियम के अन्तर्गत 'विधि' की संज्ञा दी जाती है। संघीय सभा प्राय: दूसरे प्रकार के व्यवस्थापन का अधिक आश्रय लेती है जिसे अध्यादेश कहते हैं। उन अध्यादेशों पर वैकल्पिक व्यवस्थापन सम्बन्धी जनमत संग्रह का प्रतिबन्ध नहीं होता जो सर्वव्यापी रूप से बाध्यकारी न हो अथवा जिन्हें संसद् के दोनों सदनों के सब सदस्यों ने 'आवश्यक' घोषित कर दिया हो। वैकल्पिक जनमत संग्रह के प्रतिबन्ध से बचने के लिए व्यवस्थापन का अधिकांश अंश प्राय: अध्यादेशों के रूप में होता है।

संघीय सभा के निर्णयों अथवा उसके द्वारा पारित विधेयकों पर कार्यकारिणी अर्थात् संघीय परिषद् को निषेध (Veto) करने का अधिकार नहीं है।

21.5.2 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ :- स्विस संघीय सभा के पास कार्यपालिका सम्बन्धी वे शक्तियाँ नहीं है, जो ब्रिटिश अथवा भारतीय संसद् के पास हैं। अमरीकी कार्यपालिका की भांति स्विस संघीय परिषद् का कार्यकाल निश्चित है और संघीय सभा उसे अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा समय से पूर्व पदच्युत नहीं कर सकती। फिर भी उसका संघीय परिषद् पर पर्याप्त नियन्त्रण रहता है।

संघीय सभा की कार्यपालिका शक्तियाँ मुख्यत: निम्नलिखित रूप से हैं–

1. संघीय सभा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में संघीय परिषद् के सदस्यों उसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, संघीय न्यायापालिका के न्यायाधीशों, संघीय बीमा निकाय के सदस्यों, सर्वोच्च सेनापति, विशेष जन–अभियोजक, चाँसलर आदि का निर्वाचन करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. संघीय सभा संघ-शासन और संघ न्यायपालिका की कार्यवाहियों पर दृष्टि रखती है। इस सभा का अधिकार संघ के सामान्य अधिनियम, शक्ति को क्रियान्वित करने, संविधान को क्रियान्वित कराने तथा संघ के कर्त्तव्यों का अच्छी तरह से पालन कराने का प्रयत्न करना है।

3. संघीय सभा संघीय संविधान का पालन कराने हेतु तथा कैण्टनों के संविधानों की गारण्टी की सुरक्षा हेतु आवश्यक कार्यवाही करती है।

4. वैदेशिक सम्बन्धों पर संघीय सभा का पूर्ण नियन्त्रण है। राष्ट्र की बाह्य आक्रमणों से रक्षा करना, उसकी स्वतन्त्रता और तटस्थता की रक्षा करना, युद्ध की घोषणा करना, सन्धियों और समझौतों को सम्पन्न करना आदि सभी कार्य संघीय सभा के अधिकार-क्षेत्र में है। सन्धि-वार्ता सामान्यत: संघीय परिषद् द्वारा की जाती है, परन्तु उसके अन्तिम रूप को संघीय सभा के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। संघीय सभा यदि आवश्यक समझती है तो उस सन्धि को स्वीकार करने के लिए संघीय परिषद को अनुमति दे देती है।

5. संघीय सभा राज क्षमा तथा संघीय कानूनों के विरुद्ध किये गये अपराधों के लिए क्षमा प्रदान करती है।

6. संघीय सभा के सदस्य संघीय परिषद् के सदस्यों से प्रशासन तथा नीति के बारे में कोई भी प्रश्न पूछ सकते हैं, जिनका उत्तर उन्हें देना पड़ता है।

7. संघीय सभा संघीय सेना का नियमन व नियन्त्रण करती है तथा संघीय प्रशासन का निरीक्षण और निर्देशन करती है।

8. संघीय सभा को यह अधिकार भी है कि वह सरकार के अन्य अंगों से उनके द्वारा सम्पादित कार्यों के प्रतिवेदन प्राप्त करे। इन प्रतिवेदनों की जाँच करके वह सम्बन्धित अंगों को उसकी त्रुटियों से अवगत कराकर भूल सुधार के लिए कह सकती है।

2.5.3 वित्तीय शक्तियाँ :- संघीय सभा का संघ के वित्त पर पूर्ण नियन्त्रण है। वह संघ के आय-व्यय के लेखे को स्वीकार करती है और संघ की आर्थिक स्थिति पर नियन्त्रण रखती है। आय-व्यय का वार्षिक बजट संघीय परिषद् द्वारा तैयार किया जाता है, जिसे संघीय सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु कोई भी बजट तब तक क्रियान्वित नहीं हो सकता जब तक संघीय सभा के दोनों सदन उसे पारित न कर दें। इस प्रकार देश के आय-व्यय पर संघीय सभा का पर्याप्त नियन्त्रण होता है। संघीय सभा ही संघीय सरकार के प्रमुख पदों का सृजन और उनके वेतन-भत्तों आदि का निर्णय करती है।

21.5.4 न्यायिक शक्तियाँ :- संघीय व्यवस्थापिका ही संघीय न्यायपालिका का निरीक्षण तथा निर्देशन करती है, इसके संगठन सम्बन्धी कानून बनाती है तथा संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को निर्वाचित करती है। संघीय न्यायालय अपनी वार्षिक रिपोर्ट संघीय सभा के सम्मुख ही प्रस्तुत करता है। सभा कई मामलों में स्वयं अन्तिम निर्णय देती है। संघीय परिषद् और संघीय न्यायालय अथवा बीमा न्यायालय के मध्य उत्पन्न विवादों पर सभा का निर्णय अन्तिम होता है। संघीय सभा अपने द्वारा नियुक्त अधिकारियों के विरूद्ध कार्यवाही भी कर सकती है। संघीय सभा संघ के न्याय विभाग के अधिकारियों द्वारा दण्डित व्यक्तियों व मृत्युदण्ड पाये हुए व्यक्तियों को क्षमादान दे सकती है।

21.5.5 संविधान में संशोधन की शक्ति :- संघीय सभा संविधान में संशोधन करने का कार्य भी करती है। प्रत्येक संशोधन प्रस्ताव इसके दोनों सदनों द्वारा पारित किये जाने पर ही लोकनिर्णय के लिए भेजा जाता है। जब संघीय संविधान के पूर्ण संशोधन का प्रस्ताव विचारार्थ हो तो संघीय सभा को भंग कर नवीन संघीय सभा का निर्वाचन आवश्यक होता है।

संघीय सभा की संविधान संशोधन की शक्ति पर लोक निर्णय के साथ-साथ आरम्भन का नियन्त्रण भी है। यदि 50 हजार स्विस नागरिक संविधान में संशोधन का प्रस्ताव करते हैं, तो संघीय सभा को उस पर विचार करना होगा।

21.5.6 कैण्टनों से सम्बन्धित शक्ति :- संघीय सभा को यह भी अधिकार प्राप्त होता है कि वह कैण्टनों के संविधान और उनके संशोधन को उचित जाँच कर उन्हें स्वीकार करे। कैण्टन, विदेशों से जो सन्धियाँ करते है उन पर संघीय सभा का अनुमोदन आवश्यक है। इसी प्रकार कैण्टन परस्पर जो सन्धियां करते है उनके बारे में भी संघीय सभा का अनुमोदन आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

21.6 सारांश

संघीय सभा की शक्तियों की उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जितने बहुमुखी और विविध कार्य इसके द्वारा किए जाते हैं, उतने कार्य विश्व की बहुत कम व्यवस्थापिकाएँ करती है। परन्तु यह उस सीमा तक सर्वोच्च नहीं है जिस सीमा तक ब्रिटिश संसद् है। इसकी शक्ति पर संविधान द्वारा विविध प्रतिबन्ध लगाये हैं, जैसे –जनता के अधिकार, कैण्टनों के अधिकार तथा संविधान द्वारा अन्य संघीय प्राधिकारियों को सौंपे गए अधिकार। वास्तविकता यह है कि स्विस शासन–प्रणाली में संसदीय सम्प्रभुता की अपेक्षा लोकप्रिय या सार्वजनिक सम्प्रभुता को उच्च स्थान प्रदान किया गया है। जनमत संग्रह और आरम्भन द्वारा जन–सत्ता स्वयं वैधानिक एवं संवैधानिक कार्य में सक्रिय रूप से भाग लेती है तथा स्वयं विधि निर्माण की प्रक्रिया को संचालित और नियन्त्रित करती है। परिणाम स्वरूप संघीय सभा को सदैव यह ध्यान में रखना होता है कि कानूनों पर लोकनिर्णय हो सकता है और इसके कारण वे समाप्त हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वर्तमान समय में कानून–निर्माण का कार्य बहुत जटिल हो गया है और इस कारण विधायी क्षेत्र में भी संघीय सभा के स्थान पर संघीय परिषद् ही पहल करती है। इसलिए रेपार्ड ने कहा है कि ''संघीय सभा के संवैधानिक अधिकारों के होते हुए भी आज नेतृत्व स्पष्टत: संघीय परिषद् के हाथों में चला गया है।'' किन्तु इसके उपरान्त भी सम्भवत: ब्रिटिश संसद् के पश्चात् शक्तियों और कार्यों की दृष्टि से स्विस संघीय सभा को ही स्थान आता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्विट्जरलैण्ड की संघीय सभा की शक्तियों एवं कार्यों का परीक्षण करें।
2. स्विस संघीय सभा के दोनों सदनों के गठन तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विट्जरलैण्ड की 'राष्ट्रीय परिषद्' के संगठन का परीक्षण करें।
2. स्विट्जरलैण्ड की 'राज्य परिषद्' के संगठन का परीक्षण करें।
3. स्विस राष्ट्रीय परिषद् और राज्य परिषद् के सम्बन्धों को इंगित करें।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विस संघीय सभा के निम्न सदन और उच्च सदन का क्या नाम है ?
2. स्विस राष्ट्रीय परिषद् का कार्यकाल कितने वर्ष है ?
3. स्विस राज्य परिषद् में गणपूर्ति के लिए कितने सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–22
संघीय परिषद्

संरचना

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 संघीय परिषद् का संगठन

22.2.1 रचना

22.2.2 सदस्यों की योग्यताएँ

22.2.3 वेतन

22.2.4 अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष

22.2.5 संघीय परिषद् के विभागों का वितरण

22.3 संघीय परिषद् के कार्य और शक्तियाँ

22.3.1 प्रशासनिक कार्य

22.3.2 विधि निर्माण सम्बन्धी कार्य

22.3.3 वित्तीय कार्य

22.3.4 न्यायिक कार्य

22.3.5 आपातकालीन कार्य

22.4 स्विस संघीय परिषद् की विलक्षणता

22.4.1 बहुल कार्यपालिका

22.4.2 संसदीय और अध्यक्षीय शासन प्रणालियों के गुणों का समावेश

22.4.3 उत्तरदायित्व और स्थायित्व का समावेश

22.4.4 निर्दलीय चरित्र

22.4.5 विशेषज्ञों की कार्यपालिका

22.4.6 सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव

22.4.7 नेतृत्वविहीन कार्यपालिका

22.5 संघीय परिषद् और संघीय सभा में सम्बन्ध

22.6 सारांश

22.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत स्विट्जरलैण्ड की संघीय परिषद् का संगठन, कार्य और शक्तियों का वर्णन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप:

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- स्विस संघीय परिषद् की विलक्षणता को समझ सकेंगे,
- संघीय परिषद् और संघीय सभा में सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे,
- संघीय परिषद् की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन करेंगे।

22.1 प्रस्तावना

स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका को संघीय परिषद् कहा जाता है। यह विश्व की शासकीय संस्थाओं में सबसे अनोखी है। यह बहुल कार्यपालिका है, तथापि इसमें अध्यक्षात्मक और मन्त्रि-मण्डलीय व्यवस्था के गुण विद्यमान है। स्विस कार्यपालिका के इन दोनों ही शासन व्यवस्थाओं के गुणों के आधार पर ही प्रो. स्ट्रोंग ने लिखा है कि ''यह विश्व की वैधानिक पद्धतियों में सर्वाधिक अनुपम है।'' ब्राइस के मतानुसार ''यह एक ऐसी संस्था है, जिसका अध्ययन करना अन्य सभी संस्थाओं से महत्त्वपूर्ण है।''

22.2 संघीय परिषद् का संगठन

22.2.1 रचना- जहाँ विश्व के सभी देशों की कार्यपालिका सम्राट में या राष्ट्रपति में निहित होती है, वहाँ स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका शक्ति सात सदस्यों वाली परिषद् में निहित है। इनका निर्वाचन संघीय सभा के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में चार वर्ष के लिए होता है। इन्हें चार वर्ष से पूर्व पदच्युत नहीं किया जा सकता। इस अवधि के दौरान यदि मृत्यु, त्यागपत्र अथवा अन्य किसी कारण से कोई स्थान रिक्त हो जाता है तो उसकी पूर्ति संघीय सभा के अगले अधिवेशन में कार्यकाल की शेष अवधि के लिए कर दी जाती है।

संघीय परिषद् के निर्वाचन की उक्त पद्धति से स्पष्ट है कि स्विट्जरलैण्ड मे कार्यपालिका का चयन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। इसका निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से स्विस जनता द्वारा नहीं होता। अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के पीछे मूल भावना यह है कि केवल प्रशासनिक योग्यता, कुशलता, अनुभव, नम्रता और सेवा भाव रखने वाले व्यक्तियों को ही कार्यपालिका में स्थान दिया जाये तथा इन्हें राजनीतिक दलों के दलदल से पृथक् रखा जाय। व्यवहार मे ठीक यही हुआ है। हेन्स हूबर ने कहा है कि ''अधिकांश संघीय पार्षद जनता के ही आदमी रहे है।'' प्राय: संघीय सभा के अनुभवी सदस्यों में से संघीय परिषद् के सदस्यों को निर्वाचित कर दिया जाता है, यद्यपि निर्वाचित होने के बाद इन्हें संघीय सभा की सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ता है। वस्तुत: संघीय सभा इन्हें बार-बार पुन: निर्वाचित कर देती है और ये तब तक अपने पद पर बने रहते हैं, जब तक ये इस पर रहकर सेवा करना चाहते हैं। यही कारण है कि संघीय सभा के सदस्य एक लम्बे समय तक अपने पद पर बने रहते हैं।

संघीय परिषद् के सदस्यों के निर्वाचन के सम्बन्ध में कुछ अन्य नियम व परम्परायें इस प्रकार हैं-

1. संघीय परिषद् में एक कैण्टन से सिर्फ एक व्यक्ति ही निर्वाचित हो सकता है।
2. रक्त एवं विवाह द्वारा सम्बद्ध दो व्यक्ति एक साथ संघीय परिषद् के सदस्य नहीं बन सकते।
3. स्विट्जरलैण्ड में यह परम्परा है कि दो सबसे बड़े कैण्टन बर्न और ज्यूरिख का सदैव ही परिषद् में प्रतिनिधित्व रहता है।
4. संघीय परिषद् में जर्मन भाषा बोलने वाले कैण्टनों के पांच से अधिक सदस्य नहीं हो सकते। सामान्यत: संघीय परिषद् में चार जर्मन भाषा बोलने वाले, दो फ्रेंच भाषा बोलने वाले और एक इटालियन भाषा बोलने वाले कैण्टनों का प्रतिनिधित्व होता है।

22.2.2 सदस्यों की योग्यताएँ- संविधान की धारा 96 के अनुसार ''संघीय परिषद् के सदस्य उन सभी स्विस नागरिकों में से चुने जाते हैं जो राष्ट्रीय सभा की सदस्यता की योग्यता रखते हैं।'' सिद्धान्तत: संघीय सभा के सदस्य संघीय परिषद् के सदस्य नहीं हो सकते, परन्तु व्यवहार में संघीय सभा के सदस्यों से ही इन्हें चुना जाता है और चुने जाने के बाद वे संघीय सभा की सदस्यता से त्याग पत्र दे देते हैं। कोई भी संघीय पार्षद अपने कार्यकाल के दौरान किसी अन्य व्यवसाय को नहीं अपना सकता।

22.2.3 वेतन- संघीय परिषद् के सदस्यों को संघीय कोष से वेतन दिया जाता है। संघीय परिषद् के प्रत्येक सदस्य को 80 हजार फ्रेंक वार्षिक वेतन तथा परिषद् के अध्यक्ष को 90 हजार फ्रेंक वेतन मिलता है। यदि कोई व्यक्ति 10 वर्ष तक परिषद् का सदस्य रह चुका हो तो उसे पेंशन दी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

22.2.4 अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष (राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति)– संघीय परिषद् अपने सदस्यों में से ही प्रतिवर्ष अपने सभापति और उप–सभापति का निर्वाचन करती है जिन्हें संघ का राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति कहा जाता है। संघीय सभा, संघीय परिषद् के सदस्यों में से एक वर्ष के लिए एक को अध्यक्ष और दूसरे को उपाध्यक्ष निर्वाचित करती है। कोई भी सदस्य लगातार दो वर्षों के लिए अध्यक्ष नहीं चुना जा सकता। अब यह परम्परा बन गई है कि परिषद् का सबसे वरिष्ठ सदस्य ही अध्यक्ष बनता है। यह भी परम्परा बन गई है कि इस वर्ष का उपाध्यक्ष अगले वर्ष अध्यक्ष निर्वाचित किया जाता है।

अध्यक्ष की स्थिति न तो अमेरिकी राष्ट्रपति जैसी होती है और न ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के समान। उसे कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते। अपने साथियों के समान वह भी एक विभाग का अध्यक्ष होता है। बराबर वालों में एक होने के कारण ही उसे विशेष महत्त्वहीन अध्यक्ष कहा जाता है। अध्यक्ष की शक्तियाँ बहुत ही कम हैं। देश के प्रशासन के लिए अन्य सदस्यों की अपेक्षा किसी भी प्रकार वह अधिक उत्तरदायी नहीं हैं। समस्त निर्णय संघीय परिषद् ही एकल सत्ता के रूप में करती है। अध्यक्ष न किसी अधिकारी की नियुक्ति करता है और न कोई सन्धि–वार्ता आदि कर सकता है। किसी विधेयक पर उसे निषेधात्मक अधिकार भी नहीं है। उसकी शक्ति की सीमा इतनी है कि वह संघ की सभाओं का सभापतित्व करता है, विभिन्न विभागों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों को देखता है, विभिन्न प्रशासकीय विभागों के कार्य का सामान्य निरीक्षण करता है और किसी मामले पर समान मत होने पर अपना निर्णायक मत देता है। वह केवल औपचारिक अवसरों पर नाममात्र का राज्याध्यक्ष होता है। उसे बिना महत्त्व का राष्ट्रपति कहा जाता है।

22.2.5 संघीय परिषद् के विभागों का वितरण– स्विस प्रशासन के सभी कार्यों को सात विभागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक विभाग एक संघीय परिषद् के सदस्य के अधीन होता है जो उसके कार्य–संचालन के लिए सम्पूर्ण परिषद् के प्रति उत्तरदायी होता है। विभागों का वितरण औपचारिक रूप से परिषद् द्वारा किया जाता है, किन्तु व्यवहार में निर्वाचन के समय ही प्राय: स्पष्ट हो जाता है कि कौनसा सदस्य किस विभाग को सम्भालेगा। एक विभाग के प्रमुख की अनुपस्थिति में कार्य करने के लिए प्रत्येक विभाग का प्रमुख दूसरे विभाग का उप–प्रमुख होता है।

परम्परा के अनुसार परिषद् के सदस्य पुन: निर्वाचित हो सकते हैं और उन्हें पहले वाले विभाग ही सौंप दिए जाते हैं। इसके फलस्वरूप विभागों के मन्त्री नौसीखिए नहीं रहते वरन् उनमें से अधिकांश अपने–अपने विभाग के विशेषज्ञ बन जाते हैं। वर्तमान समय में स्विट्‌जरलैण्ड के प्रशासनिक विभाग ये हैं राजनीतिक विभाग, गृह विभाग, सैनिक विभाग, न्याय एवं पुलिस विभाग, वित्त एवं प्रशुल्क विभाग, सार्वजनिक अर्थ विभाग तथा डाक और रेल विभाग।

22.3 संघीय परिषद् के कार्य और शक्तियाँ

स्विस संघीय परिषद् के अधिकार और शक्तियाँ मौलिक हैं, जिन्हें वह प्रत्यक्ष रूप से संविधान से प्राप्त करती है। इंग्लैण्ड और भारत के मन्त्रिमण्डल के समान वह किसी राज्याध्यक्ष की सैद्धान्तिक शक्तियों का व्यावहारिक प्रयोग नहीं करती। वह किसी संवैधानिक मुख्य कार्यपालिका का प्रतिनिधित्व नहीं करती। स्विस संविधान के अनुच्छेद 102 में संघीय परिषद् के अधिकारों और कार्यों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। उसके निम्नलिखित कार्य हैं–

22.3.1 प्रशासनिक कार्य– संघीय परिषद् स्विस इकाई की सर्वोच्च कार्यपालिका सत्ता है और इसे संघीय आज्ञाओं तथा कानूनों के अनुसार सम्पूर्ण संघ के प्रशासन का नियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त है। यह देखती है कि संघीय संविधान तथा संघीय कानूनों का पालन हो रहा है, अथवा नहीं। इसके लिए वह आवश्यक कार्यवाही करती है। प्रशासनिक क्षेत्र में संघीय परिषद् का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह संघ में शान्ति–व्यवस्था का उचित प्रबन्ध करे, बाह्य आक्रमणों एवं आन्तरिक उपद्रवों से देश की रक्षा करे तथा स्विट्‌जरलैण्ड की स्वतन्त्रता और तटस्थता की सुरक्षा करे। यथार्थ में आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था कैण्टनों का उत्तरदायित्व है, लेकिन यदि आन्तरिक अव्यवस्था हो जाए तो संघीय सभा निर्णय करती है कि क्या कार्यवाही की जाए और संघीय परिषद् उसकी आज्ञाओं या आदेशों को क्रियान्वित करती है।

संघीय संसद के कानूनों और अधिनियमों, संघीय न्यायलय के निर्णयों तथा विभिन्न कैण्टनों के पारस्परिक विवादों के समाधान के लिए किए गए समझौतों और मध्यस्थता को लागू कराने का प्रबन्ध भी संघीय परिषद् करती है। वही संघीय प्रशासन के सब

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अधिकारियों एवं कर्मचारियों के व्यवहार एवं कार्य का निर्धारण करती है। जिन पदों पर संघीय-सभा क्षेत्रीय न्यायालय अथवा अन्य किसी संघीय प्राधिकारी को नियुक्ति का अधिकार नहीं दिया गया हो, उन पर संघीय-परिषद् ही नियुक्ति करती है। व्यवहार में, संघीय परिषद् अपने नियुक्ति सम्बन्धी अधिकारों को प्रशासन के विभिन्न विभागों को प्रत्यायोजित कर देती है और विभिन्न नियमों एवं अन्य स्वतन्त्र सत्ताओं अथवा निकायों को सौंप देती है।

स्विट्जरलैण्ड के वैदेशिक सम्बन्धों के नियमों और उनकी देखभाल का अधिकार भी संघीय-परिषद को ही दिया गया है। संघीय-परिषद् ही उन विभिन्न सन्धियों का परीक्षण करती है जो कैण्टन आपस में अथवा विदेशों के साथ करते हैं। यदि वे सन्धियाँ उचित होती है तो उन पर स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है, अन्यथा संघीय परिषद् अवाँछनीय सन्धि या सन्धियों के विरूद्ध संघीय सभा में अपील करता है और उन्हें रद्द करने की सिफारिश करती है।

संघीय-परिषद् कैण्टनों द्वारा पारित सभी कानूनों और उनके सभी अध्यादेशों का भी परीक्षण करती है। कैण्टनों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने सभी कानूनों और अध्यादेशों को संघीय परिषद् से स्वीकृत करवाएँ। साथ ही संघीय परिषद् एक वार्षिक रिर्पोट प्रतिवर्ष व्यवस्थापिका के समक्ष प्रस्तुत करती है। व्यवस्थापिका में परिषद् के कार्यों पर विचार-विमर्श होता है, आलोचना होती है, परन्तु संघीय सभा, संघीय परिषद् को 'अविश्वास प्रस्ताव' द्वारा अपदस्थ नहीं कर सकती है।

22.3.2 विधि निर्माण सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 102 के अनुसार संघीय परिषद् को यह अधिकार है कि वह कानूनों के विधेयक संघीय सभा (संसद) में प्रस्तुत करे, लगभग समस्त कानूनों के विधेयक संघीय परिषद् द्वारा ही प्रस्तुत किए जाते हैं। व्यक्तिगत सदस्यों के विधेयक भी पहले परिषद् के पास सुधार व सुझावों के लिए भेजे जाते हैं और उसके बाद ही उन पर संघीय सभा विचार करती है। इसके अतिरिक्त अध्यादेश जारी करने तथा प्रदत्त विधायन के अन्तर्गत नियम बनाने का भी अधिकार संघीय परिषद् को है। परिषद् के अध्यादेशों एवं प्रदत्त व्यवस्था-व्यवस्थापन के अन्तर्गत बनाए गए नियमों का प्रभाव कानूनों के समान ही होता है, और न्यायालयों द्वारा उन्हें मान्यता दी जाती है। अध्यादेशों के विषय में किसी भी प्रकार के जनमत-संग्रह की व्यवस्था नहीं है जबकि कानूनों के विषय में ऐसा है।

संघीय परिषद् के सदस्य संघीय सभा के सदस्य नहीं होते, परन्तु वे व्यवस्थापिका की कार्यवाहियों में भाग लेते हैं। वे संघीय सभा के किसी भी सदन में उपस्थित हो सकते हैं, भाषण दे सकते हैं, वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं और प्रश्नों के उत्तर देकर सदस्यों की शंका का समाधान कर सकते हैं। संघीय सभा के सदस्य न होने के कारण वे मतदान में भाग नहीं ले सकते। वे संघीय सभा के सहायक हैं, जो सभा की इच्छा का उल्लंघन नहीं कर सकते।

22.3.3 वित्तीय कार्य- वित्तीय क्षेत्र में संघीय परिषद् को पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। संघीय परिषद् बजट को तैयार करती है। परिषद् ही संघीय बजट को संघीय सभा के सामने स्वीकृति के लिए रखती है यह स्विस राज्यमण्डल के वित्तीय प्रशासन को चलाती है। यह संघीय सरकार के खर्च और आमदनी का हिसाब संघीय सभा को देती है। यह संघीय आय-व्यय की देखभाल करती है और राजस्व संग्रह करती है। आय-व्यय का समुचित हिसाब रखने का उत्तरदायित्व परिषद् पर ही है।

22.3.4 न्यायिक कार्य- संघीय परिषद् को कुछ न्यायिक अधिकार भी प्राप्त हैं। वह कुछ विशेष प्रकार की अन्तरराष्ट्रीय सन्धियाँ और संविधान की कतिपय धाराओं के अन्तर्गत उत्पन्न विवादों के सम्बन्ध में की गई अपीलों पर निर्णय देती है। संघीय रेलवे प्रशासन एवं विभिन्न प्रशासकीय विभागों के निर्णयों के विरूद्ध की गई अपीलों की भी सुनवाई करती है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि संघीय-परिषद् अन्तिम अपीलीय न्यायालय नहीं है, इसके निर्णय के विरूद्ध अपील संघीय न्यायालय तथा संसद में की जा सकती हैं।

22.3.5 संकटकालीन कार्य- संविधान के अन्तर्गत संघीय परिषद् को विशेष संकटकालीन अधिकार प्राप्त नहीं हैं, परन्तु अन्तरराष्ट्रीय युद्ध, आर्थिक-मंदी या ऐसे ही अन्य संकटों के समय संघीय सभा अपने सब अधिकार संघीय परिषद् को सौंप सकती है और ऐसा कई अवसरों पर हो चुका है। उदाहरणार्थ, 1849, 1853, 1859 और 1870 ई. में देश की तटस्थता की रक्षार्थ, 1914 तथा 1939 में विश्व युद्ध के समय राष्ट्र की तटस्थता, स्वतन्त्रता एवं आर्थिक हितों की रक्षा के लिए संघीय परिषद् को 'पूर्णाधिकार' सौंपे गए थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

22.4 स्विस संघीय परिषद् की विलक्षणता

स्विस संघीय परिषद् की स्थिति विश्व में अनूठी और विशिष्ट है। यह न तो विशुद्ध रूप से ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के ही अनुरूप है और न अमेरिका के अध्यक्षात्मक कार्यपालिका के ही समान है, फिर भी इसमें दोनों के गुण और लक्षण विद्यमान हैं।

22.4.1 बहुल कार्यपालिका– स्विस कार्यपालिका एक बहुल कार्यपालिका है। इसकी तुलना में ब्रिटेन, अमेरिका आदि में कार्यपालिका का स्वरूप एकल है। वहाँ कार्यपालिका सम्बन्धी अन्तिम उत्तरदायित्व एक ही व्यक्ति पर अर्थात् प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति पर होता है। इसके अतिरिक्त एकल कार्यपालिका वाले देशों में मन्त्रिमण्डल के सदस्यों में से किसी एक की स्थिति अन्य की तुलना में अधिक महत्त्व की होती हैं, लेकिन संघीय परिषद् इन सबसे अनूठी है क्योंकि कार्यपालिका शक्ति एक व्यक्ति में निहित न होकर व्यक्तियों के एक समूह में निहित होती है जो सब समानपदी हैं यहाँ तक कि परिषद् का अध्यक्ष भी कोई विशेषाधिकार नहीं रखता है।

22.4.2 संसदीय और अध्यक्षीय शासन प्रणालियों के गुणों का समावेश– स्विस संघीय परिषद् जैसा कि मुनरो ने कहा है, ''संसदात्मक और अध्यक्षात्मक दोनों प्रकार की शासन प्रणालियों के गुणों से तो युक्त है परन्तु उनके दोषों से मुक्त है।'' उदाहरणतः अमरीका जैसी अध्यक्षात्मक प्रणाली की भाँति इसके सदस्य संघीय सभा के सदस्य नहीं होते, परन्तु ब्रिटेन जैसी संसदात्मक प्रणाली की भाँति इसके सदस्यों का चयन संघीय सभा के सदस्यों से होता है, यद्यपि संघीय परिषद् का सदस्य निर्वाचित होते ही इन्हें संघीय सभा की सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ता है।

संसदात्मक प्रणाली की भाँति संघीय परिषद् संघीय सभा का राजनीतिक नेतृत्व नहीं करती फिर भी वह उसकी भाँति विधेयकों के प्रारूपों को तैयार करती है, अधिकांश विधेयकों को संघीय सभा में प्रस्तुत करती है तथा उसका मार्गदर्शन करती है। इसके सदस्य संघीय सभा के दोनों सदनों की बैठकों में उपस्थित होते हैं, वाद–विवाद में भाग लेते हैं, प्रश्नों का उत्तर देते हैं तथा सदनों के निर्णयों को प्रभावित करते है। परन्तु संसदात्मक प्रणाली की भाँति जिस कार्य को वे नहीं कर सकते वह यह है कि वे मतदान के समय अपना मत प्रकट नहीं कर सकते।

संसदात्मक प्रणाली के विपरीत परन्तु, अध्यक्षात्मक प्रणाली के अनुरूप संघीय सभा, संघीय परिषद् को समय से पूर्व अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके पदच्युत नहीं कर सकती और न ही संघीय परिषद् संघीय सभा को समय से पूर्व विघटित कर पुनर्निर्वाचन करा सकती है। अमरीकी कार्यपालिका की भाँति स्विस संघीय परिषद् का कार्यकाल निश्चित है परन्तु जहाँ अमरीका में महाभियोग की व्यवस्था है वहाँ स्विट्जरलैण्ड में महाभियोग की कोई व्यवस्था नहीं। दूसरें शब्दों में संघीय परिषद् के सदस्यों के विरुद्ध महाभियोग नहीं लगाया जा सकता है।

22.4.3 उत्तरदायित्व और स्थायित्व का समावेश– स्विस संघीय परिषद् में उत्तरदायित्व और स्थायित्व का बड़ा उपयोगी एवं स्वस्थ योग है। संघीय परिषद् व्यवस्थापिका के प्रति इस दृष्टि से उत्तरदायी है कि उसके सदस्य प्रश्नों–प्रति–प्रश्नों पर उत्तर देते हैं और सरकार की नीति का औचित्य सिद्ध करते हैं। कार्यकारिणी पर व्यवस्थापिका का नियन्त्रण भी होता है। व्यवस्थापिका कार्यकारिणी को विशेष नीति अपनाने और कार्य करने के लिए आदेश दे सकती है और उसको मानना उसके लिए अनिवार्य है। इस तरह संघीय परिषद्, संघीय सभा के प्रति उत्तरदायी है। परन्तु, दूसरी ओर यह तत्त्व संसदीय प्रणाली के विपरीत है, संघीय सभा अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके संघीय परिषद् को समय से पूर्व पदच्युत नहीं कर सकती। जब कभी संघीय सभा, संघीय परिषद् द्वारा प्रस्तुत किसी विधेयक को अस्वीकार कर देती है तो उसे अविश्वास का प्रस्ताव नहीं समझा जाता और संघीय परिषद् पद नहीं त्यागती। संघीय परिषद् अपने आपको संघीय सभा की इच्छाओं के अनुरूप ढाल लेती है और अपने पद पर बनी रहती है।

22.4.4 निर्दलीय चरित्र– विश्व के अधिकांश देशों में कार्यपालिका का सम्बन्ध किसी–न–किसी राजनीतिक दल से होता है। किन्तु स्विस संघीय परिषद् में समस्त दलों के प्रतिनिधि होते हैं और उनकी सदस्यता उनकी योग्यता पर निर्भर करती है। परिषद् जो कुछ भी करना चाहे वह किसी दल के यन्त्र के रूप में नहीं करती। उसके सदस्य परिषद् की बैठकों में भी और संसद् की बैठकों में भी अपने–अपने मत व्यक्त करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। इतना ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर वे संसद् में अपने साथी सदस्यों के निर्णयों के विरूद्ध भी बोल सकते हैं। इस प्रकार स्विट्जरलैण्ड में यह एक विचित्र किन्तु आदर्श व्यवस्था है कि संघीय परिषद् में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

और संघीय सभा में जो कुछ भी होता है वह प्राय: दल बन्दी की सीमा से उठकर होता है और उसका उद्देश्य राष्ट्रीय हितों की साधना करना होता है।

22.4.5 विशेषज्ञों की कार्यपालिका– संघीय परिषद् के सभी सदस्य अपने–अपने विभागों के विशेषज्ञ होते हैं। वहाँ विभागों का वितरण राजनीतिक दलबन्दी के आधार पर नहीं, वरन् प्रशासनिक कार्यकुशलता के आधार पर होता है। संसदीय देशों की भाँति परिषद् के सदस्य सक्रिय राजनीतिज्ञ नहीं होते, अपितु अपने–अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ होते हैं। इसी कारण उनमें उचित निर्णय और कर्त्तव्य–परायणता आदि विशिष्ट गुण पाए जाते हैं।

22.4.6 सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव– संसदात्मक प्रणाली में मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। वे इकट्ठे ही तैरते और इकट्ठे ही डूबते हैं। उसमें एक सबके लिए और सब एक के लिए होते हैं। परन्तु स्विस संघीय परिषद् के सदस्य सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य नहीं करते। वे अलग–अलग अपने–अपने विभागों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व न होने के कारण परिषद् का कोई भी सदस्य अपने सहयोगी की आलोचना संघीय सभा में कर सकता है।

22.4.7 नेतृत्त्वविहीन कार्यपालिका– स्विस संघीय परिषद् का अध्यक्ष अन्य सदस्यों के समकक्ष है। वह न तो अन्य सदस्यों को नियुक्त करता है, न पदच्युत और न परिषद् को नेतृत्व प्रदान करता है। एक स्विस नागरिक के अनुसार, ''उसके पद का कोई राष्ट्रीय महत्त्व नहीं है, उसके पास न तो कोई विशिष्ट अधिकार और न ही उसका कोई विशेष प्रभाव है।'' अत: संघीय परिषद् का यह निरालापन है कि वह किसी एक व्यक्ति की प्रधानता अथवा नेतृत्त्व में कार्य नहीं करती।

22.5 संघीय परिषद् तथा संघीय सभा में सम्बन्ध

स्विट्जरलैण्ड में संघीय कार्यपालिका का व्यवस्थापिका से सम्बन्ध अन्य देशों की अपेक्षा नितान्त भिन्न है। ये न तो ब्रिटेन जैसी संसदीय प्रणालियों में मन्त्रिमण्डल और संसद के सम्बन्धों की भाँति हैं और न अमरीका जैसी अध्यक्षीय प्रणालियों में राष्ट्रपति और कांग्रेस के सम्बन्धों की तरह हैं। इनके सम्बन्धों में ससंदात्मक और अध्यक्षात्मक दोनों शासन प्रणालियों के गुणों का समावेश किया गया है और उनकी त्रुटियों को दूर रखा गया है। जर्चर के मतानुसार, ''स्विस संविधान का सिद्धान्त यह प्रतीत होता है कि कार्यपालिका शासन की एक स्वतन्त्र अथवा सहायक शाखा न होकर संघीय सभा की सेविका है।'' स्विस संघीय परिषद् तथा संघीय सभा का सम्बन्ध इस प्रकार है–

1. सिद्धान्तत: संघीय परिषद् संघीय सभा के अधीन, उसके आदेशों और निर्देशों को कार्यान्वित करने वाली एक निकाय है। वह उसकी सेविका और अभिकर्त्ता है। उसे अपने स्वामियों की इच्छाओं का आदर करना पड़ता है। उसे प्रतिवर्ष अपने कार्यों की एक रिपोर्ट संघीय सभा के समक्ष प्रस्तुत करनी पड़ती है। संविधान संशोधनों के प्रश्न पर दोनों सदनों में मतभेद होने की स्थिति से, यदि संघीय सभा का समय से पूर्व विघटन हो जाता है तो संघीय परिषद् का भी विघटन हो जाता है और नवनिर्वाचित संघीय सभा पुन: शेष वर्षों के लिए संघीय परिषद् का निर्वाचन करती है।

   व्यवहार में, संघीय परिषद् एक स्वतन्त्र और स्थायी संस्था है। उदाहरणत: संघीय परिषद् का निर्वाचन संघीय सभा के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में चार वर्ष के लिए होता है, परन्तु संघीय सभा, ब्रिटिश कॉमन सभा की भाँति, अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके उसे समय से पूर्व पदच्युत नहीं कर सकती। संघीय परिषद् का कार्यकाल अमरीकी राष्ट्रपति की भाँति निश्चित है।

2. सिद्धान्तत: स्विट्जरलैण्ड में विधायी क्रिया स्विस लोगों अथवा संघीय सभा अथवा संघीय परिषद् में से किसी के द्वारा आरम्भ की जा सकती है। परन्तु व्यवहार में हर स्थिति में विधान के प्रारूप को संघीय परिषद् ही तैयार करती है।

3. सिद्धान्तत: संघीय परिषद् संघीय सभा का नेतृत्व नहीं करती जैसाकि ब्रिटेन जैसी संसदीय प्रणालियों में मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका का नेतृत्व करता है परन्तु व्यवहार में वह उसका मार्ग निर्देशन करती है। उदाहरणत: संघीय सभा संघीय परिषद् के संदेश अथवा रिपोर्ट आने पर ही किसी विधेयक पर विचार–विमर्श प्रारम्भ करती है।

4. सिद्धान्तत: अमरीका की भाँति, स्विस संघीय परिषद् के सदस्य संघीय सभा के सदस्य नहीं होते परन्तु व्यवहार में, वे ब्रिटेन की भाँति, उसकी बैठकों में उपस्थित होते हैं, विधेयकों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं, प्रश्नों का उत्तर देते हैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और उनके निर्णयों को प्रभावित करते हैं। परन्तु जब विधेयकों पर मतदान होता है तो वे उसमें भाग नहीं लेते। जब संघीय सभा संघीय परिषद् द्वारा प्रस्तुत किसी विधेयक को अस्वीकार कर देती है तो भी उसके सदस्य पद नहीं त्यागते और उसे अविश्वास का प्रस्ताव नहीं समझा जाता। संघीय परिषद् के सदस्य अपने में संघीय सभा की इच्छानुसार परिवर्तन कर लेते हैं। ब्रिटेन जैसी संसदात्मक प्रणालियों में ऐसा कभी नहीं हो सकता।

5. सिद्धान्ततः अनुच्छेद 71 के अनुसार संघीय सभा "स्विस राज्यमण्डल की सर्वोच्च सत्ता है।" अन्य सभी संघीय सत्तायें उसी के अधीन हैं तथा उसी से आदेश और निर्देश प्राप्त करती हैं। परन्तु व्यवहार में, आधुनिक राज्यों की आवश्यकताओं और युद्ध की अनिवार्यताओं के कारण संघीय परिषद् ऐसी शक्तियों का प्रयोग करती है जो सिद्धान्ततः संघीय सभा के पास हैं। उदाहरणतः संविधान संघीय सभा को संकटकालीन शक्तियाँ प्रदान करता है, परन्तु व्यवहार में संकट उत्पन्न होने पर संघीय परिषद् ने ही उनका प्रयोग किया है।

22.6 सारांश

स्विस संघीय परिषद् में न तो राष्ट्रपति होता है, न मन्त्रिमण्डल होता है और न उनका सामूहिक उत्तरदायित्व, न कार्यपालिका विधानमण्डल का विघटन कर सकती है और न यह संघीय सभा इस कार्यपालिका को अपदस्थ कर सकती है। विश्व में यह अपने ढंग की एक अनोखी संस्था है इसमें दोनों पद्धतियों-संसदीय और अध्यक्षीय के गुणों को अपनाने तथा अवगुणों से बचने का प्रयत्न किया गया है। इसमें उत्तरदायित्व तथा स्थायित्व का अपूर्व सम्मिश्रण है। संघीय परिषद् स्थायी तथा अविच्छिन्न है।

संघीय परिषद् के सदस्य उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ होते हैं। उनके पास प्रशासन का लम्बा अनुभव होता है। वे प्रशासनिक विभाग के विशेषज्ञ होते हैं, अतः व्यावहारिक राजनीति में उनका नेतृत्व स्थापित हो गया है। विधि-निर्माण के क्षेत्र में पहल करने और प्रशासन का नेतृत्व करने के कारण संघीय सभा की तुलना में संघीय परिषद् अधिक शक्तिशाली निकाय के रूप में उभर रही है। संघीय परिषद् की इसी प्रभावपूर्ण स्थिति की ओर संकेत करते हुए रैपर्ड ने लिखा है, "संघीय सभा के संवैधानिक अधिकारों के होते हुए भी आज नेतृत्व स्पष्ट रूप से संघीय परिषद् के हाथों में चला गया है।"

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्विट्जरलैण्ड की संघीय कार्यपालिका के संगठन, शक्तियों एवं भूमिका को स्पष्ट करें।
2. स्विस संघीय परिषद् और स्विस संघीय सभा के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।
3. "स्विट्जरलैण्ड की संघीय कार्यपालिका, संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक पद्धतियों का अनुपम समन्वय है।" स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'बहुल कार्यपालिका' से क्या तात्पर्य है ?
2. स्विस संघीय कार्यपालिका की विलक्षणताओं की विवेचना कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विस संघीय परिषद् में कितने सदस्य होते हैं ?
2. स्विस संघीय परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन कौन करता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-23
संघीय न्यायपालिका

संरचना

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 संघीय न्यायालय का संगठन
    23.2.1 रचना
    23.2.2 कार्यकाल
    23.2.3 योग्यतायें
    23.2.4 वेतन
    23.2.5 कार्यप्रणाली
23.3 संघीय न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र
    23.3.1 दीवानी क्षेत्राधिकार
    23.3.2 फौजदारी क्षेत्राधिकार
    23.3.3 संवैधानिक क्षेत्राधिकार
    23.3.4 प्रशासकीय क्षेत्राधिकार
23.4 स्विस संघीय न्यायाधिकरण द्वारा आंशिक न्यायिक पुनर्निरीक्षण
23.5 सारांश

23.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत स्विट्जरलैण्ड की संघीय न्यायपालिका के संगठन का वर्णन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- स्विस संघीय न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र को समझ सकेंगे,
- स्विस संघीय न्यायपालिका द्वारा आंशिक न्यायिक पुनर्निरीक्षण समीक्षा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- स्विस संघीय न्यायपालिका की वास्तविक स्थिति को समझ सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

स्विट्जरलैण्ड की संघीय न्याय प्रणाली में एकमात्र न्यायालय 'संघीय न्यायालय' है, जो देश का सर्वोच्च न्यायालय है। संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति स्विट्जरलैण्ड में संघीय धरातल पर सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त कोई अधीनस्थ न्यायालय नहीं हैं। स्विस संघीय न्यायाधिकरण की स्थापना सन् 1848 ई. के संविधान द्वारा की गई। संविधान के अनुच्छेद 106 में कहा गया है-''संघीय मामलों के न्याय प्रशासन के लिए एक संघीय न्यायाधिकरण की स्थापना की जाएगी।'' सन् 1848 ई. के संविधान द्वारा उसे अत्यन्त सीमित शक्तियाँ दी गई थीं। किन्तु 1874 में संविधान संशोधन किया गया, उसके द्वारा संघीय न्यायाधिकरण की शक्तियों में वृद्धि हो गयी। उसके बाद 1907 में संघीय न्यायाधिकरण को दीवानी संहिता के सम्बन्ध में शक्तियाँ प्रदान की गयीं, 1929 में इसे प्रशासनिक कानूनों के अन्तर्गत शक्तियाँ दी गयीं और 1937 में इसे फौजदारी संहिता के अन्तर्गत अधिकार प्रदान किये गये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वर्तमान समय में यद्यपि स्विस संघीय न्यायालय को समस्त प्रशासनिक तन्त्र में वह स्थिति प्राप्त नहीं है जो स्थिति संयुक्त राज्य अमरीका, भारत आदि संघ राज्यों में सर्वोच्च न्यायलय को प्राप्त है। जहाँ अमरीका तथा भारत जैसे संघीय राज्यों में संघीय न्यायालय संविधान के संरक्षक एवं अभिभावक के रूप में कार्य करती है, उसकी सर्वोच्चता की रक्षा करती है वहाँ स्विट्जरलैण्ड में संघीय न्यायाधिकरण इन कार्यों को सम्पादित नहीं करती। लेकिन फिर भी 1848 ई. की तुलना में संघीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि और उसकी स्थिति में सुधार अवश्य ही हुआ है।

23.2 संघीय न्यायालय का संगठन

स्विट्जरलैण्ड में संघीय न्यायालय के संगठन का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है -

23.2.1 रचना- संविधान द्वारा संघीय न्यायाधिकरण के न्यायाधीशों की संख्या निश्चित नहीं की गई है। यह अधिकार संघीय सभा को सौंप दिया गया है जो अपने दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में न्यायाधीशों का निर्वाचन करती है। संविधान द्वारा न्यायाधीशों की संख्या निश्चित न होने के परिणामस्वरूप यह संख्या निरन्तर परिवर्तनशील रही है। आजकल न्यायाधीशों की संख्या 26 से 28 तक व वैकल्पिक न्यायाधीशों की संख्या 11 से 13 तक हो सकती है। वर्तमान संघीय न्यायाधिकरण में 26 न्यायाधीश व 12 वैकल्पिक न्यायाधीश हैं। वैकल्पिक न्यायाधीश उस समय कार्य करते हैं जब स्थायी न्यायाधीश किसी कारणवंश अपने पद पर कार्य न कर सकें।

23.2.2 कार्यकाल- संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों एवं वैकल्पिक न्यायाधीशों का निर्वाचन 6 वर्ष के लिए किया जाता है। इससे यह भय था कि निर्वाचन-पद्धति तथा 6 वर्ष के अल्पकाल के कारण न्यायाधीशों पर राजनीतिक प्रभाव पड़ सकता है तथा उनकी निष्पक्षता समाप्त हो सकती है। अत: उनके पुनर्निर्वाचन की व्यवस्था कर दी गई। पुनर्निर्वाचन की व्यवस्था के परिणामस्वरूप न्यायाधीशों का कार्यकाल स्थायी-सा हो जाता है। पर व्यवहार में, न्यायाधीश उस वर्ष त्यागपत्र दे देता है जिस वर्ष उसकी आयु 70 वर्ष की हो जाती है।

23.2.3 योग्यतायें- संविधान न्यायाधीशों के लिए कोई निश्चित योग्यतायें निर्धारित नहीं करता। स्विस संविधान अनुच्छेद 108 में केवल इस बात की व्यवस्था करता है कि राष्ट्रीय परिषद् की सदस्यता का पात्र प्रत्येक स्विस नागरिक संघीय न्यायाधिकरण का सदस्य चुना जा सकता है। परन्तु व्यवहार में, योग्य विधिवेत्ताओं, कैण्टन न्यायालयों के न्यायाधीशों, कानून के अध्यापकों और संघीय न्यायाधिकरण के वरिष्ठ पदाधिकारियों को ही न्यायाधीश पद के लिए चुना जाता है। न्यायाधिकरण में प्राय: सभी प्रमुख धर्मों, भाषाओं और दलों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

23.2.4 वेतन- संघीय न्यायाधिकरण के न्यायाधीशों को 53 हजार स्विस फ्रांक वार्षिक वेतन मिलता है। न्यायाधिकरण के अध्यक्ष को 3600 फ्रांक तथा उपाध्यक्ष को 2400 फ्रांक अतिरिक्त मिलते है। वैकल्पिक न्यायाधीशों को कोई निश्चित वार्षिक वेतन नहीं मिलता है। जिन दिनों वे कार्य करते हैं, उन दिनों का उन्हें केवल भत्ता मिलता है। 60 वर्ष की आयु ग्रहण करने तथा कम से कम 10 वर्ष तक न्यायाधीश रहने पर पेन्शन प्राप्त कर सकते हैं। पेन्शन सेवाकाल के अनुसार 40 से 60 प्रतिशत के बीच होती है।

23.2.5 कार्य-प्रणाली- न्यायालय की अन्तरंग कार्य-प्रणाली निश्चित करने, विविध विभागों का दायित्व तय करने और कार्य करने के लिए नियम आदि का निर्माण करने के लिए पूरे संघीय न्यायालय की बैठक होती है। इसके अतिरिक्त उन मामलों की सुनवाई भी पूरे संघीय न्यायालय द्वारा होती है जिनके विषय में संघ के किसी कानून अथवा न्यायालय के किसी नियम के अनुसार व्यवस्था कर दी जाती है।

न्यायाधिकरण के प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता है जिसका चुनाव न्यायाधिकरण की पूर्ण बैठक में किया जाता है। न्यायालय की कार्यवाही खुले में होती है। यद्यपि कभी-कभी वह गुप्त भी हो सकती है। कार्य की सुविधा की दृष्टि से संघीय न्यायालय को निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया गया है-

(1) संवैधानिक तथा प्रशासनिक कानून न्यायालय, (2) दीवानी कानून का न्यायालय और (3) फौजदारी अपील का न्यायालय। प्रत्येक विभाग में 3 से 9 तक न्यायाधीश होते हैं। इन मुख्य विभागों के अतिरिक्त संघीय न्यायालय के अन्तर्गत और भी अनेक छोटे-छोटे न्यायालय हैं जिनमें मुख्य में हैं- ऋण तथा दीवालियापन का न्यायालय, दोषारोपण न्यायालय, संघीय फौजदारी न्यायालय एवं संघीय एसाइजेज। इनमें से प्रत्येक में तीन न्यायाधीश होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

23.3 संघीय न्यायाधिकरण का अधिकार क्षेत्र

संयुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया की भाँति स्विस न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र की संविधान में व्याख्या नहीं की गई है, क्योंकि स्विस विधानमण्डल को इसके अधिकार क्षेत्र में वृद्धि करने का अधिकार है। फिर भी इसका क्षेत्राधिकार पर्याप्त विस्तृत है। इसे प्रारम्भिक और अपीलीय दोनों ही प्रकार के अधिकार क्षेत्र प्राप्त हैं जो निम्नलिखित प्रकार से हैं:-

23.3.1 दीवानी

23.3.2 फौजदारी

23.3.3 संवैधानिक

23.3.4 प्रशासकीय

23.3.1 दीवानी क्षेत्राधिकार- दीवानी मामलों में संघीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार प्रारम्भिक और अपीलीय दोनों प्रकार का है। प्रारम्भिक रूप में संविधान की धारा 110 के अन्तर्गत न्यायालय के समक्ष निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रकार के दीवानी मामले लाए जा सकते हैं-

1. संघ तथा कैण्टनों के मध्य विवाद,
2. संघ और किसी निगम, कम्पनी अथवा साधारण नागरिकों के मध्य उत्पन्न विवाद। इसमें यह आवश्यक है कि वादी नागरिक अथवा निगम हो, संघ नहीं, और विवादग्रस्त राशि 8 हजार फ्रैंक से कम न हो।
3. विभिन्न कैण्टनों के बीच पारस्परिक विवाद,
4. किसी एक कैण्टन तथा साधारण नागरिक अथवा निगम के बीच उत्पन्न विवाद, बशर्ते कि विवाद ग्रस्त राशि 8 हजार फ्रैंक से कम न हो
5. विभिन्न कैण्टनों में कम्यूनों के बीच नागरिकता तथा अधिवास सम्बन्धी विवाद।

संघीय न्यायालय के समक्ष दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार में निम्नलिखित प्रकार के मामले प्रस्तुत होते हैं-

1. इसमें 10,000 फ्रैंक या उससे अधिक धनराशि के मुकदमों की अपील की जा सकती है, परन्तु इसके लिए दोनों पक्षों की सहमति आवश्यक है।
2. इसको कैण्टनों के न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध भी अपील सुनने का अधिकार है। इस प्रकार के मुकदमों की अपील निर्णय के सुनाने के बाद 30 दिन के अन्दर कर दी जानी चाहिए।

23.3.2 फौजदारी क्षेत्राधिकार- संविधान की धारा 112 के अनुसार संघीय न्यायालय को निम्नलिखित प्रकार के फौजदारी मामलों में निर्णय करने का अधिकार है-

1. संघ के विरूद्ध राजद्रोह तथा संघीय अधिकारियों के विरूद्ध विद्रोह अथवा हिंसा के मामले।
2. अन्तरराष्ट्रीय विधियों के विरूद्ध अपराध एवं दुराचार के मामले।
3. राजनीतिक अपराध अथवा दुराचार के ऐसे मामले जिनके कारण संघीय सैनिक हस्तक्षेप की आवश्यकता हुई हो।
4. उच्च सरकारी कर्मचारियों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के विरूद्ध फौजदारी आरोप।

23.3.3 संवैधानिक क्षेत्राधिकार- स्विस संविधान के अनुच्छेद 113 के अनुसार संघीय न्यायाधिकरण को निम्नलिखित मामलों में, जो संविधान से सम्बन्धित हों, निर्णय देने का अधिकार प्राप्त है-

1. संघीय प्राधिकारियों तथा कैण्टनों के अधिकारियों के मध्य क्षेत्राधिकार सम्बन्धी मामले,
2. कैण्टनों के बीच सार्वजनिक विधि के मध्य क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवाद,
3. नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों के अतिक्रमण के विरूद्ध अपीलें,
4. साधारण नागरिकों द्वारा समझौता एवं अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों के अतिक्रमण के विरूद्ध की गई अपीलें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

23.3.4 प्रशासकीय क्षेत्राधिकार- संविधान की धारा 133 द्वारा संघीय न्यायाधिकरण को प्रशासनिक क्षेत्र में निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं-

1. प्रशासनिक अभियोग से सम्बन्धित विवाद,
2. सरकारी कर्मचारियों की कानूनी क्षमता सम्बन्धी विवाद,
3. रेल प्रशासन सम्बन्धी विवाद, तथा
4. करारोपण सम्बन्धी प्रशासनिक विवाद।

23.4 स्विस संघीय न्यायाधिकरण द्वारा आंशिक न्यायिक पुनर्निरीक्षण

संवैधानिक अधिकार क्षेत्र में एक विशेष बात यह है कि अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के समान स्विस संघीय न्यायाधिकरण को पूर्ण अर्थों में, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है, वरन् उसे यह शक्ति आंशिक रूप से ही प्राप्त है। संघीय न्यायाधिकरण कैण्टनों की विधियों और कैण्टनों की सरकारों के कार्यों की इस आधार पर जांच कर सकता है कि वे संविधान के प्रतिकूल तो नहीं हैं और यदि वह इन्हें संविधान के प्रतिकूल समझे तो अवैध घोषित कर सकता है, लेकिन इसे संघीय क्षेत्र में न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त नहीं है अर्थात् वह संघीय सभा द्वारा निर्मित कानूनों को असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकता। यह बात संविधान की धारा 133 से नितान्त स्पष्ट है जिसमें कहा गया है कि ''सभी मामलों में संघीय न्यायाधिकरण संघीय सभा पारित विधियों और सभी सर्वमान्य आज्ञाओं को तथा संघीय सभा द्वारा अनुसमर्थित सभी विधियों को मान्यता देने पर विवश होगा।''

यह न्यायालय केवल कैण्टनों के कानूनों और कैण्टनों की सरकारों के कार्यों का पुनर्निरीक्षण कर सकता है और उन्हें अवैध घोषित कर सकता है।

23.5 सारांश

स्विस संघीय न्यायाधिकरण का न्यायिकपुनरावलोकन का अधिकार न तो अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय की भाँति ''कानून की उचित प्रक्रिया'' पर आधारित है और न ही भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की भाँति ''कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया'' पर आधारित है। सन् 1874 ई. के संविधान निर्माता संघीय न्यायाधिकरण को न तो अमरीका की भाँति शासन का एक पृथक् एवं स्वतन्त्र अंग बना सके और न उसे संविधान की व्याख्या करने की शक्ति प्रदान कर सके। स्विस संविधान निर्माताओं ने 'लोकप्रभुता' और 'संसदीय सर्वोच्चता' के सिद्धान्त को प्राथमिकता दी है, न्यायिक पुनरावलोकन को नहीं।

संक्षेप में, संरचना और शक्तियों में संघीय न्यायाधिकरण की स्थिति संघीय सभा की तुलना में निर्बल है। यह शासन का एक समान स्तरीय एवं स्वतन्त्र अंग नहीं, यह एक अधीनस्थ अंग है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्विस संघीय न्यायालय के संगठन, कार्यों तथा शक्तियों का उल्लेख कीजिए।
2. ''स्विस संघीय न्यायाधिकरण शासन का एक पृथक एवं स्वतन्त्र अंग नहीं है, यह संघीय सभा के अधीन एक निकाय है।'' इस कथन का विश्लेषण कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विस संघीय न्यायाधिकरण के संवैधानिक अधिकारों का वर्णन कीजिए।
2. स्विस संघीय न्यायाधिकरण के आंशिक न्यायिक पुनर्निरीक्षण की समीक्षा कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्विस संघीय न्यायाधिकरण के न्यायाधीशों का निर्वाचन कौन करता है ?
2. स्विस संघीय न्यायाधिकरण की शक्ति-हीनता के दो कारण बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–24
स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र

संरचना

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का अर्थ

24.3 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थायें

- 24.3.1 प्रारम्भिक सभाएं
- 24.3.2 जनमत संग्रह
- 24.3.3 आरम्भक

24.4 स्विस कैण्टनों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र

- 24.4.1 लोकसभा
- 24.4.2 जनमत संग्रह
- 24.4.3 आरम्भक

24.5 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के गुण

- 24.5.1 लोकतन्त्र का विशुद्धतम रूप
- 24.5.2 सरकार के उत्तरदायित्व में वृद्धि
- 24.5.3 राजनीतिक प्रशिक्षण
- 24.5.4 जन इच्छा जानने के साधन
- 24.5.5 विधायी त्रुटियों का उपचार
- 24.5.6 व्यवस्थापिका और जनता के बीच निरन्तर सम्पर्क
- 24.5.7 राजनीतिक स्थिरता
- 24.5.8 दलों के कुप्रभाव से मुक्ति
- 24.5.9 गतिरोध की कम सम्भावना
- 24.5.10 नागरिक स्वाभिमान की भावना जागृत होना

24.6 प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के दोष

- 24.6.1 विधानमण्डल की प्रतिष्ठा पर आघात
- 24.6.2 विधि–निर्माण कार्य सुचारू रूप से नहीं हो सकता
- 24.6.3 विधेयक का प्रारूप बनाना जटिल कार्य
- 24.6.4 जनता की उदासीनता
- 24.6.5 समय व धन का अपव्यय
- 24.6.6 राजनीतिक दलों के प्रभाव में वृद्धि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

24.6.7 रूढ़िवादिता को प्रोत्साहन

24.6.8 सही लोकमत का अचूक सूचक नहीं

24.7 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सफलता के कारण

24.7.1 स्विस जनता का चरित्र

24.7.2 प्रजातान्त्रिक परम्पराएँ

24.7.3 देश का छोटा आकार

24.7.4 तटस्थता की नीति

24.7.5 स्थानीय स्वशासन की परम्परा

24.7.6 जनमत संग्रह का अधिक प्रयोग

24.7.7 सामाजिक एवं आर्थिक समानता

24.7.8 राष्ट्रीय एकता

24.8 सारांश

24.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत स्विट्जरलैण्ड में प्रचलित प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थाओं का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप:

- स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के उपकरणों की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- केन्द्र और कैण्टनों में प्रचलित प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को समझ सकेंगे,
- प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के गुण दोषों का अध्ययन करेंगे,
- प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की कार्य प्रणाली: मूल्यांकन करेंगे,
- प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सफलता के लिये उत्तरदायी तत्वों का अध्ययन कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

विश्व के अधिकांश राज्यों में प्रजातन्त्र की अप्रत्यक्ष प्रणाली को अपनाया गया है। परन्तु स्विट्जरलैण्ड में प्रजातन्त्र की प्रत्यक्ष प्रणाली विद्यमान है। इसके कारण राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन में स्विट्जरलैण्ड को विशिष्ट स्थान प्राप्त है और यह अन्य प्रजातन्त्रों का आदर्श बना हुआ है। स्विट्जरलैण्ड के पाँच कैण्टनों में लैण्ड्जीमिण्ड (लोकसभाओं) के रूप में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का शुद्धतम रूप विद्यमान है। स्विट्जरलैण्ड के जिन कैण्टनों में प्रतिनिधात्मक संस्थायें अपनायी गयी हैं वहाँ भी प्रजातन्त्र के उपकरणों अर्थात् जनमत संग्रह और आरम्भन की संस्थाओं को अपनाया गया है। अमरीका के कुछ राज्यों में जनमत संग्रह और आरम्भन की संस्थायें विद्यमान हैं परन्तु वहाँ इनका प्रयोग असफल रहा है जबकि स्विट्जरलैण्ड में इनका प्रयोग सफल रहा है।

स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थाओं जनमत संग्रह और आरम्भन का इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि वे प्राय: स्विस संस्थायें बन गयी हैं। स्विट्जरलैण्ड और प्रजातन्त्र, पर्यायवाची शब्द बन गये हैं। ये संस्थायें स्विस राजनीतिक जीवन का ताना-बाना बन गयी हैं। यह ''स्विस राजनीतिक जीवन का मूल सिद्धान्त है।''

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थाओं के माध्यम से स्विस नागरिक अपनी 'निर्द्वन्द्व और प्रत्यक्ष प्रभुता' का प्रयोग करते हैं और शासन की कार्यवाही में शरीक होते हैं। जहाँ अन्य प्रजातान्त्रिक देशों में नागरिक निर्वाचनों के बाद अपने प्रतिनिधियों के दास हो जाते हैं, वहाँ स्विस नागरिक निर्वाचनों के बाद भी सम्प्रभु बने रहते हैं। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के उपकरणों के माध्यम से वे अपने प्रतिनिधियों के आचरण की कृतजन्य और उपेक्षाजन्य त्रुटियों को दूर करते हैं। स्विस लोग विधान के क्षेत्र में जनमत संग्रह के माध्यम से अन्तिम शब्द और आरम्भन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के माध्यम से प्रथम शब्द कहने का अधिकार सर्वदा अपने पास रखते हैं। स्विस नागरिकों को ठीक ही संघीय सभा के 'तृतीय सदन' की संज्ञा दी जाती है। ब्राइस के शब्दों में, ''विश्व के आधुनिक प्रजातन्त्रों, जो कि सच्चे प्रजातन्त्र हैं, अध्ययन की दृष्टि से स्विट्जरलैण्ड का सर्वाधिक महत्त्व है।''

24.2 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का अर्थ

प्रजातन्त्र की परिभाषा करते हुए लिंकन ने कहा कि ''यह वह सरकार है जो जनता की हो, जनता के लिए हो और जनता द्वारा चलाई जाए।'' अमेरिका, जापान, भारत, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड में प्रजातन्त्र तो पाया जाता है, परन्तु वह अप्रत्यक्ष है। वहाँ पर जनता की सरकार है और जनता के लिए है, परन्तु जनता द्वारा नहीं चलाई जाती है।

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का आशय यह है कि राजनीतिक व्यवस्था की नीतियों का निर्माण एवं उसके संचालन के सिद्धान्त समस्त नागरिकों की सामूहिक बैठकों अथवा सम्मेलनों में निश्चित हों। इस कार्य के लिए प्रतिनिधियों को मध्यस्थ न बनाया जाए। प्राचीन काल के यूनान और रोम के नगर–राज्यों में यह प्रथा प्रचलित थी। वर्तमान युग में स्विट्जरलैण्ड के छोटे–छोटे कैण्टनों में ही यह व्यवस्था जीवित है।

24.3 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थायें

आज 21वीं सदी में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र को सामान्यतया अतीत की शासन–व्यवस्था माना जाता है, किन्तु स्विट्जरलैण्ड के एक पूर्ण कैण्टन (ग्लेरस) और चार अर्द्ध कैण्टनों (ओबवाल्डन, निडवाल्डन, आप्पनजैल और उण्टरवाल्ड) में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र प्रचलित है।

स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की निम्नलिखित संस्थाओं का प्रयोग किया गया है–

24.3.1 प्रारम्भिक सभाएं (लैण्ड्सजीमिण्ड)– प्रारम्भिक सभाओं का अभिप्राय यह है कि निर्धारित समय पर देश के सभी वयस्क नागरिक एक स्थान पर एकत्र होकर कानूनों का निर्माण और नीतियों का निर्धारण करें। इस प्रक्रिया में नागरिक अपनी प्रभुसत्ता का प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग करते हैं। यह प्रजातन्त्र का सबसे विशुद्ध और सबसे प्राचीन रूप है।

प्रारम्भिक सभाओं की व्यवस्था स्विट्जरलैण्ड के 4 अर्द्ध–कैण्टनों तथा 1 पूर्ण कैण्टन में प्रचलित है। इन लोकसभाओं को 'लैण्ड्सजीमिण्ड' कहते हैं। ये लोकसभाएँ जिन कैण्टनों में हैं, वहाँ कण्टनों के सब स्वतन्त्र नागरिक इन सभाओं के सदस्य होते हैं। इन सभाओं की वार्षिक बैठक होती है जो सामान्यत: उसी प्रकार कार्य करती है जिस प्रकार व्यवस्थापिका सभाएँ। प्रतिवर्ष कैण्टन के सभी वयस्क पुरुष नागरिक, एक खुले मैदान में एकत्र होकर संविधान में संशोधन, सामान्य कानूनों का निर्धारण, करारोपण, मताधिकार, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के अधिकारों के निर्वाचन आदि कार्यों का सम्पादन करते हैं। लैण्ड्सजीमिण्ड लोगों को एक जीवित समुदाय के रूप में जीवित रखती है और उन्हें निर्वाचनों एवं मतदान के समय विभाजित नहीं करती।

24.3.2 जनमत संग्रह– जनमत–संग्रह का सामान्य अर्थ यह है कि विधान–मण्डल द्वारा पारित अधिनियमों अथवा प्रस्तावित कानूनों पर जनता का मत लिया जाए। इस तरह जनमत संग्रह की विधि के माध्यम से जनता प्रत्यक्ष रूप से देश के संवैधानिक एवं साधारण कानूनों पर अपना मत प्रकट करके शासन कार्य में भाग लेती है। यदि जनमत पक्ष में हो तो कानून पारित समझा जाता है और यदि विपक्ष में हो तो अस्वीकृत। इस प्रकार जनमत–संग्रह एक ऐसी व्यवस्था है जिससे जनता के हाथों में व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों पर निषेधाधिकार शक्ति प्राप्त हो जाती है। जनता के हाथ में यह एक नकारात्मक अस्त्र है। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में यह ढाल का काम करता है जिसके द्वारा जनता अवाँछनीय कानूनों को निरस्त कर सकती है। जनमत संग्रह किसी संवैधानिक संशोधन अथवा विधि अथवा अध्यादेश अथवा सार्वजनिक नीति पर कराया जा सकता है। स्विट्जरलैण्ड में जनमत–संग्रह का प्रयोग केन्द्र व कैण्टनों दोनों में होता है।

जनमत संग्रह दो प्रकार का होता है– (1) अनिवार्य जनमत संग्रह और (2) ऐच्छिक जनमत संग्रह।

1. अनिवार्य जनमत संग्रह– स्विस संविधान में संशोधन, चाहे वह पूर्ण अथवा आंशिक तब तक स्वीकार नहीं हो सकता जब तक जनमत संग्रह के द्वारा उसका समर्थन न हो। स्विस संविधान के अनुच्छेद 123 में कहा गया है–''संघ का संशोधित संविधान या उसका कोई संशोधित अंश तभी क्रियान्वित हो सकेगा जब मत देने वाले स्विस नागरिकों का बहुमत तथा राज्यों का बहुमत उसे स्वीकार कर ले।'' संविधान की इस व्यवस्था का अर्थ है कि संविधान में तब तक कोई संशोधन नहीं हो सकता जब तक जनमत संग्रह द्वारा उस संशोधन का समर्थन न किया जाए। इस तरह संविधान संशोधनों में ''अंतिम शब्द'' स्विस नागरिकों का है, संघीय सभा का नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. ऐच्छिक जनमत संग्रह– ऐच्छिक जनमत संग्रह की व्यवस्था संघ के कानूनों के लिए सन् 1874 ई. में की गई थी। स्विस संविधान के 89वें अनुच्छेद के अनुसार संघ के सब कानूनों तथा सब पर लागू होने वाले सब अध्यादेशों के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें जनमत संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाए– यदि मत देने का अधिकार रखने वाले तीस हजार स्विस नागरिक या आठ कैण्टनों के तीस हजार स्विस नागरिक उनके विषय में ऐसी माँग करें। ऐसी माँग के लिए 90 दिन का समय नियत है और किसी कानून या आदेश के प्रकाशन के 90 दिन के अन्दर यदि ऐसी माँग कर दी जाए तो उस कानून या अध्यादेश के विषय में जनमत संग्रह करना आवश्यक समझा जाता है। जहाँ अनिवार्य जनमत संग्रह में स्विस मतदाताओं और कैण्टनों दोनों के बहुमत के अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है, वहाँ ऐच्छिक जनमत संग्रह में केवल स्विस मतदाताओं के बहुमत के अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है।

24.3.3 आरम्भक– संघीय शासन–व्यवस्था के अन्तर्गत केवल संविधान के संशोधन अथवा पुनर्निरीक्षण के सम्बन्ध में आरम्भक की व्यवस्था की गई है, साधारण कानूनों के सम्बन्ध में नहीं। आरम्भक के द्वारा जनता को अधिकार दिया जाता है कि वह किसी विधेयक का प्रारूप तैयार करे अथवा प्रस्ताव के रूप में विधानमण्डल उसके प्रस्ताव के आधार पर कानून का निर्माण करे अथवा उस पर जनमत संग्रह लिया जाए। इस प्रकार आरम्भक से अभिप्राय है जनता को विधि–निर्माण के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार।

जहाँ जनमत संग्रह निर्वाचक मण्डल को संघीय सभा द्वारा पारित संविधान संशोधनों अथवा विधियों अथवा अध्यादेशों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार प्रदान करता है वहाँ आरम्भक उन्हें वांछित विधियों एवं संशोधनों के प्रस्तावों को पेश करने का अधिकार देता है। इस तरह एक विधियों एवं संशोधनों पर निषेधाधिकार है तो दूसरा विधि निर्माण अथवा संशोधन करने का सकारात्मक अधिकार है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जनमत संग्रह एक प्रकार की ढाल है जिससे अवांछित विधि निर्माण को रोका जा सकता है और आरम्भक मतदाताओं के हाथ में ऐसा अस्त्र है जिसकी सहायता से वे अपने विचारों को विधान का रूप दे सकते हैं। जनमत संग्रह से विधान मण्डल की 'क्रिया सम्बन्धी भूल' का निराकरण होता है, आरम्भक से उसकी 'उपेक्षा सम्बन्धी भूल' का निराकरण होता है।

आरम्भक दो प्रकार का होता है–(1) निर्मित आरम्भक और (2) अनिर्मित आरम्भक

1. निर्मित आरम्भक– निर्मित आरम्भक में मतदाता स्वयं विधेयक के प्रारूप को तैयार करते हैं। संघीय सभा को उस पर लोक मतदान कराना पड़ता है। यदि संघीय सभा निर्मित आरम्भक से सहमत न हो तो वह उस पर लोक मतदान कराते समय अपना वैकल्पिक विधेयक या संशोधन प्रस्तुत कर सकती है अथवा जनता को रद्द करने की सलाह दे सकती है।

2. अनिर्मित आरम्भक– अनिर्मित आरम्भक, में मतदाता स्वयं विधेयक के प्रारूप को तैयार नहीं करते। वे केवल किसी विषय पर संघीय सभा से विधेयक की माँग करते हैं। यह संघीय सभा को एक प्रकार का सुझाव अथवा सिफारिश होती है कि वह किसी विषय पर विधेयक का निर्माण करें। यदि संघीय सभा प्रार्थियों की इस मांग से सहमत नहीं होती तो पहले इस बात पर मतदान कराया जाता है कि क्या नागरिक प्रार्थियों से सहमत हैं अथवा नहीं? यदि नागरिकों का बहुमत इसे स्वीकार कर ले तो संघीय सभा को उनकी इच्छा का आदर करना पड़ता है और संशोधन विधेयक के प्रारूप को तैयार करना पड़ता है। अनिर्मित आरम्भक में संशोधन विधेयक के प्रारूप को संघीय सभा तैयार करती है और उस पर पुनः लोक मतदान कराना पड़ता है। सर्वसाधारण द्वारा स्वीकृत होने पर संशोधन प्रस्ताव क्रियाशील हो जाते हैं।

24.4 स्विस कैण्टनों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र

स्विस कैण्टनों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के प्रयोग की तीनों ही विधियाँ काम में लाई जाती हैं– लोकसभा, जनमत–संग्रह और आरम्भक। कैण्टनों में इन तीनों का प्रयोग निम्नानुसार है–

24.4.1 लोकसभा– स्थानीय जनसभाओं द्वारा प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का प्रयोग कैण्टनों में किया जाता है। ऐसी जनसभाएँ, जो प्रत्यक्ष रूप से कैण्टनों के शासन कार्य में भाग लेती हैं, इस समय उरी व ग्लेरस के दो पूर्ण कैण्टनों तथा अण्टरवाल्डेन, श्वेज, जुग व अपेजित के चार अर्द्ध कैण्टनों में कार्य करती हैं। इन कैण्टनों में विधायी शक्ति सीधी जनता में निहित है। इन कैण्टनों के बारे में यह ठीक ही कहा गया है कि ''वे मुक्त वायुमण्डल के लोकतन्त्र हैं।''

स्थानीय सभाओं का रूप स्वतन्त्र नागरिकों की राजनीतिक सभाओं का होता है जो प्रत्येक वर्ष एक निर्वाचित अध्यक्ष की अध्यक्षता में खुले में होती हैं। विधियों का निर्माण और कैण्टनों के अधिकारियों का चुनाव करने के लिए नागरिक प्रत्येक वर्ष अप्रैल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

या मई में किसी रविवार के दिन खुले मैदान में एकत्र होते हैं। वे समस्त पुरुष नागरिक जिन्होंने मताधिकार की आयु प्राप्त कर ली है, इन लोकसभाओं में उपस्थित होकर उनकी कार्यवाहियों में भाग ले सकते हैं। पूरे समाज की राजनीतिक सत्ता इस सभा में निहित रहती है और वह पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न होती है। स्थानीय सभा कानून बनाती है और निर्वाचित कार्यकारिणी समिति द्वारा निर्मित कानूनों की पुष्टि करती है। वह विविध उपयोगी प्रस्ताव पारित करती है और वित्त एवं सार्वजनिक कार्यों के विषय में विभिन्न महत्त्वपूर्ण निर्णय करती है। स्थानीय सभाएँ कार्यकारिणी एवं शासन समितियों का चयन करती हैं तथा प्रमुख अधिकारियों और न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ करती हैं। स्थानीय सभाओं की शक्तियाँ और उनके अधिकार भिन्न-भिन्न कैण्टनों में भिन्न-भिन्न हैं। इनमें संविधान का पूर्ण व आंशिक संशोधन, कानूनों का निर्माण, कर-निर्धारण, ऋण लेना और अनुदानों को स्वीकार करना, कार्यपालिका एवं न्यायाधीशों का निर्वाचन तथा नवीन पदों की स्वीकृति और वेतन-क्रम का निर्धारण आदि सम्मिलित हैं।

24.4.2 जनमत संग्रह- सभी कैण्टनों में संविधान के संशोधन के लिए जनमत संग्रह अनिवार्य है और इसकी व्यवस्था संघीय संविधान के अनुच्छेद 6 में की गई हैं। ऐच्छिक जनमत संग्रह की व्यवस्था साधारण विधियों के लिए भी आठ कैण्टनों और एक अर्द्ध कैण्टन में की गई है। वहाँ पर मतदाताओं की एक निश्चित संख्या या कैण्टन की कौंसिल कानूनों पर जनमत संग्रह की मांग कर सकती है। दस पूर्ण कैण्टनों तथा एक अर्द्ध कैण्टन में साधारण कानूनों पर भी जनमत संग्रह अनिवार्य रूप से किया जाता है। शेष कैण्टनों में जनसभाओं की प्रथा है।

24.4.3 आरम्भक- जेनेवा के अतिरिक्त सभी स्विस कैण्टनों में संविधान में संशोधन तथा कानून बनवाने के लिए आरम्भक की व्यवस्था है। जेनेवा में केवल संविधान संशोधन के लिए ही आरम्भक है। अलग-अलग कैण्टनों में कानून बनवाने और संविधान में संशोधन करवाने के लिए भिन्न-भिन्न नागरिकों की संख्या आवश्यक है।

24.5 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के गुण

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के माध्यम से सरकार तथा लोकमत के बीच पूर्ण समन्वय रहता है। यदि जनमत संग्रह ढाल का कार्य करता है तो आरम्भक तलवार का। प्रत्येक एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थाओं से कार्यपालिका और विधानमण्डलों पर वास्तविक लोक-नियन्त्रण रहता है तथा संवैधानिक विरोध और संतुलन की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसके पक्ष में प्रमुखतया निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं:-

24.5.1 लोकतन्त्र का विशुद्धतम रूप- लोकतन्त्र का सबसे शुद्ध और श्रेष्ठ रूप प्रत्यक्ष लोकतन्त्र ही है। किसी भी देश में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र होना एक वरदान ही है। अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र इसीलिए तो अपनाया जाता है कि वर्तमान में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र सम्भव नहीं है। जनसंख्या में अत्याधिक वृद्धि तथा राज्यों के विशाल आकार के कारण अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र का प्रचलन है।

24.5.2 सरकार के उत्तरदायित्व में वृद्धि- प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का जो रूप होता है, उसके कारण सरकार जनता का ध्यान रखने वाली और उसके प्रति उत्तरदायी बनी रहती है। वह अपनी शक्ति का दुरूपयोग नहीं कर सकती क्योंकि वह जानती है कि उसके कार्यों पर जनता अपनी प्रतिक्रिया जनमत संग्रह द्वारा उसके प्रतिकूल व्यक्त कर सकती है। वह यह जानती है कि यदि वह जनता की आवश्यकताओं के प्रति लगातार उदासीन रहेगी तो जनता आरम्भक द्वारा उसे वह करने के लिए बाध्य कर देगी जो वह कराना चाहेगा।

24.5.3 राजनीतिक प्रशिक्षण- प्रत्यक्ष लोकतन्त्र में जनमत संग्रह और आरम्भक सर्वसाधारण को लोकतान्त्रिक बनाने के सर्वोत्तम साधन हैं। ये उन्हें राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं तथा शासन के कार्यों में प्रत्यक्ष एवं सक्रिय भाग लेने का अवसर देते हैं। सभी नागरिक देश के शासन और उसके कार्यों में रूचि लेते हैं। वे सार्वजनिक विषयों पर विचार-विमर्श और वाद-विवाद करते हैं। इससे लोगों मे जागरूकता का विकास होता है।

24.5.4 जन इच्छा जानने के साधन- जनमत संग्रह और आरम्भक जन इच्छा जानने के सर्वोत्तम साधन हैं। बौन्जोर ने कहा है कि "ये जन इच्छा को जानने के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं, ये राजनीतिक वातावरण के श्रेष्ठ बैरोमीटर हैं।" जहाँ जनमत संग्रह के माध्यम से मतदाता अवांछित विधियों को अस्वीकार कर उन्हें संविधि पुस्तक में स्थान लेने से रोक सकते हैं वहाँ आरम्भक के माध्यम से वे वांछित विधियों को उसमें स्थान दे सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

24.5.5 विधायी त्रुटियों का उपचार– जनमत संग्रह और आरम्भक का गुण उनकी सम्भावित शक्ति में हैं। यह आवश्यक नहीं कि मतदाता इनका वास्तविक प्रयोग करके ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इनके प्रयोग की सम्भावना भी व्यवस्थापिका को सतर्क रखती है। जब कभी व्यवस्थापिका लोक इच्छा की उपेक्षा करती है अथवा उसकी इच्छा के प्रति उदासीन रहती है अथवा अपनी शक्ति का दुरूपयोग करती है तो मतदाता इन उपचारों का प्रयोग कर उन्हें सुधार सकते हैं। स्विस नागरिक व्यवस्थापिका के ''तीसरे सदन'' के रूप में कार्य करते हैं। वे ऐसा करके कानूनों में व्याप्त त्रुटियों में सुधार कर सकते हैं।

24.5.6 व्यवस्थापिका और जनता के बीच निरन्तर सम्पर्क– जनमत संग्रह और आरम्भक के माध्यम से जन प्रतिनिधियों और सामान्य जनता के बीच निरन्तर सम्पर्क बना रहता है। यह सम्पर्क केवल आम चुनाव के समय ही नहीं बना रहता बल्कि चुनाव के बाद भी बना रहता है। इससे जन प्रतिनिधि जन इच्छा से निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं और व्यवस्थापिका उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती। व्यवस्थापिका लोकहित के कार्यों को सम्पादित करने में तत्परता का प्रदर्शन करती है।

24.5.7 राजनीतिक स्थिरता– जनमत संग्रह और आरम्भक के कारण राजनीतिक स्थिरता बनी रहती है, क्योंकि आवश्यक परिवर्तनों के लिए नागरिकों को आन्दोलन की नीति (क्रान्ति अथवा उपद्रव) का सहारा नहीं लेना पड़ता है। उनकी मांगें इन साधनों द्वारा सहज रूप में पूरी हो जाती है।

24.5.8 दलों के कुप्रभाव से मुक्ति– जनमत संग्रह और आरम्भक से राजनीतिक दलों के दोषों से मुक्ति मिलने में मदद मिलती है। प्रथम, इनके कारण दलीय भय (अनुशासन), प्रलोभन एवं अन्य विकृतियाँ नागरिकों को दूषित नहीं करती। दूसरे, दलीय भावनायें राष्ट्र प्रेम को कुण्ठित नहीं करती। तीसरे, संसद पर किसी एक दल का प्रभुत्व स्थापित नहीं होता, चौथे, दलीय बहुमत की निरंकुशता से उत्पन्न होने वाले अधिनायकवाद तथा दमन का भय नहीं रहता और अल्पमत निराश, शक्तिहीन अथवा निरूत्साही नहीं होता। अल्पमत भी राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

24.5.9 गतिरोध की कम सम्भावना– स्विस संघीय सभा के दोनों सदन समान शक्तियों का उपयोग करते हैं। इस पर भी उनमें गतिरोध की सम्भावना उत्पन्न नहीं होती। दोनों सदन इस बात से भली–भांति परिचित रहते हैं कि अन्तिम सत्ता नागरिकों के हाथों में है, संघीय सभा के हाथों में नहीं।

24.5.10 नागरिकों में स्वाभिमान की भावना जागृत होना– प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र नागरिकों के अन्दर आत्मगौरव, और स्वाभिमान की भावना जागृत करता है। वे अपने आपको शासन करने तथा स्वयं शासन करने योग्य समझते हैं। स्वावलम्बन की यह भावना उनमें सामुदायिक भावना का विकास करती है। यही स्विस राष्ट्र की सुदृढ़ता, एकता और अखण्डता का प्रतीक है। वे सक्रिय रूप से शासन व्यवस्था में भाग लेने में गौरव का अनुभव करते हैं।

24.6 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के दोष

प्रत्यक्ष लोकतन्त्रीय शासन में, राज्य की नीतियाँ, लोकप्रिय भावनाओं और व्यक्तिगत कुण्ठाओं का शिकार बन सकती हैं, क्योंकि प्राय: जनता भावना के उद्वेग में बहती है, तथा वह विवेक–सम्मत आचरण नहीं करती। फाइनर का मत है कि ''अज्ञानी, अबोध, प्रतिशोधी जनता ने प्राय: प्रगतिशील विधान को नष्ट कर दिया है।'' इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं–

24.6.1 विधानमण्डल की प्रतिष्ठा पर आघात– प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की व्यवस्था से व्यवस्थापिका के सम्मान व उत्तरदायित्व की भावना को आघात लगता है तथा व्यवस्थापिका का स्थान गौण हो जाता है। वह प्रभुसत्तावान नहीं रहती। ऐसी स्थिति में अधिक योग्य व्यक्ति व्यवस्थापिकाओं की सदस्यता प्राप्त करने के इच्छुक नहीं रहते। एम. डब्बस ने कहा है कि ''यदि जनमत संग्रह लागू किया जाय तो विधान मण्डल एक परामर्शदात्री समिति मात्र बनकर रह जाती है। उसका उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है क्योंकि वह किसी बात को निश्चित् ढंग से नहीं कर सकती, जब अन्तिम निर्णय जनता के हाथ में होता है।''

24.6.2 विधि निर्माण कार्य सुचारू रूप से नहीं चलता– प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में विधि निर्माण का कार्य सही ढंग से नहीं हो पाता। कभी–कभी व्यवस्थापिका त्रुटिपूर्ण विधेयकों, को इस आशा से पारित कर देती है कि लोग उन्हें अस्वीकार कर देंगे और कभी–कभी आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण विधेयकों को इस भय से पारित नहीं करती कि उन्हें लोग अस्वीकार कर देंगे। दोनों ही स्थितियों में विधि निर्माण के कार्य को हानि होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

24.6.3 विधेयक का प्रारूप बनाना जटिल कार्य- वर्तमान समय में विधेयकों का प्रारूप तैयार करने और इन पर विचार करने का कार्य इतना जटिल हो गया है कि साधारण जनता इन कार्यों को करने की योग्यता नहीं रखती है। ऐसी स्थिति में जनता के द्वारा इस शक्ति का दुरूपयोग ही किया जाता है। अत: सामान्य नागरिक के लिए यह कार्य अत्यन्त दुष्कर है। विधेयक निर्माण का कार्य एक विशेषज्ञ कार्य है, जिसके लिए विशेषज्ञ लोगों की आवश्यकता होती है। जन साधारण में इसका अभाव पाया जाता है।

24.6.4 जनता की उदासीनता- प्रत्यक्ष लोकतन्त्र जनता में चुनावों के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर देता है। जनता का बार-बार मतदान कार्य में भाग लेना उनमें एक 'निर्वाचकीय थकावट' पैदा कर देता है। इस प्रकार के कार्यों में भाग लेने के लिए अधिकांश जनता को न तो समय ही मिलता है और न उनमें रूचि ही होती है। इसलिए जो निर्णय होते हैं, वे अल्पमत से ही होते हैं। जन उदासीनता के कारण प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का महत्त्व समाप्त हो जाता है।

24.6.5 समय और धन का अपव्यय- प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र अत्यन्त विलम्ब करने वाली प्रक्रिया है। एक कानून बनने पर तीन माह तक उस पर जनमत संग्रह की माँग की जा सकती है। फिर उस पर जनमत संग्रह होता है। इस बीच उस कानून का भविष्य अधर में ही लटकता रहता है।

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की पद्धति अत्यन्त खर्चीली है। बार-बार सम्पूर्ण देश की जनता से मत संग्रह कराना कोई सरल और कम खर्चीला कार्य नहीं है। यह एक महँगी व्यवस्था है। इससे राजकोष पर अनुचित भार पड़ता है।

24.6.24. राजनीतिक दलों के प्रभाव में वृद्धि- प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में राजनीतिक दलों का प्रभाव कम होने के स्थान पर बढ़ता है। सार्वजनिक विषयों पर जनमत जानने के लिए लोगों से जनमत संग्रह में भाग लेने के लिए बारम्बार कहा जाता है। यह तत्त्व राजनीतिक दलों को बढ़ावा देता है क्योंकि उनके नेता ही लोगों को इनमें भाग लेने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे दलीय भावनायें उत्तेजित होती हैं और असन्तुलित एवं सिद्धान्तहीन दलों को आन्दोलन करने का अवसर मिलता है।

24.6.7 रूढ़िवादिता को प्रोत्साहन- प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र प्रगतिशील नीतियों के निर्माण में बाधक सिद्ध होता है। लोग प्राय: रूढ़िवादी होते हैं। वे यथास्थिति को बनाये रखना चाहते हैं। वे परिवर्तन में विश्वास नहीं करते। ऐसी स्थिति में लोकनिर्णय को अपनाने का परिणाम रूढ़िवादिता को प्रोत्साहन देना ही होगा।

24.6.8 सही लोकमत का अचूक सूचक नहीं- जनमत संग्रह अथवा आरम्भक के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया मत सदैव सही लोकमत को अभिव्यक्ति नहीं करता। हो सकता है कि यह मत लोगों के विश्वास का परिणाम न हो और यह केवल उनकी भावनाओं और मनोवेगों को ही अभिव्यक्त करता हो जिनके उभारने में जनोत्तेजको की रणनीति के शिकार हो जाते हैं। दूसरे, जनमत संग्रह में मतदान करने वालों की संख्या अत्यधिक कम होती है। अत: इसमें व्यक्त किया गया लोकमत लोगों के सही मत का अचूक सूचक नहीं होता। इससे जनमत की वैद्यता के आगे ही प्रश्न चिह्न लग जाता है।

24.7 प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सफलता के कारण

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र स्विस शासन-व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है और इसकी सफलता का श्रेय इस देश की विशिष्ट परिस्थितियों को ही है। लॉर्ड ब्राइस का कहना है कि "कुछ संस्थायें ऐसी होती हैं, जो पौधों की भाँति, अपनी ही धरती और धूप-छाँव में फलती-फूलती हैं।" स्विट्जरलैण्ड का छोटा आकार, उसकी थोड़ी जनसंख्या, उसका शिक्षित, कर्मठ एवं ईमानदार जनसमूह, उसके नागरिकों की सद्चरित्रता और सहिष्णुता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और व्यक्ति के व्यक्तित्व में उनका विश्वास, उनमें राष्ट्रीय एकता की भावनाएँ जनोत्तेजकों के प्रति उनका उदासीन दृष्टिकोण, उनका मध्यमार्गीय समाज, उनकी स्व-शासित संस्थाओं की परम्पराओं आदि तत्त्वों ने मिलकर प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को सफल बनाने में सहयोग दिया है। देश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, तथा स्थायी तटस्थता का भाव भी इसको सफल बनाने में सहायक बनी है।

स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सफलता के लिए मुख्यत: निम्नलिखित कारण उत्तरदायी रहे हैं-

24.7.1 स्विस जनता का चरित्र- स्विस नागरिकों का चरित्र प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के विकास के अनुकूल है। प्रजातन्त्र के लिए आवश्यक है कि नागरिक चरित्रवान, शिक्षित, बुद्धिमान तथा व्यावहारिक हों। स्विस नागरिक शिक्षित तो हैं ही, साथ ही वे व्यवहार कुशल, जागरूक और कर्त्तव्यनिष्ठ भी हैं। यहाँ की जनता में विधि-निर्माण के लिए आवश्यक निर्णय शक्ति और शान्त स्वभाव, दोनों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बातें पाई जाती हैं। स्विस लोग न तो अत्यन्त रूढ़िवादी है और न अत्यन्त उग्रवादी। उनकी वृत्ति मध्य-मार्ग पर चलने की है और इसीलिए प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की व्यवस्था द्वारा प्राप्त अपने अधिकारों का वे अति विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग करते हैं। स्विस नागरिकों के उत्कृष्ट चरित्र, राष्ट्र-प्रेम तथा प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के लगाव ने इस व्यवस्था को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

24.7.2 प्रजातान्त्रिक परम्पराएँ- स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सफलता का दूसरा कारण वहाँ प्रचलित प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की परम्पराएँ हैं जो सदियों से सुचारू रूप में चलती आ रही हैं। जनमत-संग्रह तथा आरम्भक के साधनों के अनेक लाभ स्विट्जरलैण्ड में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। यह सार्वजनिक सम्प्रभुता के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देता है, व्यवस्थापिका पर नियन्त्रण लगाने का कार्य करता है, नागरिकों में देश-प्रेम, जन सेवा एवं कर्त्तव्य परायणता के भाव भरता है, दलगत भावना की ज्वाला को शान्त करता है तथा लगभग प्रत्येक प्रश्न पर जनता के निर्णय को अन्तिम स्थान देता है। इन साधनों के फलस्वरूप जन-इच्छा के क्रियान्वित होने के साथ-साथ प्रशासन को सुयोग्य राजनीतिज्ञों के अनुभव का पूर्ण लाभ प्राप्त होता रहता है।

24.7.3 देश का छोटा आकार- वर्तमान युग में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रीय प्रणाली स्विट्जरलैण्ड में सर्वाधिक सफलतापूर्वक इसीलिए चल पा रही है क्योंकि यह एक छोटा पहाड़ी देश है। फलत: वहाँ जनता की राय जानना सुगम है। स्विट्जरलैण्ड छोटे-छोटे कैण्टनों में विभाजित है। अत: वहाँ के लोग प्रत्यक्ष रूप से शासन-कार्य में भाग ले सकते हैं और लोक-सभाओं, आरम्भक एवं जनमत-संग्रह के माध्यम से प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं।

24.7.4 स्थायी तटस्थता की नीति- स्विट्जरलैण्ड एक ऐसा देश है जो सुदीर्घकाल से स्थायी तटस्थता की नीति का अनुसरण करता आ रहा है। अत: यह देश सदैव विश्व-संकटों से मुक्त रहा है और अन्तरराष्ट्रीय समस्या सम्बन्धी मतभेदों के विषैले प्रभाव से लगभग अछूता रहा है। अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में स्थायी तटस्थता का रूख अपनाने के कारण स्विट्जरलैण्ड की समस्याएँ सरल हो गई हैं और वह आन्तरिक मामलों की ओर अधिक ध्यान दे सका है। उसकी यह स्थिति देश में प्रजातन्त्रवाद के विकास में सहायक सिद्ध हुई है। स्थायी तटस्थता के कारण सारा विश्व इसे शान्ति का द्वीप मानता है। वे इसकी स्थायी तटस्थता के प्रबल पक्षधर हैं।

24.7.5 स्थानीय स्वशासन की परम्परा- स्थानीय स्वशासन प्रजातन्त्र का आधार है और स्विट्जरलैण्ड में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था जितनी अधिक श्रेष्ठ रूप में विद्यमान है, उतनी अन्य किसी देश में नहीं है। स्थानीय स्वशासन की इस व्यवस्था ने स्विस नागरिकों को सार्वजनिक कार्यों का प्रशिक्षण प्रदान किया है और उनमें नागरिक दायित्व की भावना जागृत की है।

24.7.6 जनमत संग्रह का अधिक प्रयोग- स्विस नागरिकों ने आरम्भक की तुलना मे जनमत संग्रह का अधिक प्रयोग किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्विस नागरिक अपने विधायकों पर अविश्वास नहीं करते। वे उनका स्थान लेना नहीं चाहते। वे केवल उनकी भूलों को सुधारना चाहते हैं। दूसरी ओर, अमरीकी राज्यों के नागरिकों ने जनमत संग्रह के स्थान पर आरम्भक का अधिक प्रयोग किया है। इसका अर्थ यह है कि वहाँ के नागरिक अपने विधायकों पर अविश्वास करते हैं और उनका स्थान लेना चाहते हैं। यही कारण है कि अमरीका में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का प्रयोग असफल रहा है।

24.7.7 सामाजिक एवं आर्थिक समानता- स्विस प्रजातन्त्र की सफलता का अन्य कारण सामाजिक एवं आर्थिक समानता है। स्विस समाज में सब नागरिक समान हैं। उनमें कोई वर्ग विभेद अथवा ऊँच-नीच नहीं हैं। वहाँ न तो कोई बहुत धनी है और न कोई बहुत निर्धन। अधिकांश लोग मध्यम वर्ग के हैं, अत: लोकतन्त्र "धनवानों के धन और निर्धनों की निर्धनता से भ्रष्ट नहीं हो पाता।" लोगों के उच्च जीवन सार ने भी प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की है।

24.7.8 राष्ट्रीय एकता- स्विट्जरलैण्ड में विविध भाषाओं, धर्मों और जातियों का वास है, फिर भी वहाँ राष्ट्रीय एकता विद्यमान है, विविधता में एकता मौजूद है। धर्म और भाषाएँ स्विस राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक सिद्ध नहीं हुई हैं। देश भक्ति की भावना की प्रबलता के कारण वे स्वयं के स्वार्थ की तुलना में देश हित को अधिक महत्त्व देते हैं।

24.8 सारांश

स्विट्जरलैण्ड में वस्तुत: प्रजातन्त्र का विशिष्ट रूप उजागर है। आज विश्व में प्रत्यक्ष प्रजातान्त्रिक पद्धति का वह एक अनुकरणीय आदर्श बना हुआ है और उसे विश्व के सभी देशों का भारी सम्मान प्राप्त है। इसी कारण स्विस धरती, स्विस चरित्र, स्विस परम्परायें, स्विस परिस्थितियाँ स्विस प्रजातन्त्र के लिए वरदान सिद्ध हुए हैं। वर्तमान में भी यह देश में ठोस धरातल पर आधारित है।

Jain Vishva Bharati Institute/Deemed University/Ladnun

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''स्विट्जरलैण्ड प्रजातन्त्र का घर है'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के प्रमुख लक्षणों का परीक्षण करें।
3. स्विट्जरलैण्ड की प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थाओं की कार्यप्रणाली पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जनमत संग्रह और आरम्भक से आप क्या समझते हैं ?
2. स्विट्जरलैण्ड में प्रारम्भिक सभाओं पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के सफलापूर्वक कार्य करने के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
4. कैण्टनों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक

1. प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र से आप क्या समझते है ?
2. जनमत संग्रह के दो गुण बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 25
जापान का संविधान

संरचना

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 जापान का संवैधानिक विकास
25.2.1 सामन्ती युग
25.2.2 मीजी युग और मीजी संविधान
25.2.3 वर्तमान संविधान का निर्माण
25.3 संविधान की विशेषताएँ
25.3.1 लिखित संविधान
25.3.2 संवैधानिक सर्वोच्चता
25.3.3 सीमित राजतन्त्र
25.3.4 लोकतन्त्रीय संविधान
25.3.5 एकात्मक शासन
25.3.6 संसदीय प्रणाली
25.3.7 कठोर संविधान
25.3.8 लौकिक प्रभुसत्ता
25.3.9 युद्ध का परित्याग
25.3.11 द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका
25.3.12 मौलिक अधिकार तथा कर्त्तव्य
25.4 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत जापान के संविधान का संवैधानिक विकास और महत्त्व का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- जापान के संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- जापान के संविधान की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे,
- जापान में राजतन्त्र और लोकतन्त्र के मिश्रण को समझ सकेंगे,
- जापान के संविधान के महत्त्व को समझ सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

''सम्राट् राज्य और जनता की एकता का प्रतीक है। प्रभुसत्ता अब जनता के हाथों में है।''

-The Japan of To-day

जापान का प्राचीन इतिहास रहस्य के आवरण से ढ़का हुआ है। जिसकी परम्पराओं की जड़े पुराण-कथाओं के अतल में फैली-बिखरी हुई हैं। फिर भी ऐसे देश कम ही होंगे जो आधुनिक जगत् में जापान की भांति पूरी सक्रियता के साथ वर्तमान में घुलमिल

गए हों। जापान है तो पुराना देश, फिर भी उसमें यौवन का भरपूर उत्साह है और ऐसी आत्म-शक्ति है जो निरन्तर पुरातन को संवारने-सुधारने में तथा नवीन की खोज में संलग्न है।

जापान एशिया महाद्वीप के पूर्वी भाग में प्रशान्त महासागर में छोटे-बड़े द्वीपों का विकसित और महत्त्वपूर्ण देश है, लेकिन मुख्य जापान में चार बड़े-बड़े द्वीप सम्मिलित हैं- होकाईडो, होनशू, शिकोकु तथा क्यूशू। इनके अतिरिक्त बहुत सी द्वीप श्रृंखलायें और हजारों छोटे-छोटे द्वीप जापान में सम्मिलित हैं। यह धनुषाकार रूप में 3800 किलोमीटर की लम्बाई में फैला हुआ है। इन द्वीपों का निर्माण पर्वत श्रेणियों के जलमग्न होने से हुआ है, अत: जापान का तट बहुत अधिक दन्तुर है। जापान में क्षेत्रफल की तुलना में जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक है। यहाँ भूकम्प भी आते रहते हैं। विज्ञान, तकनीकी तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी में यह देश बहुत अग्रणी है। इसे विकसित देश माना जाता है।

25.2 जापान का संवैधानिक विकास

जापान का वर्तमान संविधान जिसे 'शोवा संविधान' भी कहा जाता है, दीर्घकालीन क्रमिक विकास का परिणाम है। वर्तमान संविधान से पूर्व मीजी संविधान था जो 1889 ई. में लागू हुआ था और 1945 ई. में जापान द्वारा मित्र राष्ट्रों के सामने आत्म-समर्पण करने के पश्चात् समाप्त हो गया था। मीजी संविधान से पूर्व तोकुगावा प्रशासन और सामन्ती युग की प्रधानता थी।

25.2.1 सामन्ती युग (1192-1867) - सन् 1192 में मिनामोतो परिवार की विजय के साथ ही 'शोगुन' अर्थात् सैन्य शासकों का क्रम शुरू हुआ और इनके अधीन लगभग सात शताब्दियों तक सामन्ती शासन का बोलबाला रहा। विजयी मिनोमोतो परिवार के मुखिया योरीतोमो ने सैन्य शासन की स्थापना कर सारी प्रशासनिक शक्तियाँ अपने हाथ में ले लीं जो पहले सम्राट् के हाथ में थीं। इस युग में सामन्तों की शक्ति बढ़ती गई और उन पर केन्द्रीय सरकार का आधिपत्य नाममात्र का रह गया।

सम्राट की 'शक्तिहीनता' की स्थिति में सामन्तों के पारस्परिक संघर्ष जारी रहे। 600 ई. में तोकुगावा वंश ने सभी प्रत्याशियों को परास्त कर प्रशासन पर अपना अधिकार कर लिया और सम्राट पर एक छत्र प्रभाव स्थापित कर लिया सन् 1603 से 1867 तक तोकुगावा -शासन कायम रहा और जापान की स्थिति एक सामन्ती राज्य को बन गई। सम्राट था लेकिन वास्तविक प्रधान तोकुगावा वंश का अध्यक्ष 'शोगुन' होता था। शोगुन शासन विकेन्द्रीकृत था। शोगुन अपनी शक्तियों का प्रयोग जनता पर न कर विभिन्न सामन्ती-सरदारों पर करता था। केन्द्रीय शासन के पास इने-गिने अधिकार रह गए थे, अन्यथा सभी महत्त्वपूर्ण शक्तियों का प्रयोग सामन्ती सरदार करते थे। तोकुगावा शासनकाल जापान के लिए 'एकान्तवास का युग' था, क्योंकि शासन की नीति जापान को बाहरी दुनिया से पृथक् रखने की थी।

25.2.2 मीजी युग और मीजी संविधान - सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों तथा सामन्तों के पारस्परिक संघर्षों ने सामन्ती युग की इतिश्री कर दी। 1867 ई. में तोकुगावा शासन का सामन्ती ढाँचा ढह गया और 1868 ई. में मेइजी की पुन: स्थापना से सम्राट् को फिर से पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो गया। सम्राट मेइजी के शासन-काल (1867-1912 ई.) में जापान ने कुछ ही दशकों में वह सब कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न किया जिसे प्राप्त करने में पश्चिमी राष्ट्रों को सदियाँ लगी थी। 1889 ई. में 76 धाराओं वाला नया संविधान लागू हुआ जिसे मीजी संविधान कहते हैं। इस संविधान द्वारा संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई। सामन्ती युग में समाज जिन पुराने वर्गों में विभक्त था उनका अन्त हो गया। सारा जापान पूरी शक्ति और उत्साह के साथ आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के अध्ययन और उसे अपने जीवन में चरितार्थ करने में जुट गया। इस संविधान द्वारा साम्राज्य के अंश के रूप में सभी जापानियों को समानता के अधिकार प्रदान किये। शिक्षा प्रणाली का पुनर्निर्धारण किया गया और सभी लड़के-लड़कियों के लिए प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य घोषित कर दिया गया। मीजी संविधान के तहत् 19 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में जापान न केवल आर्थिक समृद्धि के शिखर पर था, अपितु एशिया की महान् शक्ति बन गया।

अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में जापान ने अपना प्रभाव जमाने के प्रयत्न प्रारम्भ किये। सन् 1894 में जापान ने कोरिया पर आक्रमण कर दिया। परन्तु कोरिया चीनी साम्राज्य के अधीन था, अत: कोरिया पर जापानी आक्रमण से चीन-जापान युद्ध प्रारम्भ हो गया। चीन बुरी तरह पराजित हुआ और शिमोनोसेकी की सन्धि द्वारा उसे फारमोसा, पेस्काडोरमा के द्वीप और पोर्ट आर्थर के बन्दरगाह सहित मंचूरिया का लिया ओतुंग प्राय द्वीप जापान को देने पड़े। 1902 ई. की ऐंग्लो-जापानी सन्धि जापानी राजनय की ऐतिहासिक उपलब्धि थी। 1905 ई. में रूस पर जापानी विजय विश्व इतिहास में एक नये मोड़ की सूचक थी। 1931 ई. के बाद जापान ने तनाका की साम्राज्यवादी नीति को अपना लिया। 1932 ई. में जापानियों ने मंचूरिया पर अधिकार कर लिया। 7 दिसम्बर, 1941 ई. को जापान ने पर्ल हार्बर में स्थित अमेरिकी नौ सैनिक बेड़े पर भीषण आक्रमण किया। परिणाम स्वरूप 8 दिसम्बर, 1941 ई. को अमेरिका ने जापान के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जापान का यह साम्राज्यवादी उत्कर्ष मीजी संविधान के अन्तर्गत हुआ जो 1889 से 1945 ई. तक प्रचलन में रहा। यह संविधान प्रशा के संविधान पर आधारित था। इस संविधान में समूची शक्तियाँ सम्राट् में निहित थीं और जनता सम्राट् की प्रजा थी। संविधान में संशोधन सम्राट् की सहमति से ही हो सकता था। संविधान द्वारा शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी थी तथापि समूची शक्तियों का केन्द्रीकरण सम्राट् में कर दिया गया था। संविधान की व्याख्या के लिए स्वतन्त्र एजेन्सी का कोई प्रावधान नहीं था।

25.2.3 वर्तमान संविधान का निर्माण – द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी, जापान तथा इटली के फासीवादी गुट को पूरी तरह पराजय का मुख देखना पड़ा और अगस्त सन् 1945 में जापान ने मित्रराष्ट्रों के सामने आत्मसमपर्ण कर दिया। 9 अगस्त, 1945 ई. को जापान के दो शहरों–हिरोशिमा तथा नागासाकी पर परमाणु बम गिराये गये। इसके बाद जापान ने आत्म–समर्पण कर दिया। पराजित जापान में मित्रराष्ट्रों के सर्वोच्च कमांडर जनरल मैकआर्थर ने 11 अक्टुबर, 1945 ई. को जापानी केबिनेट को सूचित कर दिया कि देश के लिए नवीन संविधान अनिवार्य है। फलस्वरूप सरकार ने 'एक संवैधानिक समस्या–अनुसंधान समिति' की स्थापना की, लेकिन इसने कोई विशेष कार्य नहीं किया। नवीन संविधान यथार्थ में जापानी मन्त्रिमण्डल के सहयोग से मैकआर्थर द्वारा ही बनाया गया। इसमें सम्राट् की शक्तियों का अन्त करके समस्त प्रभुसत्ता जनता में निहित कर दी गयी। 7 अक्टुबर, 1946 को डाइट के द्वारा इसका अनुमोदन कर दिया गया 3 नवम्बर, 1946 ई. को सम्राट् हिरोहितो ने उसे अपनी स्वीकृति दे दी। 3 मई, 1947 को जापान में नया संविधान लागू कर दिया गया।

25.3 संविधान की विशेषताएँ

जापान के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय तथ्य यह है कि बाहरी आदर्शों का अनुसरण करते हुए भी उसने मौलिक विशेषताओं को सुरक्षित बनाये रखा है। वुडरो विल्सन के शब्दों में, ''जापान ने बाह्य आदर्शों का अनुसरण बड़ी तत्परता से किया है। अपनी गत शताब्दी की सरकार के निर्माण में उसने प्रशा का अनुसरण किया अपनी बैंकिंग प्रणाली के सन्दर्भ में उसने ब्रिटिश तौर–तरीकों का अनुसरण किया तथा उसकी विधि प्रणाली में रोमन सिविल लॉ का प्रभाव झलकता है। सम्राट को छोड़ कर, जो उसका 'दैवी सम्राट्' है, जापान की बहुत कम संस्थाएं ऐसी हैं, जो सच्चे रूप में उसकी अपनी हैं।''

जापान के वर्तमान संविधान की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

25.3.1 लिखित संविधान – जापान का वर्तमान संविधान एक लिखित प्रलेख है। इसका निर्माण एक निश्चित निकाय द्वारा किया गया तथा उसे एक निश्चित तिथि पर लागू किया था। इसका निर्माण 1946 ई. में जनरल मैकार्थर की अधीनता में 'मैत्रिक सत्ता' के सर्वोच्च कमाण्डर द्वारा किया गया था और इसे मंत्रिमण्डल तथा डायट की विधिवत् स्वीकृति मिली थी। इसको सम्राट की उद्घोषणा द्वारा 3 मई, 1947 ई. को लागू किया गया। इस तरह जापान का वर्तमान संविधान विदेशियों द्वारा रचित संविधान है। इस पर ब्रिटिश और अमेरिकी संविधानों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। इसे शान्ति का संविधान भी कहा जाता है।

जापान के वर्तमान संविधान का आकार बहुत ही छोटा है। इसमें एक प्रस्तावना, और 103 धाराएं हैं। 11 अध्यायों का यह संविधान लगभग 20 पृष्ठों में है। इसकी भाषा बहुत सरल और सुस्पष्ट है।

25.3.2 संवैधानिक सर्वोच्चता – नवीन संविधान जापान का 'सर्वोच्च कानून' है। शासन का कोई भी अंग संविधान के किसी भी उपबन्ध का उल्लंघन नहीं कर सकता। संविधान ने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया है कि शासन की प्रत्येक शाखा के कर्मचारियों को संविधान को पूर्ण मान्यता देनी होगी, अर्थात् सम्राट, मन्त्री, संसद् सदस्य, न्यायाधीश आदि इस संविधान के अधीन अपने क्षेत्रों में अपनी भूमिका निभाएंगे और संविधान की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करेंगे। ऐसी स्पष्टता विश्व के दूसरे राष्ट्रों के संविधानों में नहीं दिखाई देती है।

25.3.3 सीमित राजतन्त्र – वर्तमान संविधान राजतन्त्र की संस्था और सम्राट् के पद दोनों को बनाये रखता है, परन्तु इसने उसके स्वरूप को पूर्णतः बदल दिया है। प्राचीन संविधान के अन्तर्गत सम्राट् सरकार की सारी शक्तियों का स्रोत था, वह देवतुल्य, वन्दनीय, पवित्र और अनुलंघनीय था। परन्तु वर्तमान संविधान के अन्तर्गत सम्राट् एक संवैधानिक अध्यक्ष है। वह संविधान में वर्णित औपचारिक कार्यों को केबिनेट के परामर्श और स्वीकृति से करता है। वह ब्रिटिश सम्प्रभु की भांति राज्य करता है, शासन नहीं करता। उसकी स्थिति ब्रिटिश सम्प्रभु से भी निर्बल है। जहाँ ब्रिटिश संसदीय प्रणाली सम्प्रभु को कुछ स्थितियों में विवेकाधिकार के प्रयोग के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अवसर प्रदान करती है, वहाँ जापानी संसदीय प्रणाली सम्राट को विवेकाधिकार के प्रयोग का कोई अवसर नहीं देती। अनुच्छेद 1 के अनुसार सम्राट् राज्य तथा जनता की एकता का प्रतीक होगा और उसकी इस स्थिति का स्रोत जनता की इच्छा होगी, जिसके पास सार्वभौमिक शक्ति होगी। इस सीमित राजतंत्र की अवधारणा ने राजा की शक्ति को शक्तिहीन बना दिया है।

25.3.4 लोकतन्त्रीय संविधान – वर्तमान संविधान में सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना के लिए अनेक प्रशंसनीय कदम उठाए गए हैं। इसमें लोकप्रिय प्रभुता का समावेश किया गया है। सम्राट को वास्तविक शक्तियों से वंचित कर दिया गया है। अब जापान की संसद् शासन–सत्ता का सर्वोच्च अंग है। डायट के दोनों सदनों के लिए निर्वाचन की व्यवस्था है। निम्न–सदन का गठन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों द्वारा होता है, इसलिए यह लोकप्रिय सदन है तथा उच्च सदन से अधिक शक्तिशाली है। केबिनेट या मन्त्रिमण्डल वास्तव में जापान की संसद् के प्रति उत्तरदायी है। संविधान द्वारा सभी वयस्कों को मताधिकार प्रदान किया गया है। संविधान में नागरिकों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का भी उल्लेख किया गया है।

25.3.5 एकात्मक शासन – जापान का संविधान एकात्मक है। प्रशासन की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था है, किन्तु शासन का स्वरूप एकात्मक ही रखा गया है। संविधान द्वारा शक्तियों का कोई विभाजन नहीं किया है। सम्पूर्ण शक्तियों का स्रोत केन्द्र है। 'डायट के अधिनियमों से प्रान्त अपनी शक्तियां प्राप्त करते हैं, और उसकी इच्छानुसार ही इन शक्तियों को घटाया बढ़ाया जा सकता है। प्रान्त अधीनस्थ इकाइयाँ हैं, जिन्हें केवल केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ ही प्राप्त हैं।

25.3.6 संसदीय प्रणाली – जापान में ब्रिटिश आदर्श पर आधारित संसदीय शासन प्रणाली पायी जाती है। यहाँ संसदीय सरकार की सभी विशेषतायें पायी जाती हैं जैसे राज्य का अध्यक्ष नाम–मात्र का प्रधान होता है और वास्तविक शक्ति मंत्रिमण्डल में निहित रहती है, कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में सामंजस्य रहता है, शक्तियों का पृथक्करण न होकर एकीकरण रहता है, कार्यपालिका व्यवस्थापिका के अधीन रहती है व उसके विश्वास पर्यन्त बनी रहती है। संसदीय प्रणाली का मूलभूत सिद्धान्त मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व जापान में भी उसी रूप में पाया जाता है जिस रूप में इंगलैण्ड में प्रधानमंत्री का चुनाव संसद करती है तथा अन्य मंत्रियो का चुनाव प्रधानमंत्री। इंगलैण्ड की भांति वास्तविक सत्ता प्रधानमंत्री के हाथ में है।

25.3.7 कठोर संविधान – लिखित संविधान आमतौर से कठोर होते हैं ताकि कार्यपालिका या विधायिका उनमें मनमाने परिवर्तन न कर सके। जापान का संविधान अमरीका के संविधान से भी अधिक कठोर है। यह, स्विस संविधान की भांति, जापानी लोगों को संशोधन प्रक्रिया में साझेदार बनाता है। जापान में सम्राट् और डाइट स्वत: किसी संविधान संशोधन को पारित कर लागू नहीं कर सकते। जापान में कोई भी संशोधन सम्राट् द्वारा तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक उसे डाइट के दोनों सदनों द्वारा दो–तिहाई अथवा उससे भी अधिक मतों द्वारा स्वीकार होने के बाद उसे जनता के अनुसमर्थन के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता और उसे विशेष जनमत संग्रह अथवा चुनाव में, जैसाकि डाइट निश्चित करे, कुल मतों के बहुमत के सकारात्मक मत प्राप्त नहीं हो जाते।

25.3.8 लौकिक प्रभुसत्ता – जापान का संविधान लोक प्रभुता पर आधारित है। इसका दर्शन प्राचीन संविधान से मूल रूप से भिन्न है। यह साम्राज्यीय प्रभुता को नष्ट करता है और लोक प्रभुता की स्थापना करता है। जापान के संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट कहा गया है कि ''हम जापान के नागरिक राष्ट्रीय डायट में निर्वाचित अपने प्रतिनिधियों के द्वारा कार्य करते हुए यह घोषणा करते हैं कि प्रभुसत्ता शक्ति जनता के हाथों में है और हम इस संविधान को स्थापित करते हैं। सरकार जनता की एक पवित्र अमानत है, जिसकी सत्ता जनता से प्राप्त की गयी है, जिसकी शक्तियाँ जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा प्रयोग की जाती हैं, और जिसके लाभ जनता भोगती है।'' लोक–संप्रभुता की अवधारणा ने देश में प्रजातंत्र की नींव को सुदृढ़ किया है।

25.3.9 युद्ध का परित्याग – जापान प्रभुसत्तात्मक अधिकारों के रूप में युद्ध को तिलाँजलि देता है तथा दूसरे राष्ट्रों के साथ विवाद निपटाने के लिए बल प्रयोग या धमकी का परित्याग करता है। विश्व के अन्य किसी भी देश में संविधान में युद्ध के परित्याग की बात का समावेश नहीं किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 9 के अनुसार ''जापान के लोगों ने राष्ट्र के सार्वभौम अधिकार के रूप में सदा के लिए युद्ध तथा अन्तरराष्ट्रीय विवादों के निपटारे के लिए शक्ति के प्रयोग अथवा शक्ति के प्रयोग की धमकी का परित्याग कर दिया है।'' वास्तव में देखा जाए तो युद्ध–त्याग का यह आदर्श सुन्दर और अनुकरणीय है। लेकिन जब तक विश्व के अन्य राष्ट्र भी ऐसा करने को तत्पर न हो, तब तक एक राष्ट्र द्वारा अभिव्यक्त किया गया इस प्रकार का निश्चय अव्यावहारिक ही प्रतीत होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

25.3.10 स्वतन्त्र न्यायपालिका – जापान में अमेरिका और भारत की भांति स्वतन्त्र न्यायपालिका की स्थापना की गई है। संविधान द्वारा एक स्वतन्त्र सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गयी है। इसके न्यायाधीश केवल महाभियोग के द्वारा ही अपने पद से हटाये जा सकते हैं और उनके कार्यकाल में उनके वेतन में कमी नहीं की जा सकती है। कार्यपालिका को किसी अंग अथवा अभिकरण की अन्तिम शक्ति नहीं सौंपी गयी है। सभी न्यायाधीश अपने कार्य में स्वतन्त्र होते हैं। अनुच्छेद 76 के अनुसार न्यायाधीशों को अपने अन्त:करण के अनुसार कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता है और वे केवल संविधान तथा कानूनों के ही अधीन हैं। संविधान की धारा 81 के अनुसार न्यायिक पुनरावलोकन की भी व्यवस्था है अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय संविधान का रक्षक है और डायट द्वारा पारित कानूनों की संवैधानिकता की जाँच करने का अधिकार रखता है।

25.3.11 द्वि सदनात्मक व्यवस्थापिका – ब्रिटेन, अमेरिका, भारत आदि देशों की भांति जापान में भी द्वि सदनात्मक व्यवस्थापिका का प्रावधान किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 42 के अनुसार डाइट राज्य का सर्वोच्च अंग तथा एकमात्र विधि निर्मात्री संस्था है जो प्रतिनिधि सदन तथा सभासद सदन से मिलकर बनी है। प्रतिनिधि सदन जनता का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करता है और वर्तमान में इसमें 512 सदस्य हैं जो 4 वर्ष के लिए निर्वाचित किये जाते हैं। सभासद सदन में 252 सदस्य हैं जो 6 वर्ष के लिए निर्वाचित किये जाते हैं। शक्तियों की दृष्टि से प्रतिनिधि सदन को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। सभासद सदन के पास प्रभावी शक्तियाँ नहीं हैं, वह तो एक विलम्बकारी सदन के रूप में कार्य करता है।

25.3.12 मौलिक अधिकार तथा कर्त्तव्य – संविधान में जनता के अधिकारों व कर्त्तव्यों की चर्चा तीसरे इकाई में की गई है और 10 से लेकर 40 तक की धाराओं का सम्बन्ध इसी महत्त्वपूर्ण विषय से है। संविधान में घोषणा की गई है कि ये अधिकार शाश्वत तथा अनुल्लंघनीय हैं। तथा ये स्वयं संविधान द्वारा प्रदान किए गए हैं। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों की सूची बहुत लम्बी है। संविधान में भाषा और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, गैर कानूनी बन्दीकरण से मुक्त होने की स्वतन्त्रता, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता आदि विभिन्न अधिकारों की व्यवस्था की गई है। संविधान नागरिकों के रोजगार पाने के अधिकार को भी मान्यता देता है।

संविधान में कतिपय कर्त्तव्यों की भी व्यवस्था है। संविधान की धारा 30 के अनुसार यह व्यवस्था है कि नागरिक कानून द्वारा निर्धारित करों का भुगतान करेंगे।

25.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि जापानी संविधान का प्रारूप अमरीकी अधिकारियों के मार्गनिर्देशन में तैयार किया गया था तथापि यह जापान की जनता की इच्छाओं को प्रतिबिम्बित करता है। जापान का वर्तमान संविधान युद्ध-पूर्व के संविधान की तुलना में लोकतान्त्रिक, प्रगतिशील और शान्तिवादी है। अत: यह जापानी जनता को लोकतान्त्रिक क्रान्ति के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लाभ प्राप्त कराने वाला तथा पुराने सर्वसत्तावाद को पुन: स्थापित होने से रोकने वाला संविधान है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जापान के वर्तमान संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जापान के संविधान के संवैधानिक विकास का वर्णन कीजिए।
2. जापान के संविधान के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जापान का संविधान कब लागू किया गया?
2. जापान में संसदीय प्रणाली है, अथवा अध्यक्षात्मक?
3. जापान के संविधान को कठोर संविधान क्यों कहा जाता है?
4. जापान में लोकप्रभुसत्ता से आपका क्या तात्पर्य है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 26
सम्राट् का पद

संरचना

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 सम्राट् की प्राचीन स्थिति
26.3 नये संविधान के अन्तर्गत सम्राट् की स्थिति
26.4 सम्राट् के कार्य एवं अधिकार
    26.4.1 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ
    26.4.2 विधायी शक्तियाँ
    26.4.3 न्यायिक शक्तियाँ
26.5 सारांश

26.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत जापान के सम्राट की प्राचीन एवं वर्तमान स्थिति का वर्णन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- सम्राट् की प्राचीन स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- नये संविधान के अन्तर्गत सम्राट् के पद की स्थिति को समझ सकेंगे,
- सम्राट के कार्य एवं अधिकारों को समझ सकेंगे।
- सम्राट के पद के महत्व का विवेचन कर सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

जापान में प्रारम्भ से ही सम्राट् का बहुत अधिक महत्त्व रहा है। यह एक समाजशास्त्रीय चमत्कार एवं जापानी राष्ट्रीयता के सतत् स्थायित्व का ही परिचायक है कि जापान में पिछलें दो हजार सालों से एक ही परिवार का राजत्व कायम है। ऐतिहासिक ह्रास व विकास की उथल-पुथल मचा देने वाली हर घटना के थपेड़ों को सहते हुए भी जापान का यह राजमुकुट अपनी जगह कायम रहा। द्वितीय विश्व युद्ध में पराजित व प्रताड़ित जापान आज एक लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था वाला देश है, लेकिन आज भी सम्राट् की संवैधानिक सर्वोच्चता कायम है।

26.2 सम्राट् की प्राचीन स्थिति

जापान का राजतंत्र विश्व के प्राचीनतम राजतंत्रों में से है। जापानी इतिहासकारों का मत है कि उनके सम्राट् का वंश विश्व सभ्यता के प्रस्तर काल से देश का शासन कर रहा है। जिम्मू, तेनो जिसे सूर्य देवता का वंशज माना जाता है और जिसका राज्यारोहण सन् 660 ईसा पूर्व कहा जाता है, इस वंश का प्रथम सम्राट् था। तभी से जापान में राजत्व या राजवंश की श्रृंखला या परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। 1947 ई. में नये संविधान के लागू होने से पूर्व जापान का सम्राट् देश के शासन की धुरी था, हालांकि वह स्वयं व्यक्तिगत रूप में अपनी शक्ति का प्रभावी ढ़ंग से प्रयोग नहीं करता था। वह एक पवित्र आभा से घिरा रहता था, तथा उसे सब कुछ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जानने वाला, सर्वगुण सम्पन्न देवता माना जाता था। मैजी संविधान के अन्तर्गत सरकार की समस्त शक्तियाँ, पवित्र तथा अनुल्लंघनीय सम्राट् में निहित थीं। सम्राट् ही सम्पूर्ण प्रशासन के लिए उत्तरदायी था और उसमें प्रभुता के सभी अधिकार केन्द्रीभूत थे। सिद्धान्ततः, वह राज्य भी करता था और प्रशासन भी, उसका पद सर्वोच्च, पवित्र देवत्व से परिपूर्ण और अनतिक्रम माना जाता था। उस संविधान में कहा गया था कि 'जापान के साम्राज्य का शासन सम्राटों की श्रृंखला द्वारा अनन्त काल तक किया जायेगा।' उसके नाम से शासन चलाने वाले मंत्री सम्राट् के प्रति ही उत्तरदायी माने जाते थे, न कि डाइट के प्रति। आइटो के कथनानुसार, ''राज्य की सभी विधायी व कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ उनके हाथों में केन्द्रीभूत थीं। देश के राजनीतिक जीवन के सभी सूत्र उसके नियन्त्रण में इस प्रकार थे जैसे शरीर के सभी अंगों पर मस्तिष्क का नियन्त्रण रहता है।'' सम्राट् जापानी राज्य का मूर्त्तरूप माना जाता था क्योंकि वह अपने दैवो पूर्वजों की अखण्ड श्रृंखला का उत्तराधिकारी था। उसे राष्ट्र रूपी वृहत् परिवार का पिता तुल्य मुखिया माना जाता था।

इस तरह द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जापान में शाही संस्कृति का विकास हुआ, जिससे सम्राट् प्रशासन की समस्त गतिविधियों का केन्द्र-बिन्दु और जनता की अगाध निष्ठा का अधिकारी बन गया।

26.3 नये संविधान के अन्तर्गत सम्राट् की स्थिति

द्वितीय महायुद्ध के बाद में सम्राट् और जनता के बीच उपर्युक्त संवैधानिक सिद्धान्त में परिवर्तन आ गया। 3 मई, 1947 ई. को नवीन संविधान कार्यान्वित किया गया और साथ ही सम्राट् की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया।

इस नवीन संविधान के अन्तर्गत सम्राट् का पद शक्ति का पद न रहकर, वैधानिक अध्यक्ष का पद रह गया है। सम्राट् अब शासन का अध्यक्ष न रहकर राज्य का प्रतीक मात्र है। अब राज्य की सर्वोच्च सत्ता सम्राट् में निहित न रहकर जनता में निहित है। सम्राट्-पद के मूल में जनता की इच्छा है अर्थात् जनता ही सम्राट् की इच्छा का स्रोत है। शासन-कार्य में किसी प्रकार की पहल स्वयं सम्राट् की ओर से नहीं की जा सकती। यथार्थ में शासन सम्बन्धी कोई भी कार्य सम्राट् वैयक्तिक रूप में नहीं करता। संविधान के अनुच्छेद 1 और 4 सम्राट् की स्थिति को पूर्णतः स्पष्ट कर देते हैं। अनुच्छेद 1 के अनुसार ''सम्राट् राज्य और जनता की एकता का प्रतीक है। वह अपनी स्थिति को जनता की इच्छा से, जिसमें सम्प्रभुता निवास करती है।'' इस अनुच्छेद से स्पष्ट है कि सम्प्रभुता जनता में निवास करती है सम्राट् में नहीं। सम्राट् अपनी स्थिति को जनता की सार्वभौम इच्छा से प्राप्त करता है, दैवी वंश से नहीं। अनुच्छेद 4 सम्राट को शासन सम्बन्धी कोई शक्तियाँ प्रदान नहीं करता। यह अनुच्छेद सम्राट् को केवल राज्य के मामलों के साथ जोड़ता है, शासन के मामलों से नहीं। इसके अतिरिक्त वर्तमान संविधान के अन्तर्गत सम्राट् को परामर्श देने वाली पूर्वगामी संस्थाओं -ज्युसिन और प्रिवी कौंसिल का अन्त हो गया है।''संवैधानिक दृष्टि से अब सम्राट् की शासन में भूमिका ब्रिटेन के राजा के समान रह गई है। कुलीन तन्त्री शासन समाप्त हो गया है तथा सम्राट् को प्रभावित करने वाले अन्य आन्तरिक अंगों का कानून द्वारा लोप हो गया है।''

26.4 सम्राट् के कार्य एवं अधिकार

वर्तमान संविधान सम्राट् को राज्य का न तो सर्वोच्च अंग बनाता है और न उसे कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियाँ प्रदान करता है। अनुच्छेद 41 के अनुसार, ''डाइट राज्य शक्ति का सर्वोच्च अंग है और वही राज्य की कानून निर्माण करने वाली एक मात्र संस्था है।'' अनुच्छेद 65 के अनुसार ''कार्यपालिका शक्ति केबिनेट में निहित है।'' अनुच्छेद 76 के अनुसार, ''सारी न्यायिक शक्ति सर्वोच्च न्यायालय और अन्य निम्न न्यायालयों में निहित है जिन्हें विधि द्वारा स्थापित किया गया है।'' संविधान सम्राट् को उन सारी शक्तियों से वंचित करता है जिनका वह मैजी संविधान के अन्तर्गत प्रयोग करता था। वर्तमान में सम्राट की स्थिति मात्र औपचारिक तथा संवैधानिक प्रधान की सी रह गई है। सम्राट् को इस बदलती हुई स्थिति में निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है।

26.4.1 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ - सम्राट् को निम्नलिखित कार्यपालिका शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं-

(1) सम्राट् प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है। प्रधानमंत्री कौन होगा, इसका निश्चय डाइट करती है। सम्राट् द्वारा नियुक्ति केवल औपचारिकता है।

(2) राज्य के मन्त्रियों और कानून द्वारा व्यवस्थित अन्य अधिकारियों की नियुक्ति तथा पदच्युति को प्रमाणित करना।

(3) राजदुतों और मन्त्रियों की शक्तियों एवं प्रमाणपत्रों को प्रमाणित करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(4) सम्मान के स्रोत के रूप में सम्राट् सम्मान सूचक उपाधियाँ प्रदान करता है।

(5) वह विदेशी राजदूतों और मन्त्रियों का स्वागत करता है।

(6) सम्राट् अलंकारित कृत्यों को सम्पन्न करता है।

26.4.2 विधायी शक्तियाँ – जापान के सम्राट् को निम्नलिखित विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं–

(1) सम्राट् डाइट के सत्र बुलाता है।

(2) डाइट के कार्यकाल की समाप्ति पर प्रधानमंत्री की सिफारिश पर प्रतिनिधि सभा को भंग करता है।

(3) डाइट के सदस्यों के आम चुनाव की घोषणा करता है।

(4) समस्त राष्ट्रीय कानूनों, संवैधानिक संशोधनों, मन्त्रिमण्डलीय आदेशों तथा सन्धियों को लागू करता है।

26.4.3 न्यायिक शक्तियाँ – न्यायिक क्षेत्र में मन्त्रिमण्डल द्वारा अनुमोदित व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करता है तथा सामान्य एवं विशेष प्रकार के क्षमादान, दण्ड को कम करने, निलम्बित करने या अधिकारों को पुन: प्रदान करने के आदेशों को प्रमाणित करता है।

26.5 सारांश

सिद्धान्त और व्यवहार में शक्तियों से शून्य होते हुए भी जापान का सम्राट् व्यर्थ और महत्त्वहीन नहीं है। राजनीतिक प्रभाव में शून्य होते हुए भी वर्तमान संविधान में सम्राट् देश का सर्वाधिक सम्मानित व्यक्ति है। सम्राट् अत्यन्त प्राचीन काल से राष्ट्र के इतिहास, उसकी संस्कृति और उसकी एकता का प्रतीक समझा जाता रहा है तथा वर्तमान संविधान भी उसे राष्ट्र की एकता का प्रतीक मानता है। जापानी अपने सम्राट् का सम्मान, अंग्रेजों द्वारा उनकी साम्राज्ञी या सम्राट् के प्रति किए जाने वाले सम्मान से अधिक ही करते हैं। जापानियों के अपने सम्राट् के साथ ऐसे मधुर सम्बन्ध हैं जिन्हें मापा नहीं जा सकता। वे सम्राट के रहने से अपने आपको सुरक्षित अनुभव करते हैं।

जापान के इतिहास में सम्राट् की स्थिति नैतिक और आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में सदैव ही उच्चतम रही है और आज भी है। मनागा के मतानुसार, ''सम्राट् की शासनिक शक्तियों के लोप के कारण उसकी प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं हुई है। जहाँ तक सम्राट् के प्रति जनता के रूख का सम्बन्ध है, आजकल भी कम से कम प्रतीक के रूप में सम्राट् को ही राजा माना जाता है। सम्राट् आज भी राष्ट्रीय राजनीति और राष्ट्रीय एकता का द्योतक है।''

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जापान के सम्राट् की शक्तियों को स्पष्ट कीजिए तथा उसकी संवैधानिक स्थिति की विवेचना कीजिए।

2. 'जापान का सम्राट् राज्य करता है, शासन नहीं।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नवीन संविधान में जापान के सम्राट् की संवैधानिक स्थिति का विवेचन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जापान के सम्राट् की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई- 27

प्रधानमंत्री एवं मन्त्रिपरिषद्

संरचना

27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 केबिनेट का स्वरूप

27.2.1 कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का सामंजस्य

27.2.2 व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका का उत्तरदायित्व

27.2.2 राजनीतिक सजातीयता

27.3 जापानी केबिनेट का संगठन

27.3.1 केबिनेट का कार्यकाल

27.3.2 केबिनेट की कार्यप्रणाली

27.4 केबिनेट की शक्तियाँ

27.4.1 प्रशासनिक शक्ति

27.4.2 विधायी शक्ति

27.4.3 वित्तीय शक्ति

27.4.4 न्यायिक शक्ति

27.4.5 परामर्श सम्बन्धी शक्ति

27.5 प्रधानमंत्री

27.5.1 नियुक्ति एवं योग्यता

27.6 प्रधानमंत्री की शक्तियाँ

27.6.1 मन्त्रिमण्डल का निर्माण

27.6.2 मन्त्रियों को पदच्युत करना

27.6.3 दल का नेता

27.6.4 डायट का नेता

27.6.5 सम्राट् एवं मन्त्रिमण्डल के बीच कड़ी

27.6.6 अन्तरराष्ट्रीय प्रतिनिधि

27.6.7 नियुक्ति का अधिकार

27.6.8 आपातकालीन शक्तियाँ

27.7 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

27.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत जापान की केबिनेट एवं प्रधानमंत्री पद की स्थिति का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- वर्तमान केबिनेट का स्वरूप समझ सकेंगे,
- कबिनेट का संगठन और शक्तियाँ समझ सकेंगे,
- प्रधानमंत्री की शक्तियाँ समझ सकेंगे,
- प्रधानमंत्री की वास्तविक स्थिति की जानकारी प्राप्त करेंगे।

27.1 प्रस्तावना

जापान में मन्त्रिमण्डल ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमिक विकास का परिणाम नहीं, जैसाकि ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल अनेक वर्षों के क्रमिक विकास का परिणाम रहा है। जापान में सर्वप्रथम मन्त्रिमण्डल की रचना सन् 1885 में सम्राट् मैजी के एक अध्यादेश द्वारा की गयी थी। अर्थात् मन्त्रिमण्डल की रचना मैजी संविधान के लागू होने से पूर्व ही कर दी गयी थी। उस समय यह व्यक्तिगत परामर्शदाताओं की निकाय संस्था मात्र थी। सम्राट् शासन शक्तियों का केन्द्र था। मन्त्री उसी शक्ति का प्रयोग कर सकते थे, जो सम्राट् उन्हें प्रदान करता था।

इस प्रकार मैजी संविधान के अन्तर्गत केबिनेट प्रशासन की मुख्य संचालक और नीति निर्माता अंग न होकर, केवल मन्त्रणा देने वाली समिति के समान थी। समस्त कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ सम्राट् में निहित थीं और राज्य के मंत्री सम्राट् को इस प्रकार के प्रयोग के बारे में सिर्फ परामर्श देते थे। मन्त्रियों के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वे डायट के सदस्य हो, डायट के प्रति उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं था। मंत्री व्यक्तिगत रूप से सम्राट् के प्रति उत्तरदायी थें और उनमें सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पूर्ण अभाव था। प्रधानमंत्री के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह प्रतिनिधि सदन के बहुमत दल का नेता हो। डायट के अविश्वास आदि का मन्त्रियों की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। अत: इस काल में प्रधानमंत्री और केबिनेट का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था, वह तो केवल परामर्शदात्री निकाय थी जिसे अनेक दबावों के अधीन रहकर कार्य करना पड़ता था। परन्तु जापान के नवीन संविधान ने केबिनेट के प्राचीन स्वरूप में आमूल परिवर्तन कर दिया है। वर्तमान केबिनेट का संगठन संसदीय पद्धति वाले राज्यों के आधार पर किया गया है। आज जापानी केबिनेट का स्वरूप बहुत कुछ पाश्चात्य केबिनेट के स्वरूप का ही अनुकरण है और पाश्चात्य केबिनेट की प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण विशेषताएं जापानी केबिनेट में पाई जाती है।

27.2 केबिनेट का स्वरूप

जापान के 1947 ई. के संविधान के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डल की स्थिति में पूर्ण परिवर्तन आ गया है। आज वह शासन की समस्त शक्तियों का प्रयोग करती है। जापानी मन्त्रिमण्डल के स्वरूप को निम्नलिखित शीर्षकों में रखा जा सकता है –

27.2.1 कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का सामंजस्य – संसदीय केबिनेट प्रणाली के अनुरूप जापान के संविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के मध्य सामंजस्य बनाए रखने का प्रयास किया गया है जो ब्रिटिश शासन–प्रणाली की मूल विशेषता है। कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका का सामंजस्य ही मन्त्रिमण्डल को सुचारू रूप से कार्य करने को प्रेरित करता है।

यहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति इन दोनों को पृथक् रखने का प्रयत्न नहीं किया गया है। जापानी संविधान में व्यवस्था है कि केबिनेट के सदस्यों को अधिकांशत: डाइट के सदस्यों में से लिया जाए। डाइट के बाहर के व्यक्तियों को इसमें बहुत कम ही शामिल किया जाता है।

27.2.2 व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका का उत्तरदायित्व – व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त केबिनेट पद्धति का प्राणतत्व है। जापानी संविधान की धारा 66 में स्पष्ट कहा गया है कि अपने सभी कार्यों के लिए केबिनेट डायट के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। धारा 69 में प्रावधान है कि प्रतिनिधि –सदन का विश्वास खो देने पर सम्पूर्ण केबिनेट को त्याग पत्र देना पड़ेगा।

वस्तुत: डायट को केबिनेट पर नियन्त्रण का वैसा ही अधिकार प्राप्त है जैसा संसदीय प्रणाली के देशों में व्यवस्थापिका को कार्यपालिकाओं पर प्राप्त होता है। डायट अनेक उपायों से केबिनेट पर नियन्त्रण रखती है। डायट के सदस्य मन्त्रियों से नीति–विषयक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न पूछते हैं, जिनका उत्तर मन्त्रियों को देना पड़ता है। यद्यपि मन्त्री उत्तर देने के लिए सदैव बाध्य नहीं होते, तथापि सदस्यों के प्रश्नों का भय उनकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाए रहता है।

27.2.3 राजनीतिक सजातीयता – जापानी संविधान भी सामूहिक उत्तरदायित्व की व्यवस्था करता है। इस सामूहिक उत्तरदायित्व को सफल बनाने के लिए और मन्त्रियों के दृष्टिकोण में एकता बनाए रखने के लिए जापान में भी ब्रिटेन की ही भांति दल-प्रथा का विकास हुआ है। राजनीतिक दलों का सरकार के निर्माण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है और मन्त्रियों की नियुक्ति बहुत कुछ दलीय प्रथा पर ही निर्भर करती है। डायट के जो सदस्य मन्त्री बनाए जाते हैं, वे प्राय: एक ही राजनीतिक विचारधारा के होते हैं और इसीलिए वे एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं।

जापान की केबिनेट का स्वरूप ब्रिटेन से काफी तह तक मेल खाता है।

27.3 जापानी केबिनेट का संगठन

जापान में मन्त्रिमण्डल के गठन की प्रक्रिया राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष (सम्राट्) से आरम्भ नहीं होती बल्कि डायट से आरम्भ होती है। अनुच्छेद 67 के अनुसार "डायट के प्रस्ताव द्वारा डायट के सदस्यों में से मनोनीत किये जाने पर सम्राट् औपचारिक रूप से प्रधानमंत्री को नियुक्त करता है।" इस तरह प्रधानमंत्री के चयन की शक्ति डायट के पास है, सम्राट् के पास नहीं। सम्राट् उस सदस्य को प्रधानमंत्री नियुक्त करने के लिए बाध्य है जिसे डायट ने इस पद के लिए चुना है चाहे सम्राट् व्यक्तिगत रूप से उसे पसन्द करता हो अथवा न करता हो। राज्य के अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री स्वयं करता है। मंत्रियों की अधिकांश संख्या डायट के सदस्यों में से ही होती है। मन्त्रियों की संख्या का आधार अथवा कोई निश्चित संख्या संविधान द्वारा निर्धारित नहीं की गयी है। वह समय-समय पर कानून के अनुसार बदलती रहती है।

27.3.1 जापानी केबिनेट का कार्यकाल – जापान की केबिनेट की कोई निश्चित अवधि नहीं है। वह डाइट के निम्न सदन अर्थात् प्रतिनिधि सदन के बहुमत के समर्थन तक ही अपने पद पर स्थिर रह सकती है। यदि निम्न सदन केबिनेट के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर देता है तो केबिनेट को दस दिन के भीतर या तो स्वयं त्याग-पत्र दे देना चाहिए अथवा प्रतिनिधि सदन को भंग कर देना चाहिए एवं देश में दुबारा निर्वाचन कराना चाहिए। जब केबिनेट को त्यागपत्र देना होता है तो वह दोनों सदनों के अध्यक्षों को इस बात की लिखित सूचना देती है। यह सूचना प्राप्त होने पर डायट नए प्रधानमंत्री के चयन का कार्य करना आरम्भ कर देती है।

27.3.2 केबिनेट की कार्यप्रणाली – केबिनेट का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है और प्रधानमंत्री का कार्यालय ही सरकार का केन्द्रीय कार्यालय होता है। इस कार्यालय का मुख्य संचालक केबिनेट सचिवालय का निर्देशक होता है। इसकी सहायता के लिये उपनिर्देशक होते हैं। सचिवालय केबिनेट की सभाओं का कार्यक्रम तैयार करता है, आवश्यक पत्र तैयार करता है एवं अन्य मामलों का प्रबन्ध करता है। केबिनेट की बैठकें साधारणतया सप्ताह में दो बार प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में उसके सरकारी भवन में होती हैं। प्रधानमंत्री की अनुपस्थिति में उपप्रधानमंत्री सभापतित्व करता है। केबिनेट की बैठक के लिए कोई गणपूर्ति निश्चित नहीं है। केबिनेट के वाद-विवाद गोपनीय होते हैं और कार्यवाही प्रकाशित नहीं की जाती। केबिनेट मन्त्रियों के अधीन उपमंत्री भी होते हैं। ये स्थायी सरकारी अधिकारी होते हैं।

27.4 केबिनेट की शक्तियाँ

जापान में केबिनेट को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त होती है। वह विविध प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करती है। उसकी शक्तियों का निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया जा सकता है –

27.4.1 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियां – संविधान की धारा 65 के अनुसार "कार्यपालिका शक्ति केबिनेट में निहित है।" अनुच्छेद 4 "सम्राट को शासन सम्बन्धी शक्तियों से वंचित करता है। अनुच्छेद 73 में केबिनेट के कार्यों का वर्णन किया गया है, वे निम्नलिखित हैं-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. राज्य के कार्यों का संचालन करना।

2. निष्ठापूर्वक कानून को लागू करना।

3. राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करना तथा सर्वसम्मति से निर्णय लेना।

4. केबिनेट लोकसेवकों पर नियन्त्रण रखती है। उसे स्थायी तथा विशेष वर्गों की लोकसेवा के अधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार भी प्राप्त है। कानून द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार वह सरकारी अधिकारियों को पदच्युत् कर सकती है तथा उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकती है।

5. राज्य के उच्च लोकसेवकों और राजनीतिक पदाधिकारियों की नियुक्ति का भी अधिकार उसे ही प्राप्त है।

6. विदेश–नीति का निर्धारण और संचालन करने का उत्तरदायित्व केबिनेट का ही है। विदेशों से सन्धि करने का उसे अधिकार है, किन्तु उन पर डायट की स्वीकृति लेनी होती है।

7. शासन के विभिन्न विभागों का मार्गदर्शन करने और उनके कार्यों में समन्वय लाने का मुख्य कार्य केबिनेट ही पूरा करती है।

27.4.2 विधायी शक्ति – जापान का संविधान डाइट को राज्य शक्ति का सर्वोच्च अंग बनाता है और उसे विधि निर्माण करने वाली प्रमुख संस्था के रूप में प्रतिष्ठित करती है। फिर भी मन्त्रिमण्डल अनेक विधायी कार्यों को सम्पन्न करता है। संसदीय व्यवस्था के अनुरूप, जापानी केबिनेट भी विधायी क्षेत्र में व्यवस्थापिका को नेतृत्व प्रदान करती है। आवश्यक विधेयकों को तैयार करने, उनको डाइट के समक्ष रखने और अपने बहुमत के बल पर उन्हें डाइट से स्वीकृत करा लेने का सम्पूर्ण कार्य केबिनेट का ही है। उसे मन्त्रिमण्डलीय आदेश भी जारी करने का अधिकार है। इन आदेशों का प्रभाव संसदीय कानूनों जैसा ही होता है। डाइट की बैठक बुलाने, निम्न सदन को विघटित करने, सम्राट् को परामर्श देने, आम चुनाव की घोषणा करने तथा संविधान में संशोधन लाने के लिए आवश्यक कदम उठाने आदि के दायित्वों का निर्वाह भी कबिनेट ही करती हैं।

27.4.3 वित्तीय शक्ति – संविधान की धारा 83 ने राष्ट्रीय वित्त के प्रशासन का उत्तरदायित्व डाइट पर डाला है, लेकिन व्यवहार में कबिनेट ही इस उत्तरदायित्व का अधिकांशतः निर्वाह करती है। बजट तैयार करने और उसे डाइट के सामने रखने का दायित्व केबिनेट का ही है और केबिनेट बजट को डाइट द्वारा ज्यों का त्यों पास करा लेती है। आकस्मिक परिस्थिति में डाइट द्वारा सुरक्षित धनराशि के व्यय का उत्तरदायित्व केबिनेट पर ही है, यद्यपि धन खर्च करने के बाद उसे अविलम्ब डाइट की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

27.4.4 न्यायिक शक्ति – संविधान ने कबिनेट को सामान्य क्षमादान, विशिष्ट क्षमादान, दण्ड को कम करने, मृत्यु–दण्ड को अल्पकाल के लिए स्थगित करने तथा अधिकारों को पुनः प्रदान करने आदि के प्रश्नों पर निर्णय देने का अधिकार दिया है। इसके अतिरिक्त केबिनेट सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को मनोनीत करती है, जिसे औपचारिक रूप से सम्राट् नियुक्त करता है। सम्राट् केबिनेट के इन कार्यों का केवल प्रमाणीकरण करता है।

27.4.5 परामर्श सम्बन्धी शक्ति – मन्त्रिमण्डल राज्य के मामलों में सम्राट् को परामर्श देता है। वस्तुतः राज्य सम्बन्धी मामलों में भी मन्त्रिमण्डल का निर्णय अन्तिम होता है और सम्राट् इन औपचारिक कार्यों के निष्पादन में किन्हीं विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं करता है। क्विग्ले और टर्नर ने कहा है कि ''मन्त्रिमण्डल का यह कार्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि परामर्श उसकी ओर से निर्णय के बराबर है जो उसके विचारों के सोच–विचार के उतना ही अधीन है जितना कि वे संवैधानिक राजा के अनुरूप हैं।'' उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि केबिनेट के कार्यों की प्रकृति बहुमुखी है।

27.5 प्रधानमंत्री

27.5.1 नियुक्ति एवं योग्यता – संवैधानिक उपबन्धों के अनुसार सम्राट् उसी व्यक्ति को प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्त करता है जिसका नामांकन डाइट के दोनों सदन करते हैं। प्रधानमंत्री की नियुक्ति में सम्राट् को व्यक्तिगत इच्छा अथवा रुचि के अनुसार कार्य करने का कोई अवसर प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संविधान द्वारा प्रधानमंत्री के लिए दो योग्यताएँ निश्चित की गई है–

(1) उसे डाइट का सदस्य होना चाहिए एवं

(2) उसे असैनिक होना चाहिए।

27.6 प्रधानमंत्री की शक्तियाँ

संविधान की धारा 65 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्ति केबिनेट में निहित होती है और केबिनेट का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप में राज्य की कार्यपालिका–शक्ति पर अन्तिम अधिकार प्रधानमंत्री को ही प्राप्त है। डाइट में बहुमत दल और जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि होने के कारण उसे राष्ट्र का सर्वोच्च राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त होता है। अपने नेतृत्व के लिए वह प्रत्यक्ष रूप से डाइट के प्रति और अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रधानमंत्री की महत्त्वपूर्ण शक्तियों को निम्नलिखित रूप से रखा जा सकता है –

27.6.1 मन्त्रिमण्डल का निर्माता – मन्त्रिमण्डल में प्रधानमंत्री की स्थिति सर्वोच्च होती है। वही मंत्रियों को नियुक्त करता है। और उनमें से एक को उप प्रधानमंत्री बनाता है। मन्त्रियों के बीच विभागों के वितरण में प्रधानमंत्री का ही निर्णय होता है। वह मन्त्रिमण्डल की समस्त कार्यवाहियों का केन्द्र होता है। वह देखता है कि सब विभाग ठीक से कार्य कर रह है या नहीं प्रधानमंत्री को मन्त्रिमण्डलीय बैठकों का सभापतित्व करने, निरीक्षण करने और कार्यवाहियों का संचालन करने का अधिकार है। मन्त्रिमण्डल के निर्णयों और नीति–निर्धारण में उसकी सर्वोपरि भूमिका रहती है। वह मन्त्रियों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करता है। किसी भी प्रशासनिक विभाग का मंत्री अकेले ही कोई निर्णय नहीं कर सकता। किसी राज्यमंत्री द्वारा जो निर्णय लिया जाता है उस पर मंत्री के हस्ताक्षर होने के साथ–साथ प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर होना भी अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में, मन्त्रिमण्डल का कोई भी निर्णय तभी मान्य समझा जाता है जब उस पर प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर हो जाएँ।

27.6.2 मन्त्रियों को पदच्युत करना – मन्त्रियों को पदच्युत करने का अधिकार भी प्रधानमंत्री को है। संविधान की धारा 68 स्पष्टतः उपबन्धित करती है कि ''प्रधानमंत्री अपनी इच्छानुसार राज्य के मन्त्रियों का निष्कासन कर सकता है।'' सभी मन्त्रियों का भविष्य उसके साथ बँधा रहता है। उसके त्याग–पत्र के साथ पूरा मन्त्रिमण्डल समाप्त हो जाता है। यदि कोई मन्त्री उसके कहने पर त्याग–पत्र नहीं देता है तो वह सम्राट् से कहकर मन्त्री को पदच्युत या बर्खास्त करा सकता है अथवा स्वयं त्याग–पत्र देकर अपने बहुमत के बल पर मन्त्रिमण्डल का पुर्नगठन या पुनर्निर्माण कर सकता है।

27.6.3 दल का नेता – प्रधानमंत्री शासन का प्रधान होने के अतिरिक्त बहुमत दल का नेता भी होता है। उसे दल का प्रतीक माना जाता है। और आम चुनाव प्रायः उसी को केन्द्र बनाकर लड़ा जाता है। डायट में बहुमत दल के समर्थन पर ही वह और उसका मन्त्रिमण्डल, शासन की गृह तथा विदेश नीति का सफलता पूर्वक संचालन करता है। दलीय संगठन के कारण दल के सभी सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। दल का शीर्षस्थ नेता होने के कारण प्रधानमंत्री ही अपने दल में एकता, अनुशासन तथा समन्वय स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है और एक लोकनायक के रूप में वह अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा लोकमत को नई दिशा प्रदान करता है। जनता उसकी अपीलों, भाषणों तथा बयानों से अत्यधिक प्रभावित होती है।

27.6.4 डाइट का नेता – प्रधानमंत्री डाइट का, मुख्यतः प्रतिनिधि सभा का नेता होता है। डायट में किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय पर वह अन्तिम वक्ता और नीति का निर्धारक होता है। शासन की नीतियों से सम्बन्धित अन्तिम तथा महत्त्वपूर्ण भाषण प्रधानमंत्री का होता है। डाइट का नेता होने के कारण वह विधियों के निर्माण, वार्षिक बजट की तैयारी, सदन की कार्यवाही तथा उसमें व्यवस्था बनाए रखने के सम्बन्ध में पथ–प्रदर्शन करता है। डाइट की प्रतिष्ठा तथा गरिमा बनाये रखने का दायित्व भी उसी का है।

27.6.5 सम्राट् एवं मन्त्रिमण्डल के बीच कड़ी – प्रधानमंत्री राजकीय मामलों में सम्राट् और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्पर्क कड़ी का कार्य करता है। अन्य मन्त्रियों का व्यक्तिगत रूप से सम्राट् से प्रत्यक्ष औपचारिक सम्बन्ध नहीं है। मंत्रिमण्डल से सम्बन्धित आवश्यक बातों सूचना सम्राट् को प्रधानमंत्री ही देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

27.6.6 अन्तरराष्ट्रीय प्रतिनिधि – प्रधानमंत्री ही अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में अपने देश का सर्वोच्च और प्रभावशाली प्रतिनिधि होता है। विदेश–नीति में उसके निर्णय अन्तिम और अधिकृत माने जाते हैं। मुख्यत: उसी के व्यक्तित्व और आचरण के आधार पर अन्य देशों से मैत्रीपूर्ण आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हो पाते हैं।

27.6.7 नियुक्ति का अधिकार – प्रधानमंत्री को उच्च राजनीतिक तथा प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति का व्यापक अधिकार प्राप्त है। यद्यपि वह इस सम्बन्ध में अन्य मन्त्रियों से विचार–विमर्श करता है फिर भी उसके निर्णय अन्तिम होते हैं।

27.6.8 आपातकालीन शक्तियाँ – संविधान आपातकालीन शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल में निहित करता है। परन्तु इनका वास्तविक प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। ब्रिटेन और भारत जैसे संसदीय प्रणाली वाले देशों में ये शक्तियाँ सिद्धान्तत: संवैधानिक अध्यक्ष के पास होती हैं, परन्तु इनका वास्तविक प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है।

2.7 सारांश

जापान में प्रधानमंत्री की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जहाँ ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियाँ परम्परा पर आधारित हैं, वहाँ जापान के प्रधानमंत्री की प्रमुखता की स्थिति लिखित संविधान द्वारा निर्धारित की गई है। अपने मंत्रियों की नियुक्ति तथा पदच्युति में उसको पूर्ण शक्ति प्राप्त है अत: वह अपने मन्त्रिमण्डल का स्वामी है। मन्त्रिमण्डल का जीवन उसकी इच्छा पर निर्भर है। उसे मन्त्रिमण्डल रूपी मेहराब की आधारशिला कहा जा सकता है। वह ''ऐसा सूर्य है जिसके चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते हैं'' वह सम्पूर्ण शासनतन्त्र की ''धुरी'' है, वह संवैधानिक तानाशाह है। परन्तु उसका प्रभाव और महत्त्व उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। यदि प्रधानमंत्री उच्च कोटि का बुद्धिमान व्यक्ति है, यदि वह अनुभवी है, यदि वह दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति है और निर्णय लेने में विचलित नहीं होता है, तो वह राष्ट्र का भाग्य निर्माता बन सकता है। इस तरह से प्रधानमंत्री की स्थिति, शक्ति तथा भूमिका उसके व्यक्तित्व पर आधारित होती है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जापान में केबिनेट की शक्तियों एवं कार्यों की विवेचना कीजिए।
2. जापान में प्रधानमंत्री की शक्तियों एवं भूमिका की विवेचना कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जापान की केबिनेट के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. जापान की केबिनेट का कार्यकाल कितने वर्ष का है ?
3. प्रधानमंत्री की संवैधानिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जापान में केबिनेट की रचना कैसे होती हैं ?
2. जापान में प्रधानमंत्री की नियुक्ति कैसे होती है ?
3. मन्त्रिमण्डल के गठन के बारे में जापान के प्रधानमंत्री की शक्तियां बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई -28
डाइट

संरचना

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 डाइट का संगठन
28.2.1 प्रतिनिधि सभा
28.2.2 सभासद् सदन
28.2.3 डाइट के सदस्यों की योग्यतायें
28.2.4 वेतन और विशेषाधिकार
28.2.5 डाइट के पदाधिकारी
28.2.6 डाइट की कार्य विधि
28.3 डाइट की शक्तियाँ
28.3.1 विधायी शक्तियाँ
28.3.2 कार्यपालिका शक्तियाँ
28.3.3 वित्तीय शक्तियाँ
28.3.4 वैदेशिक शक्तियाँ
28.3.5 न्यायिक शक्तियाँ
28.3.6 निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ
28.3.7 संवैधानिक शक्तियाँ
28.4 डाइट के दोनों सदनों में सम्बन्ध
28.4.1 साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में
28.4.2 वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में
28.4.3 मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण
28.4.4 प्रधानमंत्री के निर्वाचन के विषय में
28.5 सारांश

28.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत जापान की डाइट के दोनों सदन–प्रतिनिधि सभा और सभासद का संगठन और कार्यों का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- डाइट का संगठन समझ सकेंगे,
- डाइट के कार्य एवं शक्तियाँ समझ सकेंगे,
- प्रतिनिधि सभा एवं सभा सद के सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

28.1 प्रस्तावना

जापान ने संसदीय प्रणाली की शासन व्यवस्था को अंगीकार किया है जिसमें कार्यपालिका और व्यवस्थापिका एक दूसरे से उस भांति स्वतंत्र नहीं है जिस भांति अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था में वे एक–दूसरे से पृथक् होते हैं। जापान में 'डाइट' संसदीय प्रणाली का आधार स्तम्भ है। उसे राज्य की सर्वोच्च विधायी शक्ति से विभूषित किया गया है। जनता की सम्प्रभुता के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए नवीन संविधान ने 'डाइट' को 'शासन का एकमात्र विधायी अंग' घोषित किया है।

जापान की डाइट एशिया की सर्वाधिक पुरानी संसद है। इसकी स्थापना सन् 1889 ई. में मैजी संविधान के अन्तर्गत की गई थी परन्तु उस समय यह राज्य–शक्ति का सर्वोच्च अंग नहीं थी। राज्य की सर्वोच्च शक्ति सम्राट् में निहित थी और वह सम्प्रभुता का उपयोग करता था। अत: डाइट की स्थिति एक परामर्शदात्री समिति के समतुल्य थी। परन्तु 1947 ई. के नये संविधान ने डाइट की स्थिति में आमूल चूल परिवर्तन कर दिया है। प्रधानमंत्री और केबिनेट को डाइट के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी बनाकर उसे शासन व्यवस्था की प्रमुख धुरी बना दिया गया है।

28.2 डायट का संगठन

जापान की राष्ट्रीय संसद् एक द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका है जिसे डाइट कहा जाता है। इसके निम्न सदन को प्रतिनिधि सदन और उच्च सदन को सभासद् सदन कहते हैं। संविधान की धारा 41 में कहा गया है कि ''डाइट राज्य शक्ति का सर्वोच्च एकमात्र विधि निर्माण करने वाला अंग होगा।'' डाइट के दोनों सदनों का संगठन जन प्रतिनिधि के सिद्धान्त के आधार पर किया गया है। दोनों सदन जापानी जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। दोनों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर, प्रत्यक्ष रूप से, गुप्त मतदान प्रणाली के आधार पर होता है। परन्तु वह इंग्लैण्ड की ससद् के समान प्रभुत्व सम्पन्न व्यवस्थापिका नहीं है। परन्तु इसकी स्थिति लोकतन्त्रात्मक संसद् जैसी है।

28.2.1 प्रतिनिधि सभा – प्रतिनिधि सभा डायट का एक लोकप्रिय एवं निम्न सदन है। संविधान इसके सदस्यों की संख्या निर्धारित नहीं करता बल्कि इसे डाइट द्वारा निर्मित कानून पर छोड़ देता है। यही कारण है कि प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की संख्या समय–समय पर बदलती रही है। प्रारम्भ में प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की संख्या 511 थी। परन्तु वर्तमान में इसके सदस्यों की संख्या 500 हो गई है। बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों की प्रणाली को समाप्त कर एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण किया गया है। नवीन राजनीतिक सुधार प्रावधानों के अनुसार 274 एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण किया गया है और 226 सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से चुने जाते हैं। इस नई पद्धति के तहत 1996 ई. के प्रतिनिधि सदन के चुनाव कराये गये हैं। इसके निर्वाचन 'सीमित मत प्रणाली' के आधार पर होता है अर्थात् प्रत्येक मतदाता को एक ही मत देने का अधिकार प्राप्त होता है। निर्वाचन राजनीतिक दलों के आधार पर होता है। यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र के निर्वाचित प्रतिनिधि की मृत्यु हो जाती है, अथवा वह त्याग–पत्र दे देता है तो उस निर्वाचन क्षेत्र में उप चुनाव नहीं होते बल्कि चुनाव में जिस उम्मीदवार को कम स्थान मिले होते हैं उसे उसके स्थान पर निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। इस व्यवस्था को अनुमय व्यवस्था माना जा सकता है।

प्रतिनिधि सदन के सदस्यों का कार्यकाल 4 वर्ष है, यदि उसे समय से पहले विघटित न कर दिया गया हो। इस तरह प्रतिनिधि सदन के सदस्यों का कार्यकाल निश्चित होते हुए भी निश्चित नहीं है। प्रधानमंत्री के परामर्श पर सम्राट् प्रतिनिधि सदन को कभी भी समय से पूर्व विघटित कर सकता है। जब ऐसा कर दिया जाता है तो प्रतिनिधि सदन के विघटित होने के समय से 40 दिन के अन्दर सामान्य चुनाव अवश्य हो जाने चाहिए और चुनाव के बाद 30 दिन के अन्दर डाइट के अधिवेशन का आयोजन किया जाना चाहिए।

28.2.2 सभासद सदन – सभासद सदन डायट का उच्च सदन है। संविधान इसकी सदस्यों की संख्या को निर्धारित नहीं करता बल्कि इसे डाइट के कानून पर छोड़ देता है। वर्तमान समय में इसके सदस्यों की संख्या 250 है जो प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की संख्या से आधी है। सभासद् सदन के सदस्यों के निर्वाचन की प्रक्रिया प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के निर्वाचन की प्रक्रिया से कुछ जटिल और असाधारण है। इसके 150 सदस्यों का निर्वाचन क्षेत्रीय आधार पर 46 निर्वाचन क्षेत्रों (निर्वाचन जिलों) से होता है और शेष 100 सदस्यों का निर्वाचन राष्ट्रव्यापी निर्वाचन क्षेत्र के आधार पर होता है। प्रत्येक निर्वाचन जिले में से, जनसंख्या के अनुपात में, 2 से 8 सदस्यों का निर्वाचन होता है। इस तरह सभासद सदन के सदस्यों के निर्वाचन के लिए जापानी मतदाता को दो बार मतदान करना पड़ता

है। एक बार निर्वाचन, जिले के प्रतिनिधि के निर्वाचन के लिए और दूसरी बार राष्ट्रव्यापी निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि के निर्वाचन के लिए। सभासद एक स्थायी सदन है। यह पूर्णत: कभी विघटित नहीं होता। सभासद सदन का निर्वाचन 6 वर्ष के लिए होता है। आधे सदस्य तीन वर्ष बाद सेवा निवृत्त होते रहते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्यों का चुनाव होता है।

28.2.3 डाइट के सदस्यों की योग्यतायें - डाइट के सदस्यों की योग्यतायें कानून द्वारा निश्चित की गई हैं-

(1) वह जापान का जन्मजात नागरिक हो।

(2) प्रतिनिधि सदन और सभासद सदन के सदस्यों की आयु क्रमश: कम से कम 25 और 30 वर्ष होनी चाहिए।

(3) कोई भी नागरिक एक ही समय पर डाइट के दोनों सदनों की सदस्यता ग्रहण नहीं कर सकता। यदि कोई नागरिक डाइट के दोनों सदनों के लिए निर्वाचित हो जाता है तो उसे एक सदन की सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ता है।

(4) वह किसी लाभ के पद पर न हो।

(5) वह पागल या दिवालिया न हो।

(6) वह न्यायालय द्वारा दण्डित होने के बाद दण्ड का भोग न कर रहा हो।

(7) वह डाइट के किसी कानून के अन्तर्गत अयोग्य घोषित न किया गया हो।

28.2.4 वेतन और विशेषाधिकार - डाइट के सदस्यों के वेतन समय-समय पर कानून द्वारा निश्चित किये जाते हैं। डाइट के सदस्यों को वर्तमान में 78000 येन प्रतिमास वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त सदस्यों को बैठक के समय प्रतिदिन का भत्ता, पत्र व्यवहार, निजी कार्यालय तथा यात्रा के लिए अलग खर्च मिलता है।

सदस्यों को डाइट में भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। सदन में दिए गये भाषण और मतदान के लिए उनके विरूद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। सत्र काल में उन्हें दण्डनीय अपराधों के सिवाय अन्य मामलों के सम्बन्ध में बन्दी नहीं बनाया जा सकता है।

28.2.5 डाइट के पदाधिकारी - अनुच्छेद 58 के अनुसार, ''डाइट का प्रत्येक सदन अपने सभापति (अध्यक्ष) और अन्य पदाधिकारी का चयन स्वयं करता है।'' अध्यक्ष के अतिरिक्त प्रत्येक सदन के अन्य पदाधिकारी हैं उपाध्यक्ष, अस्थायी अध्यक्ष, स्थायी समितियों के अध्यक्ष, महासचिव, सचिव आदि।

प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष को स्पीकर कहते हैं। स्पीकर का कार्यकाल सदन के कार्यकाल के बराबर होता है। स्पीकर का पद पर्याप्त प्रतिष्ठा तथा महत्त्व का पद है। वह सदन का प्रधान प्रवक्ता माना जाता है। वह सदन के सभापति के रूप में सामान्य तथा विशेष शक्तियों तथा अधिकारों का प्रयोग करता है। जापान का स्पीकर इंग्लैण्ड के स्पीकर की अपेक्षा अमरीकी स्पीकर से अधिक साम्यता रखता है। इस पद की नियुक्ति हो जाने पर भी वह अपने दलीय स्वरूप का परित्याग नहीं करता है।

28.2.6 कार्यविधि - संविधान डाइट के तीन प्रकार के अधिवेशनों की व्यवस्था करता है, साधारण, विशेष और असाधारण

(1) साधारण अधिवेशन - साधारण अधिवेशन वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य ही होगा। साधारण अधिवेशन सामान्यत: दिसम्बर माह में शुरू होते हैं और प्राय: 150 दिन तक चलते हैं। अधिवेशनों की तिथि सम्राट के आदेश द्वारा निश्चित की जाती है।

(2) विशेष अधिवेशन - विशेष अधिवेशन सामान्य चुनाव के बाद और साधारण अधिवेशनों के शुरू होने से पहले बुलाये जा सकते हैं। सामान्यत: ये अधिवेशन प्रधानमंत्री और सदनों के अन्य पदाधिकारियों के चयन के लिए बुलाये जाते हैं।

(3) असाधारण अधिवेशन - असाधारण अधिवेशन मुख्यत: तीन परिस्थितियों में बुलाये जा सकते हैं। प्रथम, मन्त्रिमण्डल स्वयं डाइट के साधारण अधिवेशनों का आयोजन कर सकता है। दूसरे, जब डाइट के किसी सदन के एक-चौथाई या इससे अधिक सदस्य मांग करते हैं तो मन्त्रिमण्डल डाइट के असाधारण अधिवेशन का आयोजन करता है। तीसरे, जब प्रतिनिधि सदन विघटित होता है और राष्ट्रीय आपात स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो मन्त्रिमण्डल सभासद् सदन के आपात अधिवेशनों का आयोजन कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

डाइट के दोनों सदनों के अधिवेशन एक साथ शुरू होते हैं और एक साथ समाप्त होते हैं।

28.3 डाइट की शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद 41 में कहा गया है कि ''डाइट राज्य शक्ति का सर्वोच्च अंग है, वह राज्य की कानून निर्माण करने वाली एक मात्र संस्था है।''

28.3.1 विधायी शक्तियाँ – डाइट का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य विधि–निर्माण करने का है। जापान में एकात्मक संविधान है अत: यहाँ सभी प्रकार के कानून डाइट बनाती है। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी भी सदन में आरम्भ किये जा सकते हैं। यदि किसी साधारण विधेयक को प्रतिनिधि सदन पारित कर दे तो उसे सभासद सदन में भेजा जाता है। सभासद् सदन या तो उसको पारित कर सकता है, या उस पर 60 दिन तक कोई कार्यवाही न करे या उस विधेयक को संशोधित कर दे या रद्द कर दे। दोनों में असहयोग की स्थिति में दोनों सदनों की एक संयुक्त कान्फ्रेन्स समिति स्थापित की जाती है जो विधेयक के विषय में मतभेद को दूर करने की कोशिश करती है। यदि विधेयक पर इस तरह से मतभेद दूर न हो, तो प्रतिनिधि सदन को उक्त विधेयक को दुबारा दो–तिहाई बहुमत से पास करना पड़ता है। उस स्थिति में वह विधेयक दोनों सदनों के द्वारा पारित समझा जायेगा। जिस विधेयक को प्रतिनिधि सदन रद्द कर देता है, उस पर सभासद सदन न तो पुन: विचार कर सकता है और न ही उसे दुबारा आरम्भ कर सकता है।

इस प्रकार डाइट विधायी शक्तियों का एकमात्र प्रयोग करने वाली संस्था है। वह समूचे राष्ट्र के लिए कानून का निर्माण करती है। परन्तु उसकी कानून निर्माण की शक्ति निर्बाध या असीमित नहीं। उस पर संवैधानिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की सीमायें हैं। उस पर जनमत का भी प्रभावशाली नियंत्रण है।

28.3.2 कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ – जापान में संसदीय सरकार की स्थापना की गयी है। मन्त्रिमण्डल को संविधान के अनुच्छेद 66 के अनुसार सामूहिक रूप से डाइट के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। प्रधानमंत्री डाइट के द्वारा चुना जायेगा। अधिकतर मंत्री डाइट से ही लिये जायेंगे। अनुच्छेद 69 में लिखा है कि मन्त्रिमण्डल अपने पद पर तब तक बना रहता है जब तक डाइट का विश्वास उस पर बना रहता है। ज्यों ही यह विश्वास समाप्त हो जाता है मन्त्रिमण्डल को त्याग–पत्र देना पड़ता है। अथवा 10 दिन के अन्दर प्रतिनिधि सदन को भंग कर दिया जाता है।

डाइट के सदस्यों को मंत्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछने और उनके विरुद्ध काम रोको प्रस्ताव तथा निन्दा प्रस्ताव पास करने का अधिकार है। डाइट के सदस्य मंत्रियों के किसी अनैतिक कार्य की जाँच करने के लिए एक जाँच समिति नियुक्त कर सकते है। मन्त्रिमण्डल को अपदस्थ करने की शक्ति केवल प्रतिनिधि सदन को ही प्राप्त है।

28.3.3 वित्तीय शक्तियाँ – डाइट का राष्ट्रीय अर्थ–व्यवस्था पर भी पूर्ण अधिकार होता है। संविधान की धारा 83 उपबन्धित करती है कि ''राष्ट्रीय वित्त को परिचालित करने की शक्ति का प्रयोग उसी प्रकार होगा जिस प्रकार डाइट निश्चित करेगी।'' केबिनेट द्वारा जो बजट पेश किया जाता है, उसे डाइट ही पारित करती है। डाइट को उस बजट की जाँच करने का पूरा अधिकार होता है। सदस्यगण प्रत्येक मद की आलोचना कर सकते है। डाइट के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत हो जाने पर ही सरकार खर्च कर सकती है।

सम्राट् के परिवार की सम्पूर्ण सम्पति वर्तमान संविधान के अन्तर्गत राज्य की सम्पत्ति है। सम्राट् के परिवार के लिए सभी प्रकार के व्यय डाइट ही स्वीकार करती है। इस सम्बन्ध में संविधान की धारा 8 अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जो इस प्रकार है – ''डाइट की स्वीकृति के बिना साम्राज्यीय घराना उपहार में न तो किसी से कोई सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है और न ही उसमें से किसी को कोई सम्पत्ति दे सकता है।'' स्पष्ट है कि सम्राट् और उसके परिवार के सभी व्यय भी डायट के ही अधीन हैं।

28.3.4 वैदेशिक शक्तियाँ – डाइट को देश की विदेश–नीति और वैदेशिक सम्बन्धों पर अधिकार है। प्रधानमंत्री प्रतिवर्ष केबिनेट की ओर से देश के वैदेशिक सम्बन्धों के बारे में संसद् में प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। यद्यपि सन्धि करने का अधिकार केबिनेट को है, तथापि संविधान की धारा 73 (3) के अन्तर्गत केबिनेट के लिए यह आवश्यक है कि वह सन्धि के पहले या उसके पश्चात् उस पर डाइट का अनुमोदन प्राप्त करे। संसद के अनुमोदन के अभाव में कोई सन्धि कार्यान्वित नहीं की जा सकती। केबिनेट सन्धियों के सम्बन्ध में डाइट की उपेक्षा नहीं कर सकता। जापान के संविधान की यह व्यवस्था अमरीका के संविधान से कुछ मिलती है। जहाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अमरीका में सन्धियों पर कांग्रेस के केवल उच्च सदन अर्थात् सीनेट के अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है वहाँ जापान में डाइट अर्थात् उसके दोनों सदनों के अनुमर्थन की आवश्यकता होती है।

28.3.5 न्यायिक शक्तियाँ – डाइट को कतिपय न्यायपालिका सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त है। वह कानून द्वारा संविधान की धाराओं के अन्तर्गत न्यायापालिका का संगठन, न्यायाधीशों द्वारा अन्य कर्मचारियों का वेतन तथा न्यायालयों की कार्यप्रणाली निश्चित् करती है।

अनुच्छेद 64 के अनुसार, 'डाइट अपने सदस्यों में से एक महाभियोग न्यायालय की स्थापना करेगी जो उन न्यायाधीशों के विरूद्ध जाँच करेगा जिनको अलग करने के लिए कार्यवाही आरम्भ की गयी है। यदि कोई न्यायाधीश भ्रष्टाचार फैलाए, अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करे, तो उसके विरूद्ध महाभियोग की कार्यवाही चलायी जा सकती है। न्यायाधीश पर आरोप एक दोषारोपण समिति लगाती है। इसमें दोनों सदनों के बराबर सदस्य लिये जाते हैं। डायट के दोनों सदन अपने में से एक महाभियोग न्यायालय चुनते है जिसकी सदस्य संख्या 14 हैं। इसमें दोनों सदनों से बराबर सदस्य लिये जाते है।'

28.3.6 निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ – प्रधानमंत्री डाइट के सदस्यों में से एक-प्रस्ताव के द्वारा चुना जायेगा। प्रत्येक सदन अपने प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, स्थायी समितियों के अध्यक्षों और संक्रेटरी जनरल का निर्वाचन करता है।

28.3.7 संवैधानिक शक्तियाँ – संविधान के अनुच्छेद 96 के अनुसार संविधान में संशोधन के लिये प्रस्ताव डायट में आरम्भ किये जाते हैं। फिर इसे प्रत्येक सदन की कुल संख्या के दो-तिहाई बहुमत से या अधिक संख्या से पारित किया जाना चाहिए। उसके बाद इस पर जनमत संग्रह होगा।

संवैधानिक संशोधन में दोनों सदनों की शक्तियाँ निश्चित रूप से समान हैं क्योंकि संविधान में संशोधन प्रक्रिया को सामान्य विधि-निर्माण प्रक्रिया से भिन्न माना है। समस्त संशोधन सम्बन्धी प्रस्तावों को दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से पारित होना अनिवार्य है। चूंकि प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की संख्या सभासद सदन से अधिक होती है। अत: संयुक्त बैठक में उसी का बहुमत होता है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जापान की शासन-व्यवस्था में डाइट की बहुत शक्तिशाली तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

28.4 डाइट के दोनों सदनों के सम्बन्ध

डाइट के दोनों सदनों की शक्तियों का क्षेत्राधिकार समान है। इस पर भी दोनों सदनों की शक्तियों और स्थिति में अन्तर है। वस्तुत: अन्य प्रजातान्त्रिक देशों के संविधानों की भाँति जापान का निम्न सदन (प्रतिनिधि सदन) भी शक्तिशाली एवं निर्णायक सदन है। जापान के संविधान की वे धाराएँ जिनमें डाइट की शक्तियों का उल्लेख किया गया है, प्रतिनिधि सदन को श्रेष्ठ और सभासद् को न्यून स्थिति प्रदान करती हैं। डाइट के दोनों सदनों के सम्बन्ध मुख्यत: निम्नलिखित प्रकार से हैं-

28.4.1 साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में – साधारण विधेयक डाइट के किसी सदन में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। परन्तु विधेयक को कानून का रूप धारण करने के लिए दोनों सदनों की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। लेकिन इस क्षेत्र में अन्तत: प्रतिनिधि सदन की शक्ति सभासद् सदन से अधिक है। यदि प्रतिनिधि-सदन द्वारा पारित किसी विधेयक को सभासद्-सदन स्वीकार नहीं करता अथवा उसमें ऐसे संशोधन कर देता है जो प्रतिनिधि सदन को मान्य न हों, तो विधेयक समाप्त नहीं होता प्रत्युत् उसे अकेला प्रतिनिधि सदन ही पास कर सकता है। बशर्ते कि वह उसे पुन: अपने सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पारित कर दे। ऐसे विधेयक पर यदि 60 दिन के अन्दर सभासद्-सदन अपना निर्णय नहीं भेजता तो प्रतिनिधि-सदन विधेयक को उपर्युक्त विधि से अकेले ही पारित कर सकता है।

28.4.2 वित्त विधेयकों के सम्बन्ध में – वित्त-विधेयकों के क्षेत्र में तो सभासद्-सदन की स्थिति और भी कमजोर है। प्रथम तो वित्त विधेयक सभासद्-सदन में आरम्भ ही नहीं किए जा सकते, वे सदैव प्रतिनिधि-सदन में ही आरम्भ किए जाते हैं और यहाँ से पारित होने के बाद ही सभासद्-सदन के समक्ष विचारार्थ आते हैं। इसमें यदि सभासद्-सदन प्रतिनिधि सदन के निर्णय के विरूद्ध कोई निर्णय देता है और दोनों सदनों में कानून द्वारा उपबन्धित की हुई संयुक्त-समिति द्वारा भी कोई समझौता नहीं हो पाता है अथवा यदि सभासद्-सदन 30 दिन की अवधि के अन्दर भी उस वित्त-विधयेक या बजट पर कोई निर्णय नहीं करता है तो प्रतिनिधि-सदन का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्णय ही संसद् (डाइट) का निर्णय माना जाता है। इस तरह वित्त विधेयक में सभासद् सदन अधिक से अधिक 30 दिन की देरी कर सकता है। अत: वित्तीय क्षेत्र में प्रतिनिधि सदन को निश्चयात्मक रूप से प्रधानता दी गई है और द्वितीय सदन को गौण स्थान प्रदान किया गया है।

28.4.3 मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण – मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में भी उच्च सदन की स्थिति निम्न सदन की अपेक्षा अशक्त है। संविधान द्वारा यद्यपि केबिनेट का उत्तरदायित्व डाइट के प्रति रखा गया है, तथापि व्यवहार में केबिनेट प्रतिनिधि सदन के प्रति ही उत्तरदायी है। प्रतिनिधि–सदन को, अविश्वास प्रस्ताव द्वारा केबिनेट को अपदस्थ करने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में यदि केबिनेट स्वयं त्याग पत्र देकर 10 दिन के अन्दर प्रतिनिधि–सदन को भंग करा देती है तो सभासद्–सदन केवल स्थगित हो जाता है, भंग नहीं होता। इस बीच आवश्यकता पड़ने पर केबिनेट सभासद्–सदन का विशेष अधिवेशन बुलाकर कार्य कर सकती है, लेकिन इन कार्यों पर प्रतिनिधि सदन का अधिवेशन आरम्भ होने के 10 दिन के अन्दर उसकी अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

28.4.4 प्रधानमंत्री के निर्वाचन के विषय में – प्रधानमंत्री के निर्वाचन के विषय में भी सभासद्–सदन की स्थिति प्रतिनिधि सदन की अपेक्षा कमजोर है। यदि प्रधानमंत्री के निर्वाचन पर दोनों सदनों में मतैक्य नहीं होता और इन दोनों में संयुक्त–समिति के माध्यम से भी कोई समझौता नहीं हो पाता अथवा प्रतिनिधि–सदन द्वारा किए गए निर्वाचन के बाद 10 दिन के अन्दर सभासद्–सदन कोई निर्णय नहीं देता तो प्रतिनिधि–सदन का निर्णय ही डाइट का निर्णय समझा जाता है। इस प्रकार प्रधानमंत्री के निर्वाचन के विषय में भी उच्च सदन को केवल 10 दिन तक विलम्ब करने का ही अधिकार है।

28.5 सारांश

इस विवेचन से यही प्रकट होता है कि जापान की संसद को व्यापक अधिकार प्राप्त है। यह राज्य–शक्ति का सर्वोच्च अंग है तथा उसकी शक्तियाँ व्यापक एवं विस्तृत हैं। वह शासन के समस्त अवयवों से ऊपर है और सम्पूर्ण राज्य के लिए विधि निर्माण करने का अन्तिम उत्तरदायित्व डाइट का ही है। वह राष्ट्रीय वित्त की नियंत्रक है और केबिनेट उसके प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। वह प्रधानमंत्री का चयन करती है और सन्धियों का अनुसमर्थन करने की शक्ति द्वारा वैदशिक मामलों में अपनी सर्वोच्चता रखती है। लेकिन व्यवहार में उसकी स्थिति भिन्न हो गयी है। इंग्लैण्ड और भारत की भांति हर क्षेत्र में उसे मन्त्रिमण्डल के नेतृत्व में कार्य करना पड़ता है। मन्त्रिमण्डल ही देश का वास्तविक प्रशासक बन गया है, क्योंकि यह बहुमत दल का प्रतिनिधित्व करता है।

यह सच है कि डाइट की शक्तियों का ह्रास हुआ है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वह अप्रभावी और व्यर्थ की संस्था हो गयी है। वस्तुत: डाइट वह राष्ट्रीय प्लेटफार्म है जहाँ राष्ट्रीय मुद्दों पर विचार–विमर्श होता है, सरकार की त्रुटियों पर प्रकाश डाला जाता है और लोकमत को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। अत: इसकी शक्तियाँ पर्याप्त रूप से विस्तृत व्यापक तथा प्रभावी है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जापान की राष्ट्रीय संसद् (डाइट) के कार्यों तथा शक्तियों का वर्णन कीजिए।
2. जापान की प्रतिनिधि सभा और सभासद सदन के आपसी सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रतिनिधि सभा की रचना तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. प्रतिनिधि सभा के स्पीकर की शक्तियों का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. डाइट के दोनों सदनों के नाम लिखिए।
2. जापान के प्रतिनिधि सदन की रचना कैसे होती है ?
3. जापान के सभासद सदन की रचना कैसे होती है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-29
नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य

संरचना

29.0 उद्देश्य

29.1 प्रस्तावना

29.2 जापान में नागरिकों के अधिकार

29.2.1 वैयक्तिक अधिकार

29.2.2 समानता का अधिकार

29.2.3 राजनीतिक अधिकार

29.2.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार

29.2.5 धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

29.2.6 विचार-अभिव्यक्ति तथा जीवन एवं स्वाधीनता का अधिकार

29.2.7 शिक्षा का अधिकार

29.2.8 सामाजिक सुरक्षा एवं कार्य का अधिकार

29.2.9 सम्पत्ति का अधिकार

29.3 नागरिकों के कर्त्तव्य

29.4 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

29.0 उद्देश्य

इस पाठ के अन्तर्गत जापान में नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं कर्त्तव्यों को उल्लेख किया गया है। इस पाठ को पढ़कर के आप -

- जापान के संविधान में उल्लिखित नागरिकों के मौलिक अधिकारों को समझ सकेंगे,
- नागरिकों के कर्त्तव्यों की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- जापान के संविधान में अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की समीक्षा कर सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

जापान के संविधान के इकाई 111 के 31 अनुच्छेदों में (अनुच्छेद 10 से 40 तक) नागरिक अधिकारों और कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को जीवन स्वतन्त्रता, समानता, शिक्षा रोजगार आदि के विभिन्न मूलाधिकारों की व्यवस्था की गई है। यद्यपि 1889 ई. के संविधान में भी मौलिक अधिकारों का प्रावधान था, तथापि उसमें ये अत्यन्त सुक्ष्म, अपूर्ण एवं प्रभावहीन थें। उन्हें सम्राट् अपनी असीम कानूनी शक्तियों का प्रयोग करके स्थगित कर सकता था, लेकिन नये संविधान में नागरिकों को जो अधिकार प्रदान किये गये हैं, वे शाश्वत और अनुल्लंघनीय है। न्यायपालिका द्वारा भी उनकी रक्षा की समुचित व्यवस्था की गई है। जॉन मेकी ने अपनी कृति 'गवर्न्मेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन जापान' में लिखा है कि ''प्रशंसनीय बात यह है कि जब से संविधान लागू हुआ

है तब से अब तक कार्यपालिका, विधायिका अथवा न्यायपालिका द्वारा संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी एक का भी अपहरण नहीं किया गया है।'' ये नागरिक अधिकार ही जापान को लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

29.2 जापान में नागरिकों के अधिकार

जापान के संविधान में संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत और फ्रांस के संविधानों की भांति नागरिकों को व्यापक राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। इन अधिकारों की झलक संविधान की प्रस्तावना में भी मिलती है। जिसमें सभी लोगों के शान्ति से रहने, भय और आवश्यकताओं से मुक्ति के अधिकार को मान्यता दी गई है। ये अधिकार जापानी संविधान को विशिष्टता प्रदान करते हैं– जापान के संविधान में नागरिकों के निम्नलिखित अधिकारों का समावेश किया गया है :

29.2.1 वैयक्तिक अधिकार – अनुच्छेद 13 में कहा गया है कि ''जनता के प्रत्येक सदस्य का व्यक्ति के रूप में आदर किया जायेगा। व्यवस्थापिका तथा अन्य शासन सम्बन्धी कार्यों में जीवन, स्वतन्त्रता तथा शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, जहाँ तक सार्वजनिक कल्याण में बाधक न हो, मुख्य विचार का विषय होगा।'' यह अनुच्छेद व्यक्ति को व्यक्तिगत सम्मान का आश्वासन देता है और उसे जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की खोज का उस सीमा तक अधिकार देता है जिस सीमा तक उसके ये अधिकार सार्वजनिक कल्याण में बाधा प्रस्तुत नहीं करते हैं।

29.2.2 समानता का अधिकार – संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा कानून के समक्ष समानता स्थापित की गई है। रंग, जाति, लिंग, पारिवारिक विशेषता अथवा सामाजिक स्तर के आधार पर राजनीतिक, आर्थिक तथा सार्वजनिक जीवन में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य द्वारा लार्ड की उपाधियों को मान्यता देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। साथ ही यह भी व्यवस्था की है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई सम्मानीय उपाधि अथवा अन्य किसी प्रकार का आदर-चिह्न प्राप्त हो तो वह उसके आधार पर वैधानिक रूप से किसी विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकेगा और इस प्रकार की सम्माननीय उपाधियाँ केवल उसी व्यक्ति तक सीमित रहेगी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी को प्राप्त नहीं होगी, जैसा कि ब्रिटेन में है।

अनुच्छेद 24 के अनुसार वैवाहिक स्वतन्त्रता तथा पति-पत्नी के समान अधिकार पर जोर देते हुये कहा गया है कि ''विचार दोनों लिंगों की सहमति पर आधारित होंगे तथा उनको पारस्परिक सहयोग एवं पति-पत्नि के समान अधिकारों के मूल आधार पर स्थिर रखा जायेगा। उत्तराधिकार, सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार, अधिवास का चयन, विवाह सम्बन्ध विच्छेद तथा परिवार एवं विवाह सम्बन्धी अन्य विषयों पर कानून व्यक्ति की गरिमा और दोनों लिंगों की अनिवार्य समानता के सिद्धान्त पर निर्मित होंगे।''

29.2.3 राजनीतिक अधिकार – संविधान के अनुच्छेद 15 द्वारा सार्वजनिक अधिकारियों के निर्वाचन के सम्बन्ध में जापानी प्रजाजनों को सार्वभौम वयस्क मताधिकार प्रदान किया गया है। इन निर्वाचनों में गुप्त मतदान की व्यवस्था की गई है, क्योंकि इनके अभाव में व्यक्तियों को अपने अन्त:करण के अनुसार मत देने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो पाती। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी हानि की पूर्ति करवाने, सार्वजनिक अधिकारियों को हटवाने, कानूनों को बनवाने, अध्यादेशों या नियमों में कोई परिवर्तन करवाने हेतु याचिका भेजने का अधिकार है। नागरिकों को राजनीतिक गतिविधियों के संचालन करने की स्वतंत्रता है।

29.2.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार – अनुच्छेद 18 के अनुसार नागरिकों से उनकी इच्छा के विरूद्ध बलपूर्वक लिया हुआ श्रम अपराध माना गया है, जो विधि के अनुसार दण्डित होगा। दास प्रथा को समाप्त कर दिया गया है तथा अनुच्छेद 27 द्वारा बच्चों के शोषण पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। दूसरे शब्दों में, बेगारी की प्रथा का निषेध कर दिया गया है।

29.2.5 धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार – संविधान की 19वीं धारा में विचार, अन्त:करण और धर्म की स्वतन्त्रताओं की गारण्टी की गई है। धारा 20 में उल्लिखित है कि किसी भी धार्मिक संगठन को कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होंगे और न वह किसी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करेगा। किसी धार्मिक कृत्य, पर्व, रिवाज में भाग लेने के लिए किसी भी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जाएगा। राज्य और उसका प्रत्येक विभाग धार्मिक शिक्षा एवं प्रत्येक प्रकार के धार्मिक कृत्यों से अलग रहेगा। ये अधिकार जापान को धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

29.2.6 विचार अभिव्यक्ति तथा जीवन एवं स्वाधीनता का अधिकार – अनुच्छेद 21 के अनुसार नागरिकों को समुदाय बनाने, भाषण देने और प्रेस को सरकार की आलोचना करने का अधिकार दिया गया है। संचार के साधनों द्वारा व्यक्तिगत गोपनीयता को नष्ट नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 22 ''प्रत्येक व्यक्ति को अपने निवास और व्यवसाय के चयन की स्वतन्त्रता प्रदान करता है।'' प्रत्येक व्यक्ति देश में कहीं भी भ्रमण कर सकता है, सुविधानुसार कहीं भी निवास स्थान बना सकता है और इच्छानुसार किसी भी व्यवसाय को अपना सकता है।

जापान के संविधान की धारा 31 यह उपबन्धित करती है कि ''किसी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य प्रकार से जीवन या स्वाधीनता से वंचित नहीं किया जाएगा। इस धारा से स्पष्ट है कि जापान में अवैध बन्दीकरण नहीं हो सकता। किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही दण्डित किया जा सकता है। अनुच्छेद 37 के अनुसार सभी फौजदारी मुकदमों में अभियुक्त को किसी निष्पक्ष न्यायालय से शीघ्र तथा सार्वजनिक जाँच कराने का अधिकार है। अभियुक्त को गवाहों से जिरह करने तथा वकील की सहायता पाने का अधिकार है। अनुच्छेद 38 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को अपने ही विरूद्ध गवाही देने के लिए विवश नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 39 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए दो बार दण्डित नहीं किया जा सकेगा।

29.2.7 शिक्षा का अधिकार – जापान का संविधान सभी व्यक्तियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार ही नहीं देता बल्कि सामान्य शिक्षा को अनिवार्य और नि:शुल्क भी बनाता है। अनुच्छेद 23 में शैक्षिक स्वतन्त्रता की गारण्टी दी गई है। अनुच्छेद 26 के अनुसार ''सभी व्यक्तियों को अपनी योग्यतानुसार, जैसाकि कानून द्वारा व्यवस्था की गयी है, समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। लड़कों और लड़कियों को कानून द्वारा निर्धारित की गई साधारण शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य होगा और ऐसी अनिवार्य शिक्षा नि:शुल्क होगी।

29.2.8 सामाजिक सुरक्षा तथा कार्य का अधिकार – संविधान व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा का आश्वासन देता है। संविधान राज्य से अपेक्षा करता है कि वह प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्तियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए हर सम्भव प्रयास करेगा। अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि ''सभी व्यक्तियों को स्वस्थ और सभ्य जीवन के न्यूनतम जीवन स्तर पर जीवन–यापन करने का अधिकार होगा। जीवन के सभी क्षेत्रों में राज्य समाज–कल्याण और सुरक्षा एवं स्वास्थ्य की वृद्धि और विस्तार के लिए अपने प्रयत्नों का प्रयास करेगा।'' धारा 27 में सभी व्यक्तियों को रोजगार का अधिकार प्रदान किया गया है।

29.2.9 सम्पत्ति का अधिकार – जापान का संविधान व्यक्ति को सार्वजनिक कल्याण के अनुरूप, कानून की परिभाषा के अन्तर्गत, सम्पत्ति का अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 29 के अनुसार, ''सम्पत्ति को धारण या रखने के अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। सम्पत्ति के अधिकार को, सार्वजनिक कल्याण के अनुरूप, कानून द्वारा परिभाषित किया जायेगा। निजी सम्पत्ति को उचित मुआवजा देकर सार्वजनिक उपयोग के लिए प्राप्त किया जा सकता है।'' इस तरह संविधान सभी व्यक्तियों को सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्यय करने का अधिकार देता है। सभी व्यक्ति सम्पत्ति के स्वामित्व और उससे उत्पन्न होने वाले लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

इस अधिकार को उस समय तक न्यायोचित ठहराया जाता है जब तक वह एक व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है। और दूसरे व्यक्ति के समान विकास में बाधक सिद्ध न होता हो। अत: इस दृष्टि से सम्पत्ति का अधिकार कभी भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

29.3 नागरिकों के कर्त्तव्य

जापान के संविधान में अधिकारों के साथ–साथ नागरिकों के कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है। वस्तुत: अधिकारों का महत्त्व कर्त्तव्यों की व्यवस्था में ही है। संविधान में निम्नलिखित कर्त्तव्यों का उल्लेख है :

(1) अधिकारों की रक्षा करना नागरिक का स्वयं का कर्त्तव्य है। यह नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करें और उनका उपयोग सर्वदा सार्वजनिक कल्याण के लिए करें। अनुच्छेद 12 के अनुसाार, ''संविधान द्वारा जनता को प्रत्याभूत की गयी स्वतन्त्रता और अधिकारों की सुरक्षा जनता के निरन्तर प्रयास द्वारा की जायेगी। वह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उन स्वतन्त्रताओं और अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करेगी। वह उनका उपयोग सदैव सार्वजनिक कल्याण हेतु करने के लिए उत्तरदायी होगी।''

(2) अनुच्छेद 26 के अनुसार सभी व्यक्तियों के लिए अपने लड़के-लड़कियों को सामान्य शिक्षा दिलाना अनिवार्य है।

(3) अनुच्छेद 27 के अनुसार कार्य को प्राप्त करना सभी व्यक्तियों का अधिकार ही नहीं, बल्कि कार्य को करना सभी व्यक्तियों का कर्त्तव्य भी है।

(4) अनुच्छेद 30 के अनुसार विधि के अन्तर्गत कर देना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

29.4 सारांश

जापान के वर्तमान संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को उच्च स्थान प्रदान किया गया है और पूँजीवादी तथा साम्यवादी दोनों प्रकार के संविधानों में पाए जाने वाले नागरिक अधिकारों को अंगीकृत किया गया है। सम्भवत: इसके पीछे मूल उद्देश्य जापान में लोकतान्त्रिक भावनाओं का विकास करना और नागरिकों में राजनीतिक चेतना जागृत करना हैं, तथा उनकी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखना है। नागरिक अधिकार तथा कर्त्तव्यों में अन्योन्यामय सम्बन्ध है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जापान के नागरिकों के अधिकारों और कर्त्तव्यों की समीक्षा कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जापान के संविधान में वर्णित नागरिकों के कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जापान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों के लक्षण बतलाइये।
2. जापान के संविधान में किन कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है ?
3. जापान के संविधान में समानता के अधिकार से क्या तात्पर्य है ?
4. जापान के संविधान में सम्पत्ति के अधिकार से क्या तात्पर्य है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई 30
जनवादी चीन के संविधान की विशेषताएँ

संरचना

30.0 उद्देश्य

30.1 प्रस्तावना

30.2 चीनी संविधान के अध्ययन का महत्त्व

30.2.1 विश्व की महान शक्ति

30.2.2 चीन: साम्यवादी व्यवस्था का प्रतीक देश

30.2.3 एक महान राजनीतिक प्रयोग

30.2.4 चीन: साम्यवादी क्रान्ति का विशेष स्वरूप

30.2.5 विचित्र राजनीतिक संस्थाएं

30.3 जनवादी चीन के राजनीतिक इतिहास की पृष्ठभूमि

30.4 चीन का संवैधानिक विकास

30.5 चीन के नये संविधान का वैचारिक आधार

30.5.1 मार्क्सवाद

30.5.2 लेनिनवाद

30.5.3 माओवाद

30.6 चीनी संविधान की विशेषताएँ

30.6.1 संक्षिप्त संविधान

30.6.2 लिखित तथा निर्मित

30.6.3 संविधान की सर्वोच्चता

30.6.4 जनवादी लोकतान्त्रिक तानाशाही

30.6.5 जनवादी गणतन्त्र

30.6.6 बहुराष्ट्रीय राज्य

30.6.7 लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद

30.6.8 एकात्मक शासन प्रणाली तथा प्रादेशिक इकाइयाँ

30.6.9 नागरिकों के मूलभूत अधिकार तथा कर्त्तव्य

30.6.10 समाजवादी अर्थव्यवस्था

30.6.11 एक दलीय प्रणाली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

30.6.12 केन्द्रीय सैनिक आयोग

30.6.13 एक सदनीय व्यवस्थापिका

30.6.14 न्यायालय की न्यून स्थिति

30.6.15 विदेश नीति के सिद्धान्तों का उल्लेख

30.7 सारांश

30.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में जनवादी चीनी संविधान के संवैधानिक विकास का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- जनवादी चीन के राजनीतिक इतिहास की पृष्ठभूमि समझ सकेंगे,
- चीन के संविधान के अध्ययन का महत्त्व समझ सकेंगे,
- 1982 के चीनी संविधान की विशेषताएँ जान पायेंगे,
- संविधान की आधुनिक प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।

30.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व–युद्ध से पूर्व चीन को 'एशिया का रोगी' कहा जाता था। ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका और जापान जैसी शक्तियों ने उसका पर्याप्त राजनीतिक और आर्थिक शोषण किया। वे उसे 'पूरब का तरबूज' समझते थे। किन्तु साम्यवादी क्रान्ति (1949) के बाद विश्व राजनीति में एक महाशक्ति के रूप में चीन का उदय हुआ। आज परमाणु भौतिकी के क्षेत्र में चीन पश्चिमी देशों के साथ बराबरी पर है। चीन की बढ़ती हुई शक्ति के परिप्रेक्ष्य में जॉन हे ने वर्षों पूर्व कहा था कि ''विश्व की शान्ति चीन पर निर्भर करती है और जो कोई चीन को समझ सकेगा उसी के हाथ में आगामी पाँच शताब्दियों तक विश्व राजनीति की कुंजी होगी।'' 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में चीन के सम्बन्ध में एक चेतावनी देते हुए नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा था, ''वह एक दैत्य सो रहा है। उसको सोने दो, क्योंकि जब वह उठेगा तो दुनिया को हिला देगा।'' साम्यवादी क्रान्ति के बाद चीन की भूमिका ने उपरोक्त कथन को सत्य कर दिखाया है। आज चीन एशिया की महाशक्ति है तथा अन्तरराष्ट्रीय जगत की एक महत्त्वपूर्ण धुरी है। माओं का चीन अन्तरराष्ट्रीय जगत से अलग–थलग था जबकि देंग का चीन अन्तर्राष्ट्रीय मंच का सक्रिय खिलाड़ी बना। आज चीन में आर्थिक विकास की दर सर्वोच्च शिखर पर है, और वहाँ भारी मात्रा में विदेशी पूँजी निवेश हो रहा है।

30.2 चीनी संविधान के अध्ययन का महत्त्व

फ्रीडमैन के शब्दों में, ''साम्यवादी नेतृत्व में एक एकीकृत राष्ट्रीय शक्ति के रूप में चीन का अभ्युदय अर्वाचीन युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है।'' यह एक ऐसी घटना है जिसने सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य में डाल दिया है। पिछले 48 वर्षों में चीन ने अनुकरणीय प्रगति की है। वह आज विश्व की एक महाशक्ति बन गया है। जनसंख्या विस्फोट के परिणामों से चिन्तित होने के बावजूद चीन ने तेजी से प्रगति की है। और वहां केवल 11 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं।

जनवादी चीन का 1982 ई. का संविधान एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। यह चीन की प्रगति और विकास का परिचायक है। देंग क्सिओपिंग के नेतृत्व में माओत्से तुंग के चीन को एक दम बदल दिया गया। लेकिन इस बदलाव में टूटन नहीं विकास की निरन्तरता है। आज का चीन मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओ व देंगवाद का चीन है। देंग की परिवर्तन रणनीति के दो आधारभूत सिद्धान्त हैं– पहला है समाजवादी मार्ग को छोड़ना नहीं तथा दूसरा है चीनी अर्थव्यवस्था में निरन्तर सुधार करते जाना। देंग की रणनीति का यह एक अजीब पहलू था जिसमें राजनीतिक व्यवस्था साम्यवादी है तथा आर्थिक व्यवस्था में समयानुकूल परिवर्तन कर लिए गए। 1982

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का जनवादी चीन का संविधान नई आर्थिक नीति के बाद नये चीन की महत्त्वाकांक्षाओं को प्रस्तुत करने वाला चार्टर है। यह 1966-76 की सांस्कृतिक क्रान्ति की त्रुटियों को दूर करके देश को स्थिरता और आधुनिकीकरण की ओर ले जाना चाहता है और नागरिकों को व्यापक स्वतन्त्रतायें और अधिकार प्रदान करना चाहता है। संविधान संशोधन समिति के उपाध्यक्ष पेंग जेन (Peng zhen) ने नेशनल पीपुल्स कांग्रेस के समक्ष अपनी रिपोर्ट को प्रस्तुत करते हुए कहा था कि ''संविधान में चीन के समाजवादी विकास के ऐतिहासिक अनुभवों को संकलित किया गया है, इसमें देश की सभी राष्ट्रीयताओं की सामान्य इच्छा और मूलभूत हितों को अभिव्यक्त किया गया है, यह चीन की परिस्थितियों के अनुरूप है और समाजवादी आधुनिकीकरण की आवश्यकताओं को पूरा करता है।''

वर्तमान में चीन के संविधान के अध्ययन को बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है इसके पीछे निम्नलिखित कारणों का योगदान रहा है –

30.2.1 विश्व की महान शक्ति – 1 अरब 14 करोड़ की विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या वाला यह राज्य अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में महाशक्ति है। विश्व राजनीति पर उसका निश्चित प्रभाव है। एशिया के देशों की राजनीति पर उसका गहरा प्रभाव देखा जा सकता है, चीन ने आर्थिक क्षेत्र में भी तेजी से प्रगति की है। इसके अतिरिक्त चीन एशिया का एकमात्र देश है, जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता प्राप्त है। ऐसे शक्तिशाली राष्ट्र की शासन प्रणाली का अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

30.2.2 चीनःसाम्यवादी व्यवस्था का प्रतीक देश – 1990 ई. तक सोवियत संघ, पूर्वी यूरोप के राज्यों, चीन और कुछ अन्य राज्यों, इस प्रकार विश्व के अनेक देशों में साम्यवादी व्यवस्था स्थापित थी। लेकिन 1991 ई. में सोवियत संघ के विभिन्न गणराज्यों और पूर्वी यूरोप के राज्यों में इस व्यवस्था का पतन हो गया है। यद्यपि वर्तमान समय में चीन के अतिरिक्त भी कुछ अन्य देशों में साम्यवादी व्यवस्था है, लेकिन आज साम्यवादी व्यवस्था वाला सबसे प्रमुख देश या साम्यवाद का प्रतीक देश तो चीन ही है।

30.2.3 एक महान राजनीतिक प्रयोग – 1982 का संविधान एक महान राजनीतिक प्रयोग है। इसके माध्यम से यह परीक्षण हो रहा है कि मार्क्सवाद और उदारवाद के तत्त्वों का मिश्रण करके, नई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण हो। इस संविधान के द्वारा मार्क्स, लेनिन एवं माओ के विचारों को आधुनिक विश्व की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का संकेत मिलता है।

30.2.4 चीनः साम्यवादी क्रान्ति का विशेष स्वरूप – चीन की संवैधानिक पद्धति को महत्त्वपूर्ण बनाने वाला एक तत्त्व यह है कि अक्टूबर 1949 ई. की चीन की साम्यवादी क्रान्ति विशेष प्रकार की रही है। सिद्धान्त और पद्धति दोनों ही दृष्टि से चीन की क्रान्ति 1917 ई. की सोवियत रूस की क्रान्ति से भिन्न है। रूसी क्रान्ति के विपरीत यह एक कृषक क्रान्ति थी, जिसका उदय औद्योगिक क्षेत्रों के स्थान पर ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ। इस प्रकार यह चीन की विशेष परिस्थितियों से उत्पन्न चीनी क्रान्ति थी, बाहर से निर्यात की गई क्रान्ति नहीं। चीन की क्रान्ति की सफलता ने माओत्से तुंग को वर्तमान युग में मार्क्सवादी लेनिनवादी दर्शन का सबसे बड़ा चिन्तन तथा व्याख्याकार बना दिया है।

30.2.5 विचित्र राजनीति संस्थाएँ – नये संविधान में राज्य परिषद्, केन्द्रीय सैनिक आयोग जैसी निराली संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। इस तरह की राजनीतिक संस्थाओं का विश्व के अन्य देशों में अस्तित्व नहीं पाया जाता है। इन विशिष्ट राजनीतिक संस्थाओं के कारण इस संविधान के अध्ययन के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ा है।

30.3 जनवादी चीन के राजनीतिक इतिहास की पृष्ठभूमि

चीन का राजनीतिक इतिहास बहुत प्राचीन है। 201 ई. पू. में चीन राजवंश ने चाओ सम्राट् तथा अन्य सामंतों को पराजित कर चीन में सुसंगठित साम्राज्य की नींव डाली। इस वंश के सम्राट् को 'चिन शिह हुआंग' की उपाधि से विभूषित किया गया। 118 ई. पू. में चिन शिह हुआंग के निधन के बाद शासन की बागडोर हान वंश ने संभाली, इसके बाद तांग वंश ने 960 ई. तक शासन किया, इसके बाद सुंग वंश ने और सुंग वंश के उपरांत 1644 तक मिंग वंश का चीन में शासन रहा। 16 वीं शताब्दी में चीन पर मंगोलों का आक्रमण हुआ जिसका लाभ उठाकर 1644 में मांचू वंश ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया।

19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में चीन एक समृद्ध देश था किन्तु राजनीतिक दृष्टि से सुदृढ़ नहीं था। अत: यूरोपीय जातियों ने चीन में अपना व्यापार प्रारम्भ कर दिया। ब्रिटेन चीन का प्रमुख विदेशी ग्राहक बन गया। चीन की चाय, रेशमी, कपड़ों तथा मिट्टी के बर्तनों की यूरोप में बहुत मांग थी, जबकि चीन किसी भी यूरोपीय वस्तु को खरीदने में उत्सुक नहीं था। अत: यूरोपीय व्यापारियों को चांदी और सोने में भुगतान करना पड़ता था। 18 वीं शताब्दी में ब्रिटेन ने भुगतान की समस्या का हल ढूँढ निकाला । उसने भारत से अफीम लेकर चीन में बेचना शुरू कर दिया। अफीम के दुष्प्रभाव को रोकने के लिए चीनी सरकार ने ब्रिटिश जहाजों की तलाशी लेनी शुरू कर दी। फलस्वरूप, चीन तथा ब्रिटेन में युद्ध छिड़ गया जो 'अफीम युद्ध' (1841) के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में चीन की पराजय हुई और चीन को ब्रिटेन की अनेक शर्तें माननी पड़ी। 1894-95 ई. में चीन का जापान से कोरिया के प्रश्न पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में चीन की हार हुई और कोरिया को एक स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया। 1892 ई. में साम्राज्यवादी शक्तियों ने चीन को औपनिवेशिक प्रभाव क्षेत्रों में बांट लिया। प्रत्येक साम्राज्यवादी देश को अपने प्रभाव क्षेत्र में पूँजी निवेश और संचार के विकास का लगभग एकाधिकार प्राप्त हो गया।

1911 में डॉ. सनयात सेन के नेतृत्व में क्रान्ति हुई, मांचू वंश के शासन का अंत हुआ और चीन को एक गणराज्य घोषित किया गया। डॉ. सनयात सेन और उनके अनुयायियों ने अपने आपको कोमिन्तांग पार्टी के रूप में संगठित किया, जो एक राष्ट्रीय दल था। 1925 ई. में सनयात सेन के निधन के पश्चात् च्यांग काई शेक कोमितांग पार्टी के नेता बने। 1928 ई. में च्यांग के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। इन्हीं दिनों साम्यवादी दल भी चीन में कार्य करने लग गया था। 1935 ई. में माओत्से तुंग ने चीनी साम्यवादी दल पर पूर्ण वर्चस्व स्थापित कर लिया। उन्होंने कोमिन्तांग की शक्ति का मुकाबला करने के लिए खुले युद्ध के स्थान पर 'गुरिल्ला युद्ध पद्धति' अपनाने, और कृषकों को चीन की प्रमुख क्रान्तिकारी शक्ति बनाने पर बल दिया। माओ ने सशस्त्र संघर्ष और संयुक्त मोर्चे की दुतरफा नीति अपनायी और 1937-45 ई. के वर्षों में साम्यवादी क्रान्ति के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर ली।

1945 ई. में जब द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ, तब चीन वैधानिक रूप से च्यांग काई शेक और उनके कोमिन्तांग दल के नियन्त्रण में था लेकिन देश की यथार्थ शक्ति साम्यवादियों के हाथों में आ गई थी। कोमिन्तांग शासन में एकता का अभाव था और बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के कारण यह जनसमर्थन खोता जा रहा था। 1949 ई. में कोमिन्तांग शासन का पतन हो गया, च्यांग ने चीन की मुख्य भूमि छोड़कर फारमोसा टापू में शरण ली। साम्यवादी दल ने सत्ता पर अधिकार कर लिया। और 1 अक्टूबर, 1949 को माओ के नेतृत्व में चीन के जनवादी गणराज्य की स्थापना की घोषणा की गई।

30.4 चीन का संवैधानिक विकास

1949 से 1954 ई. तक जनवादी चीन का कोई औपचारिक संविधान नहीं था, अपितु देश पर राजनीतिक परामर्शदाता सम्मेलन द्वारा शासन किया जाता था और राज्य तथा प्रशासनिक ढाँचे के मूल उद्देश्य सामान्य कार्यक्रम तथा मूल विधि के आधार पर निश्चित किये गये। ये दोनों प्रलेख ही संयुक्त रूप से चीन के अस्थायी संविधान के रूप में थे। विशेष बात यह थी कि राजनीतिक परामर्शदाता सम्मेलन में साम्यवादी दल के अतिरिक्त 7 अन्य राजनीतिक दलों और अल्पसंख्यक जातियों को भी प्रतिनिधित्व दिया गया था, किन्तु वास्तविक शक्ति साम्यवादी दल और इसके नेता माओत्से तुंग में ही निहित थी।

(1) 1954 ई. का संविधान - 1949 ई. की साम्यवादी क्रान्ति के बाद से अब तक जनवादी चीन में चार संविधानों को अपनाया जा चुका है। इनमें प्रथम 1954 का संविधान है जो 4 नवम्बर 1954 से 16 जनवरी 1975 तक लागू रहा। इस संविधान के द्वारा चीन में एक जनवादी गणतन्त्र की स्थापना की गई, जिसका आधार 'जनवादी जनतांत्रिक अधिनायकवाद' था। यह संविधान गणराज्य की स्थापना से समाजवाद की स्थापना तक के काल के लिए अर्थात् एक संक्रमण कालीन संविधान था। लोकतांत्रिक केन्द्रवाद इस संविधान द्वारा स्थापित समस्त व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु था।

(2) 1975 ई. का संविधान - 1954 ई. का संविधान एक संक्रमणकालीन व्यवस्था मात्र था, अत: चीन की चौथी जन कांग्रेस द्वारा 17 जनवरी, 1975 ई. से नवीन संविधान अपनाया गया। मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद को इस संविधान का दार्शनिक-वैचारिक आधार घोषित किया गया। यह लिखित और अत्यधिक संक्षिप्त (4 अध्यायों में बंटे हुए 30 अनुच्छेद) का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संविधान था। इस संविधान में कहा गया था कि, चीन का जनवादी गणराज्य सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का समाजवादी राज्य है। संविधान के प्रथम अनुच्छेद में ही चीनी गणराज्य में साम्यवादी दल की नेतृत्वकारी भूमिका का उल्लेख किया गया था।

(3) 1978 ई. का संविधान – 5 मार्च 1978 ई. को चीन की पांचवी कांग्रेस द्वारा नया संविधान स्वीकृत कर, उसे लागू किया गया 1978 ई. के संविधान में भी केवल 60 अनुच्छेद थे। इस प्रकार यह भी एक संक्षिप्त संविधान ही था। संविधान द्वारा चीन में जनवादी गणतन्त्र की स्थापना करते हुए समस्त सत्ता जनता में निहित की गई। संविधान के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया था कि, ''जनवादी चीन सर्वहारा वर्ग की तानाशाही वाला एक समाजवादी राज्य है जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथों में है और श्रमिकों तथा कृषकों के बीच अटूट मैत्री के सम्बन्ध विद्यमान है।'' संविधान के अनुच्छेद 2 के अन्तर्गत शासन के समस्त अंगों तथा जीवन समस्त क्षेत्रों पर साम्यवादी दल का एकाधिपत्य स्वीकार किया गया।

30.5 चीन के नये संविधान का वैचारिक आधार

जनवादी चीन एक ऐसा देश है जिसकी समस्त व्यवस्था मार्क्सवादी –लेनिनवादी तथा माओवादी विचारधारा पर आधारित है। मार्क्सवादी–लेनिनवाद का चीन की तत्कालीन परिस्थितियों में अध्ययन–क्रियान्वयन ही माओवाद है। इस प्रकार चीन के वर्तमान संविधान का वैचारिक आधार मार्क्सवाद, लेनिनवाद और माओवाद है।

30.5.1 मार्क्सवाद – कार्लमार्क्स को 'वैज्ञानिक समाजवाद' का जनक कहा जाता है। मार्क्स ने विश्व को वह दर्शन दिया जो 'साम्यवाद' का आधार बना। मार्क्सवाद कार्यपद्धति का पथ–प्रदर्शक है जिसके द्वारा एक नवीन श्रमजीवी समाज का सृजन होता है। मार्क्स का अमर ग्रंथ 'कैपीटल' तथा 'कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो' समस्त समाजवादी विचारों के आधार माने जाते हैं। मार्क्स ने एक वैज्ञानिक की तरह ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण किया और सामाजिक प्रगति के लिए उत्तरदायी तत्त्वों को खोज निकाला। उसने पूंजीवाद के दोषों का वर्णन करने के साथ–साथ पूँजीवाद का अन्त कर वर्ग विहीन समाज की स्थापना करने के लिए एक विधिवत् प्रक्रिया का निरूपण भी किया। हीगल द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के द्वारा मार्क्स इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वर्तमान राज्य में पूँजीवाद एवं सर्वहारा वर्ग के बीच जो संघर्ष होगा उससे पूँजीवाद समाप्त होकर साम्यवाद की स्थापना होगी। मार्क्स के अनुसार इतिहास के प्रत्येक युग में उत्पादन शक्तियों से आर्थिक सम्बन्ध उत्पन्न होते है और ये सामाजिक एवं राजनीतिक समबन्धों का निर्धारण करते है। इन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप प्रत्येक युग में मनुष्य समाज दो वर्गों में बंटा रहा है। जिनके हित आपस में टकराते हैं। इनमें एक शोषक वर्ग एवं दूसरा शेषित वर्ग है। मार्क्स की मान्यता है कि वर्तमान वर्ग संघर्ष का अन्त वर्ग विहीन समाज में होगा। इस वर्ग–संघर्ष का नेतृत्व, जो अन्ततोगत्वा साम्यवाद की स्थापना में परिणत होगा, सर्वहारा वर्ग ही रहेगा। इस प्रकार उसके अनुसार साम्यवाद की स्थापना के लिए क्रान्ति का प्रथम कदम सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व ही है। मार्क्स की मान्यता है कि सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व में शोषक वर्ग का अन्त होकर वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी। वर्ग विहीन समाज में राज्य की आवश्यकता नहीं रहेगी और राज्य समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार मार्क्स के अनुसार, वर्ग विहीन एवं राज्यविहीन समाज की स्थापना होगी।

30.5.2 लेनिनवाद – रूसी नेता लेनिन ने रूस की विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखकर मार्क्स की विचारधारा की जिस रूप में व्याख्या की और उसे जिस रूप में अपनाया, वही लेनिनवाद है। व्यवहार में, लेनिन ही साम्यवाद का प्रणेता है। रूस में साम्यवाद की स्थापना का प्रारम्भ लेनिन के ही अथक प्रयत्नों का ही परिणाम है। लेनिन का उद्देश्य मार्क्स की शिक्षाओं का पुनरूत्थान करना था। उसने इसे दो प्रकार से किया –एक तो उसने मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त की नवीन परिस्थितियों में व्याख्या की और दूसरा उसने यह प्रतिपादित किया कि समाजवाद की स्थापना क्रान्तिकारी साधनों से ही हो सकती है। उसने मार्क्सवाद को क्रान्ति के दर्शन में परिवर्तित कर दिया क्योंकि वह स्वयं एक महान क्रान्तिकारी था। लेनिन ने अपनी पुस्तक 'द स्टेट एण्ड रिवोल्यूशन' में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की विस्तृत व्याख्या की। लेनिन ने अपने श्रमिक अधिनायकत्व के सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया कि उसके अन्तर्गत श्रमिकों एवं अन्य शोषित वर्गों के बीच मित्रता होनी चाहिए लेकिन नेतृत्व श्रमिकों के ही हाथों में रहना चाहिए। लेनिन के विचार में पार्टी समस्त श्रमिक आन्दोलनों के बीच में रहती है, वह पथ–प्रदर्शन तथा नेतृत्व करती है जिसको ऐसे आन्दोलनों की आवश्यकता होती है। लेकिन वह मजदूरों के समूह से सदैव विशिष्ट होती है। लेनिन के विचार से विभिन्न देशों के साम्यवादी दलों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के संगठन के लिए यह आवश्यक था कि वे एक ओर तो साम्यवाद के विचारों के प्रति दृढ़ निष्ठा बनाये रखें तथा दूसरी ओर जहाँ आवश्यक हो वहाँ सब तरह के समझौते करना और पैंतरे बदलना सीखें। लेनिन ने साम्राज्यवाद को पूँजीवाद की उच्चतम अथवा अन्तिम अवस्था माना है। जिसमें अनेक अन्तर्विरोध हैं जो स्वयं इसे नष्ट करने में सहायक होंगे।

30.5.3 माओवाद – वस्तुत: मार्क्सवादी–लेनिनवादी होते हुए भी माओ प्रारम्भ से अन्त तक राष्ट्रवादी बना रहा। राष्ट्रीयता का संवेग उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बना रहा। उसने सदैव चीन की महान् जनता तथा उसकी महान परम्पराओं की प्रशंसा की। वस्तुत: उसके विचारों का निर्माण चीनी भूमि पर, चीनी परिस्थितियों और चीनी संस्कृति के बीच में हुआ। उसे इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उसने चीन की परिस्थितियों के अनुरूप मार्क्सवाद–लेनिनवाद के एक विशेष रूप का प्रवर्तन किया। लेनिन तथा स्टालिन की विरासत को स्वीकार करते हुए भी माओ के चिन्तन में अपनी कुछ विशिष्टता है। उदाहरण के लिए, लेनिन ने साम्यवादी दल को सर्वहारा वर्ग की इच्छा के साथ अभिन्न मान लिया था। लेकिन चीन में सर्वहारा वर्ग का अस्तित्व ही नहीं था, फिर भी माओ और उसके समर्थकों ने साम्यवादी दल को कृषि क्रान्ति का नेता बना दिया। लेनिन ने दल संगठन के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों का निरूपण किया था और उसका विचार था कि इन सिद्धान्तों का सभी देशों के साम्यवादियों को पालन करना चाहिए। माओ ने इस दल संगठन के इन सिद्धान्तों को और भी कड़ा कर दिया। 'जनयुद्ध' की संकल्पना माओ की विशिष्ट देन है। माओ ने संघर्ष में सेना और हथियारों से भी अधिक महत्त्व 'जनता' को दिया है। इसीलिए उसने अपने सभी आन्दोलनों और कार्यक्रमों में देश के अधिक से अधिक लोगों को झोंकने एवं सक्रिय करने का प्रयत्न किया।

माओ शक्ति का पुजारी था। उसके अनुसार ''राजनीतिक शक्ति बन्दूक की नली में से उत्पन्न होती है, बन्दूक से कोई भी वस्तु उत्पन्न की जा सकती है।'' माओ साम्यवाद लाने के लिए युद्ध की अनिवार्यता और शक्ति में विश्वास करता था। माओ ने 'नवीन लोकतन्त्र' नामक पुस्तक में यह विचार रखा कि साम्यवाद कभी एकदम नहीं आ सकता है। साम्यवाद से पूर्व एक संक्रमण कालीन अवस्था आयेगी और यही दशा नवीन लोकतन्त्र की है। इसमें पूँजीवादी और साम्यवादी व्यवस्थाओं का सम्मिश्रण होगा। नवीन लोकतन्त्र पूंजीवाद को निरूत्साहित करेगा, साम्यवाद का न्यूनतम कार्यक्रम चलायेगा और इसका लक्ष्य भविष्य में 'अधिकतम साम्यवादी' कार्यक्रम चलाने का होगा। नवीन लोकतन्त्र में मिश्रित अर्थ–व्यवस्था होगी। माओ कट्टर राष्ट्रवादी था और इसके लिए राष्ट्रवाद कोई आवश्यक बुराई नहीं प्रत्युत प्रामाणिक मूल्य है। माओ का सैन्यवाद तथा साम्राज्यवादी विस्तारवाद लेनिन की शिक्षाओं के सर्वथा विपरीत था।

30.6 1982 के चीनी संविधान की विशेषताएँ

साम्यवादी चीनी जन गणराज्य के संविधानों की श्रृंखलाओं में चीन का मौजूदा (1982) का संविधान क्रम में चौथा संविधान है। इसके प्रथम संविधान को 1954 में, दूसरे को 1975 में, तीसरे को 1978 में और मौजूदा संविधान को 1982 में लागू किया गया था। मौजूदा संविधान के प्रारूप को नेशनल पीपुल्स कांग्रेस ने अपने पांचवे अधिवेशन में 4 दिसम्बर, 1982 को स्वीकार किया था। इस संविधान में 138 अनुच्छेद हैं, जो चार अध्यायों में विभाजित है।

संविधान के प्रथम इकाई में कतिपय सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है, जैसे 'लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद' और यह सिद्धान्त कि सभी प्रशासनिक एवं न्यायिक अंग जनवादी कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी हैं।

द्वितीय इकाई नागरिकों के मौलिक अधिकारों और कर्त्तव्यों का निरूपण करता है। अधिकारों की सूची से 'हड़ताल का अधिकार' हटा दिया गया है।

तृतीय इकाई 'राज्य संरचना का विस्तार से वर्णन करता है। इसमें 'राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस, राष्ट्रपति, राज्य परिषद्, केन्द्रीय सैनिक आयोग, स्थानीय जन कांग्रेस, जन न्यायालय आदि प्रशासनिक और न्यायिक अंगों के कार्य, गठन आदि का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ इकाई राष्ट्रध्वज, राजचिह्न और राजधानी का ब्यौरा प्रस्तुत करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चीन के नवीन संविधान की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित है :-

30.6.1 संक्षिप्त संविधान – चीन का वर्तमान संविधान (1982) वस्तुत: एक संक्षिप्त संविधान है, जिसमें 138 अनुच्छेद और एक प्रस्तावना है। 1954 ई. के संविधान में 106 अनुच्छेद, 1975 के संविधान में मात्र 30 अनुच्छेद और एक प्रस्तावना तथा 1978 के संविधान में एक प्रस्तावना और 60 अनुच्छेद थे। वर्तमान संविधान पांच भागों में विभक्त है जिसमें एक प्रस्तावना और चार इकाई हैं। इस प्रस्तावना में जनवादी चीन के ऐतिहासिक विकास अनुभवों का विवरण दिया गया है। इसमें संविधान के दर्शन, दल के प्रत्यक्ष शासन तथा सामाजिक व्यवस्था को परिभाषित किया गया है।

30.6.2 लिखित तथा निर्मित – नया संविधान, अन्य आधुनिक राज्यों के संविधानों की तरह लिखित है। इसका निर्माण विशेष रूप से नियुक्त की गयी एक समिति तथा जनवादी कांग्रेस ने किया है, अत: इसे लिखित होने के साथ–साथ निर्मित संविधान भी कह सकते हैं। संविधान के प्रथम इकाई में इसके सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है।

दूसरा इकाई नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का वर्णन करता है। तीसरा इकाई 'राज्य संरचना' अर्थात् सरकार के विधायी, कार्यकारी और न्यायिक अंगों पर प्रकाश डालता है। चौथा इकाई राष्ट्र–ध्वज, राज्य चिह्न तथा राजधानी का ब्यौरा प्रस्तुत करता है।

30.6.3 संविधान की सर्वोच्चता – वर्तमान में संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को स्थान दिया गया है। यह देश का मूल–भूत कानून है। कोई भी संगठन या व्यक्ति संविधान से ऊपर या परे नहीं। सभी संविधान के अधीन है, और सभी स्तरों पर सभी के लिए संविधान और कानून की प्रतिष्ठा की रक्षा करना अनिवार्य है। अनुच्छेद 5 के अनुसार, राज्य के सभी अंगों, सशस्त्र सेनाओं, सभी राजनीतिक दलों और सार्वजनिक संगठनों और सभी उद्यमों एवं उपक्रमों के लिए संविधान और काननू का पालन करना अनिवार्य है। संविधान और कानून की उल्लंघना करने वाले कार्यों की जाँच अवश्य होनी चाहिए।'' इस अनुच्छेद की व्यवस्था से स्पष्ट है कि संविधान को चीन की कम्युनिष्ट पार्टी की देखरेख में बनाने के बाद भी उसे संविधान के अधीन रखा गया है उसके ऊपर या परे नही।

30.6.4 जनवादी लोकतांत्रिक तानाशाही – जहाँ 1978 के संविधान में कहा गया था कि 'जनवादी चीन सर्वहारा वर्ग की तानाशाही वाला एक समाजवादी राज्य है' वहाँ 1982 के नये संविधान के प्रथम अनुच्छेद में यह घोषणा की गयी है – ''जनवादी चीन जनवादी लोकतान्त्रिक तानाशाही वाला एक समाजवादी राज्य है, जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथों में है और जहाँ श्रमिकों तथा किसानों के बीच अटूट मैत्री का सम्बन्ध विद्यमान है।'' जनवादी लोकतान्त्रिक तानाशाही से अभिप्राय है –नागरिकों को राजकीय मामलों में हाथ बंटाने का पूरा अधिकार हासिल है। हर स्तर पर जन सभाओं यानी विधान मण्डलों का गठन किया गया है और उनमें ज्यादातर किसान मजदूर और साधारण वर्गों के लोग पाये जाते है, देश के आर्थिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में जनता की अभिरुचि बढ़ गयी है, तथा लोगों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे सरकार के अंगों और सरकारी कर्मचारियों के कार्यों पर निगरानी रखें। 'लोकतान्त्रिक तानाशाही' में बहुसंख्यक किसानों व मजदूरों का अल्पसंख्यक जमींदारों और प्रतिक्रियावादी पूँजीपतियों पर नियन्त्रण होता है।

30.6.5 जनवादी गणतन्त्र – नये संविधान के अनुसार चीन के जनवादी गणतन्त्र में सम्पूर्ण सत्ता जनता में निहित है। जनता इस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा स्थानीय जन कांग्रेसों के माध्यम से करती है। यहाँ सभी स्तरों पर जन कांग्रेस है। राज्य प्रशासन का संचालन जनता स्वयं करती है तथा आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों का संचालन भी कानून के अन्तर्गत जनता स्वयं करती है।

30.6.6 बहुराष्ट्रीय राज्य – संविधान के अनुसार चीन एक बहुराष्ट्रीय राज्य है, जिसमें 56 जातियाँ निवास करती है। इन राष्ट्र जातियों को भाषा, लिपि, संस्कृति और खान–पान के क्षेत्र में पर्याप्त स्वतन्त्रताएँ प्राप्त हैं। उनकी स्वायत्तता की रक्षा के लिए ही संविधान में 'स्वायत्त प्रदेश', 'स्वायत्त प्रीफेक्ट', तथा 'स्वायत्त काउन्टी' शब्दों का प्रयोग किया गया है। संविधान के अनुसार किसी भी राष्ट्र जाति के प्रति भेदभाव रखना या उस पर अत्याचार करना एक दंडनीय अपराध घोषित किया गया है।

30.6.7 लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद – पूर्व सोवियत संघ की ही भांति जनवादी चीन का नया संविधान भी 'लोकतन्त्र' और 'केन्द्रवाद' की अवधारणा पर आधारित है। संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार ''चीन के सभी शासकीय अंग लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सिद्धान्त को प्रयोग में लायेंगे।'' केन्द्र और प्रादेशिक सरकारों के बीच शक्ति विभाजन का सिद्धान्त यह है कि स्थानीय अधिकारी उत्साहपूर्वक अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करते रहें, पर वे केन्द्रीय सत्ता के नेतृत्व या नियंत्रण में अवश्य रहें। चीनी नेताओं के अनुसार लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद का सिद्धान्त चीनी शासन पद्धति का आधारभूत तथा मार्गदर्शक सिद्धान्त है। इसका तात्पर्य है 'लोकतन्त्र के आधार पर केन्द्रीकरण और केन्द्रित पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त। इसके अनुसार, देश में शासन के विभिन्न स्तर हैं और प्रत्येक स्तर पर जनता द्वारा निर्वाचित कांग्रेस है। मन्त्रिमण्डल तथा उच्चतम जन न्यायालय 'राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस' अथवा उसकी स्थायी समिति की अधीनता में कार्य करते है। प्रान्तों, काउण्टियों, जिलों, नगरों तथा कम्यूनों में भी जनसभाओं का गठन किया गया है। ये सभाएँ एक प्रकार से विधानसभा का ही लघु रूप है। नागरिकों को भाषण, अभिव्यक्ति, शिक्षा, रोजगार और विश्राम के अधिकार उपलब्ध है, उन्हें सरकारी क्रियाकलापों की आलोचना करने तथा सुझाव देने का अधिकार है।

इन सभी लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं के बावजूद भी केन्द्रवाद की मांग है कि निम्न स्तर के पदाधिकारी अपने से उच्च अधिकारियों के आदेशों के अनुसार कार्य करें।

30.6.8 एकात्मक शासन प्रणाली तथा प्रादेशिक इकाइयाँ - चीन में प्रारम्भ से ही एकात्मक शासन प्रणाली विद्यमान रही है। नये संविधान द्वारा भी एकात्मक शासन प्रणाली को ही सुदृढ़ किया गया है। यद्यपि शासन एक ही स्थान से संचालित होता है एवं शक्तियाँ एक ही इकाई में निहित हैं, जैसा कि एकात्मक संविधानों में होता है। केन्द्रीय सरकार जब चाहें घटक इकाइयों को समाप्त कर सकती है और जब चाहे उनके अधिकारों में भी परिवर्तन कर सकती है। यहाँ शासन की विभिन्न इकाइयाँ हैं -प्रान्त अथवा स्वायत्त प्रदेश, प्रत्येक प्रान्त अथवा स्वायत्त प्रीफेक्टों में बांटा गया है, उनके नीचे है काउन्टियाँ अथवा स्वायत्त काउन्टियाँ तथा प्रत्येक काउन्टी अथवा स्वायत्त काउन्टी के अन्तर्गत बहुत से जन कम्यून व कस्बे हैं।

30.6.9 नागरिकों के मूलभूत अधिकार तथा कर्त्तव्य- नये संविधान के इकाई 2 में अनुच्छेद 33-56 तक नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है। इन अधिकारों को चार भागों में बांटा जा सकता है :-

(1) आर्थिक अधिकार - नागरिकों को बहुत से आर्थिक अधिकार दिये गये है जैसे, काम का अधिकार, विश्राम का अधिकार और अपाहिज होने पर आर्थिक सहायता पाने का अधिकार। नया संविधान 'काम के अधिकार' को कर्त्तव्य के रूप में शामिल करता है।

(2) राजनीतिक अधिकार - नागरिकों को अनेक राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं जैसे 18 वर्ष या उससे ऊपर की आयु के सभी स्त्री-पुरूषों को मत देने का अधिकार प्राप्त है, नागरिकों को यह अधिकार भी प्राप्त है कि वे सरकारी अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतें दर्ज करा सकें। संविधान इस बात की स्वतन्त्रता देता है कि नागरिक अपने अधिकारों के हनन के मामलों को उचित अधिकारियों तक पहुँचायें। यदि किसी व्यक्ति को सरकारी कर्मचारियों की वजह से कोई हानि पहुँचती है तो वह 'हरजाना या क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार रखता है।'

(3) सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार - नागरिकों को अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार दिये गये हैं जैसे शिक्षा का अधिकार तथा विज्ञान, साहित्य, कला व संस्कृति के क्षेत्र में अनुसंधान एवं सृजन की स्वतन्त्रता। संविधान में कहा गया है कि राज्य विज्ञान, शिक्षा, साहित्य, कला तकनीकी व सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देगा।

(4) व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ - संविधान में नागरिकों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ भी दी गई हैं जैसे भाषण, अभिव्यक्ति, सभा व प्रदर्शन आदि की स्वतन्त्रता तथा धर्म पालन की स्वतन्त्रता।

संविधान में नागरिकों के अनेक कर्त्तव्यों का भी वर्णन किया गया है। नागरिकों का यह कर्त्तव्य है कि वे संविधान व कानूनों का पालन करें, सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करें, मातृभूमि की रक्षा करें, तथा करों का नियमानुसार भुगतान करें।

30.6.10 समाजवादी अर्थ-व्यवस्था - नये संविधान में चीन की अर्थ-व्यवस्था की भी चर्चा की गयी है। चीन में दो प्रकार से उत्पादन के साधनों का प्रबन्ध किया जाता है। सम्पूर्ण जनता द्वारा समाजवादी स्वामित्व और श्रमजीवी जनता द्वारा समाजवादी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सामूहिक स्वामित्व। राज्य कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में मजदूरों और व्यवसायिकों को कानून की परिधि के अन्तर्गत उद्यम की स्वतन्त्रता देता है, किन्तु व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति का शोषण वर्जित है। संविधान के अनुसार अर्थव्यवस्था का समाजवादी राजकीय क्षेत्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत है। खनिज पदार्थ, उद्योग, व्यापार, वन–सम्पदा, यातायात आदि विषय समाजवादी राजकीय स्वामित्व और प्रबन्ध में संचालित होते हैं। राज्य, भूमि का आवश्यकतानुसार राष्ट्रीयकरण कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 8 के अनुसार अर्थव्यवस्था का ग्रामीण क्षेत्र, श्रम–जीवी कृषकों के सामूहिक स्वामित्व में है। अनुच्छेद 12 के अनुसार समाजवादी सम्पत्ति की चोरी, समाजवादी योजनाओं और अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचाना आदि कार्यों को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

30.6.11 एकदलीय प्रणाली – नये संविधान की प्रस्तावना में साम्यवादी दल के महत्त्व और भूमिका की प्रशंसा की गयी है। संविधान से स्पष्ट होता है कि चीन की समग्र जनता के नेतृत्व की धुरी साम्यवादी दल है। चीन में साम्यवादी दल के अतिरिक्त 8 अन्य राजनीतिक दलों का अस्तित्व है। लेकिन चीन का संविधान इन सभी राजनीतिक दलों पर साम्यवादी दल की प्रमुखता और नेतृत्व को आरोपित करता है। इस दृष्टि से प्रतियोगी दलीय प्रणाली का अभाव है और एक दलीय प्रणाली है।

30.6.12 केन्द्रीय सैनिक आयोग – नये संविधान में एक केन्द्रीय सैनिक आयोग की व्यवस्था की गयी है। यह सर्वथा नई और अनुपम संस्था है। चीन के पूर्ववर्ती संविधानों में इस प्रकार की कोई संस्था नहीं थी। सेना को निर्देश यही आयोग देगा। इस आयोग में सभापति, उप–सभापति तथा सदस्य होंगे। आयोग के समस्त दायित्वों का उत्तरदायित्व सभापति पर होगा। सैनिक आयोग के सभापति राष्ट्रीय जन कांग्रेस तथा उसकी समिति के प्रति उत्तरदायी रहेंगे।

30.6.13 एक सदनीय व्यवस्थापिका – चीन आकार और जनसंख्या की दृष्टि से एक बहुत बड़ा राष्ट्र है। इसमें भिन्न–भिन्न जातियों, भाषाओं और धर्मों वाली 56 राष्ट्रीयतायें निवास करती हैं। इस पर भी इसकी राष्ट्रीय व्यवस्थापिका अर्थात् नेशनल पीपुल्स काँग्रेस एक सदनीय व्यवस्थापिका है। इसके सदस्यों की संख्या 2,970 है जो विश्व में किसी भी देश की राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के सदस्यों से अधिक है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से प्रान्तों, स्वायत्तशासी क्षेत्रों और सीधे केन्द्र सरकार के अधीन, तीन नगरपालिकाओं और सशस्त्र सेनाओं की श्रेणियों द्वारा पाँच वर्ष के लिए होता है।

30.6.14 न्यायालय की न्यून स्थिति – चीन सहित साम्यवादी देशों में न्यायालय प्रशासन से पृथक् एक स्वतन्त्र या निष्पक्ष निकाय नहीं होते। वह उसकी एक भुजा मात्र होती है। उसकी स्थिति प्रशासन में अन्य अंगों के बराबर नहीं होती बल्कि न्यून होती है। चीन में सर्वोच्च पीपुल्स कोर्ट से लेकर बेसिक पीपुल्स कोर्ट तक, सभी न्यायालय पीपुल्स काँग्रेस के अधीन है। उदाहरण: चीन की सर्वोच्च पीपुल्स कोर्ट, नेशनल पीपुल्स काँग्रेस द्वारा निर्वाचित होती है और वह उसी के प्रति और उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी होती है।

चीन सहित सभी साम्यवादी देशों में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया है। न्यायालय संविधान के अभिभावक और अभिरक्षक के रूप में कार्य नहीं करते। वह संविधान की व्याख्या नहीं करते। वस्तुत: उनके पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति नहीं है। न्यायालय की स्थिति कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका की तुलना में कमजोर होती है।

30.6.15 विदेश नीति के सिद्धान्तों का उल्लेख – मौजूदा संविधान की उद्देशिका में चीन की विदेश नीति के मूल सिद्धान्तों को स्पष्ट किया गया है। विदेश नीति के सम्बन्ध में कहा गया है कि–

(1) चीन का भविष्य समस्त विश्व से सम्बन्धित है,

(2) चीन 'पंचशील' के आदर्श का पालन करेगा, वह दूसरे देशों की प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान करता है, वह शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व में विश्वास करता है।

(3) चीन साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद का विरोध करता है और विकासशील देशों के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आन्दोलनों का समर्थन करता है।

(4) चीन एक स्वतन्त्र विदेश नीति का पालन करते हुए विश्व के अन्य देशों के साथ राजनयिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनायेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

30.7 सारांश

1982 ई. के संविधान की प्रस्तावना में यह इंगित किया गया है कि ''संविधान राज्य की मौलिक विधि'' है। जनवादी चीन में रहने वाली सभी राष्ट्र जातियाँ, राज्य के सभी पदाधिकारी, सशस्त्र सेनाएँ, औद्योगिक संस्थान और सार्वजनिक संगठन संविधान की धाराओं से बंधे हैं। समस्त कानूनी शक्तियों का स्रोत संविधान है। सभी लोगों को संविधान के अनुसार आचरण करना चाहिए और उसकी मर्यादा व गरिमा की रक्षा करनी चाहिए।

जनवादी चीन का नया संविधान एक संक्षिप्त प्रलेख है जो चीन की राजनीतिक प्रणाली को औपचारिक तथा विधायी रूपरेखा प्रस्तुत करता है। संविधान द्वारा एक समग्रवादी शासन व्यवस्था की स्थापना की गयी है, नियोजित अर्थव्यवस्था द्वारा बेरोजगारी पर नियंत्रण पाने का प्रयत्न किया गया है। संस्थागत अस्थायित्व को दूर करने के लिए है, राष्ट्राध्यक्ष के पद की व्यवस्था करके 'स्थायित्व' लाने का प्रयास किया गया है। चीन का भविष्य नये संविधान के स्वरूप पर निर्भर नहीं करता अपितु इस बात पर निर्भर करता है कि आने वाले वर्षों में चीनी साम्यवादी दल में कितनी एकजुटता बनी रहती है ?

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनवादी चीनी गणराज्य के संविधान की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जनवादी चीन के संविधान के अध्ययन का महत्त्व लिखिये।
2. जनवादी चीन के संवैधानिक विकास क्रम का विवेचन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जनवादी चीन का वर्तमान संविधान कब बना तथा उसमें कितने अनुच्छेद हैं ?
2. जनवादी चीन में लोकतांत्रिक केन्द्रवाद से क्या अभिप्राय है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 31
राष्ट्रीय जन कांग्रेस

संरचना

31.0 उद्देश्य

31.1 प्रस्तावना

31.2 राष्ट्रीय जन काँग्रेस की रचना

31.2.1 कार्यकाल और अधिवेशन

31.2.2 सदस्यों के विशेषाधिकार

31.3 राष्ट्रीय जन काँग्रेस की शक्तियाँ

31.3.1 संविधान संशोधन की शक्ति

31.3.2 कानूनों का निर्माण करना

31.3.3 निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ

31.3.4 युद्ध एवं शान्ति सम्बन्धी शक्तियाँ

31.3.5 बजट सम्बन्धी शक्तियाँ

31.3.6. निर्णयों को रद्द करने की शक्ति

31.3.7 प्रशासनिक इकाइयों की स्थापना सम्बन्धी शक्तियाँ

31.4 राष्ट्रीय जन काँग्रेस की स्थायी समिति

31.4.1 संगठन

31.4.2 कार्यकाल

31.4.3 स्थायी समिति का अध्यक्ष

31.4.4 स्थायी समिति की शक्तियाँ

31.5 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

31.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत नेशनल पीपुल्स काँग्रेस का संगठन और शक्तियों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- राष्ट्रीय जन कांग्रेस की रचना और संगठन को समझ सकेंगे,
- राष्ट्रीय जन कांग्रेस की शक्तियाँ और कार्यों की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- स्थायी समिति की रचना एवं स्वरूप को समझ सकेंगे,
- राष्ट्रीय जन कांग्रेस की वास्तविक स्थिति जान पायेंगे।

31.1 प्रस्तावना

चीन की नेशनल पीपुल्स काँग्रेस, पूर्व सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत की भांति,''राज्य शक्ति का उच्चतम अंग है।'' चीन में सारी शासन सत्ता इसी से प्रवाहित होती है। सन् 1982 ई. तक चीन में यह एकमात्र विधायी निकाय थी, परन्तु जब से (1982 से) वर्तमान संविधान लागू हुआ है, तब से नेशनल पीपुल्स काँग्रेस और उसकी स्थायी समिति दोनों विधायी शक्ति का प्रयोग मिलकर करती हैं। नेशनल पीपुल्स काँग्रेस संविधान की क्रियान्विति की देखरेख करती है, वह संविधान में संशोधन कर सकती है। वह देश के प्राय: सभी उच्च अधिकारियों जैसाकि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्री आदि का निर्वाचन करती है, यह उन्हें वापस बुला सकती है अथवा उन्हें पद से हटा सकती है। यह राष्ट्रीय योजनाओं का निरीक्षण करती है तथा उन्हें स्वीकृत करती है। यह अपनी स्थायी समिति के अनुचित निर्णयों को बदल सकती है अथवा उन्हें रद्द कर सकती है।''यह उन सब कार्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करती है जिनका प्रयोग राज्य शक्ति के उच्चतम अंग को करना चाहिए।''

31.2 राष्ट्रीय जन काँग्रेस : रचना और संगठन

चीन एक बहु-राष्ट्रीय राज्य है। इसमें भिन्न-भिन्न जाति, भाषा, धर्म, रीति-रिवाज वाली 56 राष्ट्रीयतायें निवास करती हैं। इस पर भी चीन एकात्मक राज्य है और उसकी केन्द्रीय व्यवस्थापिका (नेशनल पीपुल्स काँग्रेस) एक सदनीय व्यवस्थापिका है। इसके कुल सदस्यों की संख्या 2,970 है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से प्रान्तों, स्वायत्तशासी क्षेत्रों और सीधे केन्द्र सरकार के अधीन नगरपालिकाओं की पीपुल्स काँग्रेसों एवं सशस्त्र सेनाओं की श्रेणियों द्वारा होता है।

31.2.1 कार्यकाल और अधिवेशन – अनुच्छेद 60 के अनुसार राष्ट्रीय जन काँग्रेस का निर्वाचन 5 वर्ष के लिए होता है। इसके कार्यकाल की समाप्ति से दो माह पूर्व स्थायी समिति को नयी कांग्रेस के निर्वाचन करा लेने चाहिए। स्थायी समिति के लिए यह आवश्यक है कि वह जन कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष में एक बार अवश्य बुलाये। आवश्यकता पड़ने पर इसका अधिवेशन पहले भी बुलाया जा सकता है और स्थगित भी किया जा सकता है।

31.2.2 सदस्यों के विशेषाधिकार – संविधान के अनुसार राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्यों को उनके सदस्य बने रहने तक कुछ विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्रदान की गयी हैं। किसी भी सदस्य को कांग्रेस की पूर्व अनुमति के बिना बन्दी नहीं बनाया जा सकता है और न ही मुकदमा चलाया जा सकता है। यदि कांग्रेस की बैठक न हो तो इस सम्बन्ध में कांग्रेस की स्थायी समिति से अनुमति लेना आवश्यक है।

31.3 जनवादी कांग्रेस की शक्तियाँ एवं कार्य – राष्ट्रीय जन कांग्रेस 'शासन तंत्र का सर्वोच्च अंग है। अन्य देशों में संसदात्मक संस्थाओं के विधायी कार्यों की भांति यह भी संवैधानिक शक्तियों एवं कार्यों का सम्पादन करती है। इसे संविधान में संशोधन करने, कानून बनाने एवं शासन तन्त्र पर नियन्त्रण का अधिकार है।'

राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रमुख कार्य और शक्तियाँ निम्नलिखित है :

31.3.1 संविधान संशोधन की शक्ति – कांग्रेस को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है। कांग्रेस की स्थायी समिति अथवा कांग्रेस के 1/5 सदस्य संविधान में संशोधन का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं। यदि संविधान संशोधन के कुल सदस्यों के 2/3 सदस्यों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, तो संविधान संशोधन स्वीकृत माना जाता है।

31.3.2 कानूनों का निर्माण करना – कांग्रेस फौजदारी अपराधों, दीवानी मामलों, राज्य अंगों और अन्य विषयों पर कानून का निर्माण कर सकती है। अथवा उनमें संशोधन कर सकती है। दूसरे शब्दों में, जहाँ मौजूदा (1982 के) संविधान से पूर्व नेशनल पीपुल्स कांग्रेस चीन में कानून निर्माण करने वाली एकमात्र संस्था थी और उसकी कानून निर्माण करने की शक्ति में कोई साझेदार नहीं था, वहाँ मौजूदा संविधान के अन्तर्गत मूल संविधियों को छोड़कर, जिनका निर्माण कांग्रेस द्वारा किया जाना चाहिये, अन्य संविधियों के निर्माण की शक्ति कांग्रेस की स्थायी समिति को सौंप दी गई है। इस तरह मौजूदा संविधान व्यवहार में स्थायी समिति द्वारा निर्मित संविधियों को वैधता प्रदान करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

31.3.3 निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ – नेशनल पीपुल्स कांग्रेस चीन में राज्य–शक्ति के प्राय: सभी उच्च पदाधिकारियों का निर्वाचन करती है। यह कुछ का निर्वाचन स्वयं करती है और कुछ का चयन अन्य पदाधिकारियों द्वारा नामांकित या सिफारिश किये जाने पर करती है। प्रत्येक स्थिति में अन्तिम चयन कांग्रेस का ही होता है।

कांग्रेस मुख्यत: निम्नलिखित पदाधिकारियों का निर्वाचन करती है–

(1) जनवादी चीनी गणराज्य के राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन।

(2) राष्ट्रपति की सिफारिश पर राज्य परिषद् से प्रधानमंत्री तथा उपप्रधानमंत्री का चयन करना ।

(3) प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राज्य पार्षदों, मन्त्रालयों एवं आयोगों के प्रभारी मन्त्रियों, महालेखा परीक्षक और राज्य परिषद् के महासचिव का चयन करती है।

(4) यह केन्द्रीय सैनिक आयोग के अध्यक्ष का निर्वाचन करती है।

(5) यह सर्वोच्च जनवादी न्यायालय के सभापति का निर्वाचन करती है।

(6) यह सर्वोच्च जनवादी प्रोक्यूरेटोरेट के प्रोक्यूरेटर जनरल का निर्वाचन करती है।

कांग्रेस जिन पदाधिकारियों का निर्वाचन करती है वह उन्हें वापस भी बुला सकती है और उन्हें हटा भी सकती है। ऐसा होने से कांग्रेस का सभी पदाधिकारियों पर नियंत्रण बना रहता है।

31.3.4 युद्ध एवं शान्ति सम्बन्धी शक्तियाँ – कांग्रेस युद्ध और शान्ति सम्बन्धी विषयों पर निर्णय लेती है। कांग्रेस के अवकाश काल में, देश पर सशस्त्र आक्रमण होने की स्थिति में, युद्ध सम्बन्धी उद्घोषणा के प्रश्न पर अथवा आक्रमण के विरूद्ध प्रतिरक्षा सम्बन्धी अन्तरराष्ट्रीय उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने सम्बन्धी विषयों पर स्थायी समिति निर्णय लेती है।

31.3.5 बजट सम्बन्धी शक्ति – कांग्रेस बजट और राष्ट्रीय एवं सामाजिक विकास सम्बन्धी योजनाओं का परीक्षण करती है, उन्हें स्वीकार करती है तथा उनकी क्रियान्विति सम्बन्धी रिपोर्टों को प्राप्त करती है। इस तरह से वित्त के क्षेत्र में भी कांग्रेस को महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त है।

31.3.6 निर्णयों को रद्द करने की शक्ति – कांग्रेस स्थायी समिति द्वारा लिये हुए अवांछित और अनुचित निर्णयों को बदल सकती है अथवा उन्हें रद्द कर सकती है।

31.3.7 प्रशासनिक इकाइयों की स्थापना सम्बन्धी शक्तियाँ – कांगेस प्रान्तों, स्वायत्तशासी क्षेत्रों और सीधे केन्द्र सरकार के अधीन नगरपालिकाओं के स्थापना सम्बन्धी प्रस्तावों को स्वीकार करती है। कांग्रेस विशेष प्रशासनिक क्षेत्रों और वहाँ स्थापित की जाने वाली प्रणाली को भी स्वीकार करती है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस की शक्तियाँ बहु–आयामी है।

31.4 राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति

चीन के नवीन संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति की स्थिति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। संविधान में इसे राष्ट्रीय जन कांग्रेस का 'स्थायी अंग' कहा गया है। चूंकि राष्ट्रीय जन कांग्रेस की सदस्य संख्या बहुत अधिक है जिसकी वजह से वह कानूनों का समुचित निर्माण नहीं कर सकती, अत: स्थायी समिति का प्रावधान किया गया है।

स्थायी समिति, कांग्रेस की ही एक रचना है। यह उसकी ओर से कार्य करती है और यह अपने कार्यों के लिए उसके प्रति उत्तरदायी है। स्थायी समिति संवैधानिक तौर पर अपने कार्यों से सम्बन्धित एक रिपोर्ट कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है। कांग्रेस स्थायी समिति के उन निर्णयों को बदल सकती है जो उसकी दृष्टि में अपर्याप्त या अनुचित हैं।

31.4.1 संगठन – स्थायी समिति की रचना का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 65 में किया गया है। इसके अनुसार स्थायी समिति में एक अध्यक्ष, कई उपाध्यक्ष, महासचिव तथा अन्य साधारण सदस्य होते हैं। इनका चुनाव राष्ट्रीय जन कांग्रेस के द्वारा होता है। स्थायी समिति के सदस्यों की संख्या 135 हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

31.4.2 कार्यकाल – स्थायी समिति का कार्यकाल, कांग्रेस की भांति, 5 वर्ष है परन्तु कांग्रेस स्थायी समिति के सदस्यों को समय से पूर्व वापस बुला सकती है अथवा उन्हें हटा सकती है। राज्य के अन्य सभी महत्त्वपूर्ण पदों की भांति स्थायी समिति के सदस्य भी लगातार दो बार से अधिक समय तक अपने पद पर बने नहीं रह सकते हैं।

31.4.3 स्थायी समिति का अध्यक्ष – स्थायी समिति का अध्यक्ष इसकी अध्यक्षता करता है तथा उसकी विज्ञप्तियों और निर्णयों पर हस्ताक्षर भी करता है। समिति के उपाध्यक्ष और महासचिव समिति के कार्यों के निष्पादन में सभापति की सहायता करते हैं।

31.4.4 स्थायी समिति की शक्तियाँ और कार्य – पूर्व सोवियत संघ की 'प्रेसीडियम' की भांति चीन की स्थायी समिति भी विधायी, कार्यकारी व न्यायिक क्षेत्र में व्यापक शक्तियों का उपयोग करती है।

संविधान के अनुच्छेद 67 में स्थायी समिति के अग्रलिखित कार्यों एवं शक्तियों का वर्णन किया गया है :-

(1) यह संविधान की व्याख्या करती है, तथा संविधान के क्रियान्वयन का निरीक्षण भी करती है।

(2) उन कानूनों का निर्माण एवं संशोधन करती है, जो राष्ट्रीय जन कांग्रेस के क्षेत्राधिकार में नहीं हैं।

(3) राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सत्रावसान काल में कानूनों का निर्माण तथा विद्यमान कानूनों में आंशिक संशोधन करने का कार्य स्थायी समिति करती है।

(4) यह संविधान की व्याख्या करती है।

(5) राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सत्रावसान काल में आर्थिक और सामाजिक विकास की योजनाओं तथा बजट को स्वीकृति प्रदान करती है।

(6) यह राज्य परिषद्, केन्द्रीय सैनिक आयोग, सर्वोच्च जन न्यायालय, तथा सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट के कार्यों का निरीक्षण एवं जाँच करती है।

(7) राज्य परिषद् द्वारा निर्मित उन प्रशासनिक नियमों, आदेशों तथा निर्णयों को यह रद्द कर सकती है जो संविधान के प्रतिकूल हो।

(8) स्थानीय निकायों द्वारा निर्मित उन निर्णयों एवं नियमों को रद्द कर सकती है जो संविधान के प्रतिकूल हो।

(9) जब राष्ट्रीय जन कांग्रेस का अधिवेशन न चल रहा तो मंत्रियों के चयन, ऑडीटर जनरल तथा राज्य परिषद् के महासचिव के चयन के बारे में यह निर्णय करती है।

(10) जब राष्ट्रीय जन कांग्रेस का अधिवेशन न चल रहा हो तो केन्द्रीय सैनिक आयोग एवं इसके सदस्यों के चयन के बारे में यह निर्णय करती है।

(11) सर्वोच्च जन न्यायालय के सभापति के परामर्श से सर्वोच्च जन न्यायालय के उपसभापति तथा अन्य न्यायाधीशों, न्यायिक समिति के सदस्यों, सैनिक न्यायालय के सभापति की यह नियुक्ति करती है।

(12) यह उप-प्रोक्यूरेटर जनरल तथा प्रोक्यूरेटोरेट समिति के अन्य सदस्यों की भी नियुक्ति करती है।

(13) विदेशों में नियुक्त किये जाने वाले प्रतिनिधियों की नियुक्ति एवं हटाने का अधिकार इस समिति को है।

(14) विदेशों से किये जाने वाले समझौतों एवं संधियों की पुष्टि या अनुसमर्थन यही समिति करती है।

(15) सैनिक और कूटनीतिक उपाधियाँ वितरित करने का अधिकार भी इसी समिति को है।

(16) राज्य की ओर से दिये जाने वाले पदक तथा उपाधियाँ इसकी स्वीकृति से दी जाती है।

(17) विशेष क्षमादान देने का इसको अधिकार है।

(18) देश पर आक्रमण होने पर युद्ध के प्रतिरोध अथवा मुकाबला करने हेतु निर्णय लेने का भी इसको अधिकार है।

(19) इसे ही देश में आम लामबन्दी तथा आंशिक लामबन्दी घोषित करने की शक्ति प्राप्त है।

(20) मार्शल लॉ लागू करने का इसको अधिकार है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

31.5 सारांश

सिद्धान्ततः राष्ट्रीय जन कांग्रेस राज्य शक्ति का ''उच्चतम अंग'' है। वह ''उन सब कार्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करती है जिनका प्रयोग राज्य शक्ति के उच्चतम अंग के रूप में उसे करना चाहिए।'' चीन में एकात्मक शासन–व्यवस्था होने के कारण जन कांग्रेस की कानून निर्माण की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं है और उसके द्वारा किसी भी विषय पर कानून का निर्माण किया जा सकता है। राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा पारित विधेयकों पर कार्यपालिका के किसी भी पदाधिकारी को निषेधाधिकार प्राप्त नहीं है। चीन में न्यायिक पुनर्निरीक्षण या पुनरावलोकन की भी कोई व्यवस्था नहीं है इसलिए जन कांग्रेस द्वारा निर्मित कानूनों को किसी के भी द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस दृष्टि से जन कांग्रेस को कानून निर्माण के क्षेत्र में ब्रिटेन की संसद से भी अधिक व्यापक शक्ति प्राप्त है। सिद्धान्ततः यह विश्व के सबसे शक्तिशाली व्यवस्थापिका मानी जा सकती है।

परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि जन कांग्रेस, केवल संविधान के पृष्ठों पर ही सर्वोच्च और शक्तिशाली संस्था है। वास्तविक शक्ति का केन्द्र स्थायी समिति है। राष्ट्रीय जन कांग्रेस के स्थायी निकाय के रूप में जन कांग्रेस के अधिकारों या शक्तियों की बहुत अधिक सीमा तक इसी के द्वारा सम्पादन किया जाता है। इसे राज्याध्यक्ष को भांति महत्त्वपूर्ण अधिकार तो प्राप्त है ही, यह एक दृष्टि से राष्ट्रीय संसद भी है, मंत्रिपरिषद् भी है और सर्वोच्च न्यायालय भी है। इसलिए राबर्ट एलीगेण्ट ने इसे 'सरकार की सर्वोच्च संस्था कहा है। इसके ऊपर साम्यवादी दल का भी नियन्त्रण रहता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. चीन की राष्ट्रीय जन कांग्रेस की रचना, कार्यों व शक्तियों का विवेचन कीजिए।
2. राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति की रचना, कार्यों एवं शक्तियों का परीक्षण कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चीनी राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की शक्तियों एवं स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. ''नेशनल पीपुल्स कांग्रेस की स्थायी समिति एक एवजी संसद है।'' इस कथन के प्रकाश में स्थायी समिति के कार्यों एवं शक्तियों का सिद्धान्त और व्यवहार में मूल्यांकन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय जन कांग्रेस की रचना कैसे होती है ?
2. राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति की रचना कैसे होती है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 32

राष्ट्रपति और राज्य परिषद्

संरचना

32.0 उद्देश्य

32.1 प्रस्तावना

32.2 राष्ट्रपति का पद

32.2.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन

32.2.2 योग्यतायें

32.2.3 कार्य एवं शक्तियाँ

32.3 राज्यपरिषद्

32.3.1 रचना

32.3.2 कार्यकाल

32.3.3 राज्य परिषद की शक्तियाँ और कार्य

32.4 सारांश

32.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत चीनी कार्यपालिका की रचना एवं संगठन का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे कि चीनी कार्यपालिका शक्ति किसमें निहित है।

- जनवादी चीन में राष्ट्रपति पद की स्थिति को समझ सकेंगे,
- कार्यपालिका में राज्यपरिषद् की स्थिति समझ सकेंगे,
- राज्यपरिषद् –क्या एक संसदीय कार्यपालिका है ?

32.1 प्रस्तावना

जनवादी चीन में राष्ट्रपति का पद मात्र, एक प्रतिष्ठित और औपचारिक पद है। इस पद की महत्त्वहीनता इस तथ्य से स्पष्ट है कि चीन के दूसरे और तीसरे संविधान के अन्तर्गत, राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के पदों को समाप्त कर दिया गया था। इन संविधानों के अन्तर्गत इन पदों के औपचारिक कार्यों को स्थायी समिति का अध्यक्ष निष्पादित करता था। चौथे वर्तमान संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के पदों को पुनर्जीवित करके पुनः प्रतिष्ठित बनाने का प्रयास किया गया है। परन्तु चीन की कार्यकारी शक्तियाँ 'राज्य परिषद्' में निहित की गई है। संविधान में 'राज्य परिषद्' को 'राज्य प्रशासन का सर्वोच्च निकाय' कहा गया है।

32.2 राष्ट्रपति का पद

1954 ई. के चीनी संविधान में राष्ट्रपति पद का प्रावधान किया गया था। संविधान की 8 धाराएँ (39 से 46 तक) राष्ट्रपति के पद एवं शक्तियों के सम्बन्ध में थीं। चीनी गणराज्य का अध्यक्ष राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा निर्वाचित होता था, और सामान्य तौर पर इसका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कार्यकाल 4 वर्ष था। उसको अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त थीं, जिनमें कार्यपालिका, न्यायिक, राजनयिक एवं सैनिक शक्तियाँ सम्मिलित थीं। राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों में निम्नलिखित विषयों को शामिल किया गया था –

(1) विधियों एवं आज्ञप्तियों को प्रसारित करना,

(2) प्रधानमंत्री एवं अन्य मंत्रियों, आयोग के सदस्यों की नियुक्ति एवं पदच्युति करना आदि सम्मिलित थीं। न्यायिक शक्तियों में क्षमादान करने का अधिकार निहित था। राजदूतों की नियुक्ति तथा उनकी वापसी, दूसरे देशों से आने वाले राजदूतों का स्वागत आदि औपचारिक कार्य चीनी गणराज्य के अध्यक्ष की राजनयिक शक्तियों में सम्मिलित थे। वह चीन की सेनाओं का सर्वोच्च अधिकारी भी था।

1975 ई. के संविधान के अन्तर्गत जनवादी चीन के राष्ट्रपति पद को समाप्त कर दिया गया। संविधान उसके उत्तराधिकारी के विषय में मौन था। 1978 ई. के संविधान में भी राष्ट्रपति जैसा कोई पद निर्मित नहीं किया गया। 1982 के नये संविधान में राष्ट्रपति पद को पुनर्जीवित किया गया।

32.2.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन – संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा पांच वर्ष के लिये होता है। राष्ट्रपति का यह कार्यकाल कांग्रेस के कार्यकाल के बराबर है। कोई भी नागरिक दो बार से अधिक इस पद पर विद्यमान नहीं रह सकता। कांग्रेस राष्ट्रपति को समय से पूर्व वापस बुला सकती है या पद से हटा सकती है। यदि किसी कारण राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाता है तो उपराष्ट्रपति उसका पद ग्रहण कर लेता है। यदि उप–राष्ट्रपति का पद रिक्त होता है तो कांग्रेस उप–राष्ट्रपति का निर्वाचन कर देती है। यदि राष्ट्रपति और उप–राष्ट्रपति दोनों के पद रिक्त हो जाते हैं तो कांग्रेस दोनों का निर्वाचन करती है। निर्वाचन से पूर्व स्थायी समिति का अध्यक्ष राष्ट्रपति के कार्यों को निष्पादित करता है।

32.2.2 योग्यतायें – संविधान राष्ट्रपति के लिए मुख्यत: निम्न योग्यतायें निर्धारित करता है –

(1) वह चीन के जन गणराज्य का नागरिक हो।

(2) उसे मतदान करने और निर्वाचन में उम्मीदवार के रूप में खड़ा होने का अधिकार हो।

(3) उसकी आयु 45 वर्ष की हो चुकी हो।

32.2.3 कार्य एवं शक्तियाँ – चीन के राष्ट्रपति की शक्तियाँ मात्र औपचारिक हैं। ये निम्न हैं–

(1) राष्ट्रपति जन कांग्रेस अथवा उसकी स्थायी समिति के आदेशानुसार वह विधियों और अध्यादेशों को प्रभावी करता है।

(2) प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, मंत्रियों, आयोगों के प्रधानों और राज्य परिषद् महासचिव की नियुक्ति करता है एवं उन्हें पद से हटाता है।

(3) सम्मानसूचक उपाधियों एवं राज्य–पदकों को वितरित करता है।

(4) सार्वजनिक क्षमादान की घोषणा करता है और व्यक्तिगत अपराध करने वाले अपराधियों को क्षमादान देता है।

(5) सैनिक कानून लागू करता है।

(6) युद्ध की घोषणा करता है और प्रतिरक्षा के लिए तैयार होने का आदेश जारी करता है।

32.3 राज्य परिषद्

वर्तमान संविधान कार्यपालिका और प्रशासन सम्बन्धी अधिकार राज्य परिषद् को प्रदान करता है। संविधान के अनुच्छेद 85 में कहा गया है कि 'राज्य परिषद् केन्द्रीय जन सरकार है। राज्य परिषद् राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेय है।' अत: साम्यवादी दल के उच्च एवं शीर्ष के सभी राजनीतिक नेता सरकार के इस निर्णय–निर्मात्री अंग से सम्बद्ध रहते हैं।

32.3.1 रचना – राज्यपरिषद् की रचना प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्रियों, स्टेट कौंसिलरों, मंत्रालयों के प्रभारी मंत्रियों, ऑडीटर जनरल तथा महासचिव से मिलकर होती है। राज्य परिषद् के बारे में समस्त दायित्व प्रधानमंत्री पर हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रधानमंत्री की नामजदगी राष्ट्रपति करता है। राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशन के बाद राष्ट्रीय जन कांग्रेस उस नाम पर विचार करती है और कोई निर्णय लेती है। जन कांग्रेस के निर्णय के पश्चात् राष्ट्रपति औपचारिक रूप से प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है। उप प्रधानमंत्रियों, अन्य मंत्रियों, राज पार्षदों तथा ऑडीटर जनरल आदि की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सिफारिशों पर राष्ट्रीय जन कांग्रेस विचार करती है और तत्पश्चात् ये नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

32.3.2 कार्यकाल – राज्य परिषद् का कार्यकाल राष्ट्रीय जन कांग्रेस की भांति 5 वर्ष है। राज्य परिषद् राष्ट्रीय जन कांग्रेस और उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए जहाँ तक इसके कार्यकाल का प्रश्न है, एक टीम के रूप में उसका कार्यकाल सामान्यतया 5 वर्षों से कुछ अधिक ही होगा, जब तक नई राष्ट्रीय जन काँग्रेस द्वारा नयी राज्य परिषद् का गठन न कर लिया जाए। यदि राष्ट्रीय जन कांग्रेस का कार्यकाल बढ़ा दिया जाए, तो राज्य परिषद का कार्यकाल भी तदनुसार बढ़ जायेगा। लेकिन प्रत्येक स्थिति में यह राष्ट्रीय जन कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी रहती है।

32.3.3 राज्य परिषद् की शक्तियाँ और कार्य - नये संविधान के अनुच्छेद 89 के अनुसार राज्य परिषद् को निम्नलिखित कार्य एवं शक्तियाँ सौंपी गयी हैं :

(1) कानूनों और आज्ञप्तियों के अनुसार यह विभिन्न विभागों के प्रशासनिक कार्यों को निर्धारित करती है, उनके निर्णयों और आदेशों की घोषणा करती है और उनके कार्यपालन की देखरेख करती है।

(2) कानून सम्बन्धी विधेयकों को राष्ट्रीय काँग्रेस या उसकी स्थायी समिति के सम्मुख प्रस्तुत करती है।

(3) विभिन्न विभागों के कार्यों में समन्वय स्थापित करती है।

(4) मन्त्रियों अथवा समितियों के अध्यक्षों द्वारा जारी किये गये अनुपयुक्त निर्णयों और आदेशों में संशोधन करती है या उन्हें रद्द करती है।

(5) स्थानीय समितियों के अनुपयुक्त निर्णयों और आदेशों में संशोधन करती है या उन्हें रद्द करती है।

(6) राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं और राष्ट्रीय बजट को लागू करती है।

(7) विदेशी और घरेलू व्यापार पर नियन्त्रण रखती है।

(8) सांस्कृतिक, शिक्षा सम्बन्धी और सार्वजनिक स्वास्थ्य के कार्यों का संचालन करती है।

(9) राष्ट्रीयताओं से सम्बन्धित कार्यों का सम्पादन करती है।

(10) विदेशों में रहने वाले चीनियों या प्रवासी चीनियों से सम्बन्धित कार्यों का निर्वहन करती है।

(11) राज्य के हित की रक्षा करती है, सार्वजनिक व्यवस्था कायम रखती और नागरिक अधिकारों की रक्षा करती है।

(12) वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन करती है।

(13) सशस्त्र सेनाओं का निर्माण तथा संचालन करती है।

(14) स्वशासित जिलों, तहसीलों और नगरपालिकाओं के पद और सीमाओं को स्वीकार करती है।

(15) कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार प्रबन्धक अधिकारियों को नियुक्त और पदच्युत करती है।

(16) राष्ट्रीय काँग्रेस या उसकी स्थायी समिति द्वारा सौंपे गये अन्य कार्य करती और अन्य अधिकारों का उपयोग करती है।

राज्य परिषद् के कार्यों को देखने से ऐसा लगता है कि उसके कार्य–प्रशासकीय कार्यों को निर्धारित करना तथा संविधान, कानून और आज्ञप्तियों के अनुकूल निर्णय और आदेश जारी करना, विभिन्न मन्त्रालयों, आयोगों तथा देश के अन्तर्गत स्थानीय स्तर के राज्यांगों का केन्द्रीय नेतृत्व करना, राष्ट्रीय आर्थिक योजना और राजकीय बजट का प्रारूप तैयार करना तथा प्रशासकीय कार्यों का निर्देशन करना और उन शक्तियों का प्रयोग एवं कार्यों का सम्पादन करना है जो राष्ट्रीय जन कांग्रेस या उसकी स्थायी समिति द्वारा उसे सौंपे जाते हैं। इस तरह से इस संस्था के द्वारा भी बहुमुखी कार्यों का सम्पादन किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

32.4 सारांश

यद्यपि राज्य परिषद् चीन की कार्यपालिका और राज्य का सर्वोच्च प्रशासनिक अंग है, परन्तु इसे ब्रिटेन या भारत के मन्त्रिमण्डलों के समान गौरवपूर्ण स्थिति प्राप्त नहीं है। ब्रिटेन में जब तक मन्त्रिमण्डल को लोकसदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है तब तक वह प्रशासन के संचालन और कानून निर्माण दोनों ही क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण शक्तियों का प्रयोग करता है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की तुलना में चीन की राज्य परिषद् को अत्यन्त सीमित शक्तियाँ प्राप्त हैं। राज्य परिषद् की कमजोर स्थिति का प्रमुख कारण यह है कि राज्य परिषद् पर साम्यवादी दल का पूर्ण नियन्त्रण है और राज्य परिषद् साम्यवादी दल द्वारा निर्धारित नीतियों के अनुसार ही शासन का संचालन करती है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनवादी चीन के राष्ट्राध्यक्ष के कार्यों एवं अधिकारों का विवेचन कीजिए।
2. चीन की राज्य परिषद् का संगठन कार्य एवं शक्तियों का विवेचन कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राज्य परिषद् की वास्तविक स्थिति का वर्णन कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जनवादी चीन के राष्ट्रपति का निर्वाचन कौन करता है ?
2. जनवादी चीन के राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष है ?
3. राज्य परिषद् का निर्वाचन कौन करता है ?
4. राज्य परिषद् में कितने सदस्य होते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 33
चीन की न्याय व्यवस्था

संरचना

33.0 उद्देश्य
33.1 प्रस्तावना
33.2 न्याय व्यवस्था की विशेषताएँ
33.2.1 साम्यवादी वैधानिकता का सिद्धान्त
33.2.2 न्यायपालिका पर साम्यवादी दल का नियन्त्रण
33.2.3 लोक उत्तरदायित्व
33.2.4 योग्यताओं का अभाव
33.2.5 समझौते और मध्यस्थता की प्रणाली
33.2.6 कानूनी पेशे का समाजवादीकरण
33.2.7 न्यायालयों की पिरामिड जैसी संरचना
33.2.8 न्यायाधीशों का अल्प कार्यकाल
33.2.9 न्यायिक पुनरावलोकन का अभाव
33.2.10 खुली न्यायिक कार्यवाही
33.2.11 स्थानीय भाषा में कार्य संचालन
33.2.12 नजीरों का प्रयोग नहीं
33.3 चीन के न्यायालयों का संगठन
33.3.1 सर्वोच्च जन न्यायालय
33.3.2 स्थानीय जन न्यायालय
33.3.3 विशेष जन न्यायालय
33.3.4 प्रोक्यूरेटोरेट का पद
33.4 सारांश

33.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत चीन की न्याय व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे कि चीन में न्यायपालिका कार्यपालिका और व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र है अथवा राष्ट्रीय जन कांग्रेस एवं साम्यवादी दल के प्रति उत्तरदायी है।

- न्याय व्यवस्था में लेनिनवाद-माओवाद विचारधारा को समझ सकेंगे,
- चीन में न्याय व्यवस्था की विशेषताओं को समझ सकेंगे,
- न्याय व्यवस्था की उच्च से निम्न स्तर तक की विभिन्न श्रेणियों की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- न्याय व्यवस्था का मूल्यांकन कर सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

33.1 प्रस्तावना

जनवादी चीन की न्याय व्यवस्था, पाश्चात्य न्याय व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है। इसका प्रमुख कारण साम्यवादी कानून और परम्परागत कानून की धारणाओं में आधारभूत अन्तर का होना है। परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार कानून मानवीय आचरण के सार्वभौम नियम है। ये भौतिक दशाओं से स्वतन्त्र और निष्पक्ष होते हैं। इसके विपरीत साम्यवादी मान्यता के अनुसार कानून एक वर्गीय धारणा है और यह वर्ग की वह इच्छा है जो संविधि का रूप धारण कर चुकी हो। पूंजीवादी राज्यों के कानून केवल बुर्जुआ वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व एवं रक्षा करते हैं। इनके माध्यम से सर्वहारा वर्ग का शोषण किया जाता है। इसके विपरीत, साम्यवादी राज्यों में कानून का लक्ष्य सर्वहारा वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व एवं समाजवाद के शत्रुओं से उनकी रक्षा करना है। अत: चीन की न्याय व्यवस्था का स्वरूप वैधानिक न होकर राजनीतिक है।

चीन में न्यायालय, प्रशासन से पृथक् एक स्वतन्त्र निकाय नहीं है अपितु वे उसी की एक भुजा माने जाते हैं। उसकी स्थिति प्रशासन में अन्य अंगों के बराबर नहीं, बल्कि न्यून या कमजोर है। चीन में सर्वोच्च जन न्यायालय से लेकर निम्न से निम्न न्यायालय तक राष्ट्रीय जन कांग्रेस के अधीन है। वह उसी के द्वारा निर्वाचित होती है और उसी के प्रति उत्तरदायी होती है।

33.2 न्याय व्यवस्था की विशेषताएँ

चीन की समस्त राज-व्यवस्था कार्ल मार्क्स, लेनिन और माओ के सिद्धान्तों पर आधारित है, अत: चीन की न्याय-व्यवस्था, विधि और न्याय का आधार भी यही है। स्वाभाविक रूप से यह न्याय-व्यवस्था, पाश्चात्य न्याय व्यवस्था से भिन्न है और इसकी विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है :-

33.2.1 साम्यवादी वैधानिकता का सिद्धान्त - पश्चिमी प्रजातन्त्रीय देशों की मान्यता यह है कि राज्य और कानून समस्त जनता के हितों की रक्षा के साधन होते हैं, लेकिन साम्यवादी विचारधारा के अनुसार राज्य एक ऐसा यन्त्र है, जिसका कार्य एक विशेष प्रकार के सामाजिक संगठन की स्थापना व उसकी रक्षा करना है। उसके विचारानुसार पूँजीवादी सामाजिक संगठन की रक्षा पूँजीवादी राज्य द्वारा ही सम्भव होती है। चूंकि राज्य के कानून राज्य की आज्ञाएं होती हैं, अत: कानून का स्वरूप भी राज्य के स्वरूप के अनुसार ही होता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, ''कानून शक्तिशाली वर्ग की इच्छा मात्र होती है, जिसे अधिनियम का स्तर दे दिया जाता है।''

कानून के स्वरूप के विषय में जो उक्त साम्यवादी मान्यता है, उसी पर साम्यवादी चीन की कानूनी व्यवस्था भी आधारित है। वहाँ इस बात को स्वीकार नहीं किया जाता कि राज्य के आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे से अलग शाश्वत न्याय के किन्हीं सिद्धान्तों पर कोई कानूनी व्यवस्था आधारित हो सकती है। वह वस्तुत: यह मानकर चलती है कि कानून ऐसे होने चाहिए, जिनसे श्रमिकों तथा उनके अधिनायकतन्त्र के हितों की सुरक्षा बनी रहे। अत: साम्यवादी चीन की विधि और न्याय सम्बन्धी धारणा में प्राकृतिक कानून अथवा 'राज्य के विरुद्ध सुरक्षा का व्यक्ति का अधिकार' जैसे विचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ इस विचार को मान्यता प्रदान की गयी है कि कानून सदा ऐसा होना चाहिए, जिससे साम्यवाद की जड़े अधिकाधिक मजबूत हो सकें, चाहे उसके द्वारा व्यक्ति को पूर्णतया राज्य के अधीन क्यों न बना दिया जाए।

33.2.2 न्यायपालिका पर साम्यवादी दल का नियन्त्रण - पश्चिमी प्रजातन्त्रों में शासन के अन्य अंगों से न्यायपालिका की पृथकता और न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता विधि के शासन और नागरिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नितान्त अपरिहार्य समझे जाते हैं और न्यायपालिका को राजनीतिक दबावों से मुक्त रखने के लिए व्यापक व्यवस्था की जाती है। लेकिन साम्यवादी देशों में न्यायपालिका के द्वारा व्यक्ति स्वातन्त्र्य की रक्षा के स्थान पर समाजवादी व्यवस्था के रक्षण का कार्य किया जाता है। पश्चिमी प्रजातन्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि व्यक्ति और राज्य के बीच न्यायोचित संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, लेकिन साम्यवादी विचारधारा, जिसे चीन में स्वीकार किया गया है, यह है कि सरकार जनता की है और शासन के विरूद्ध किया गया कोई भी कार्य जनता के विरुद्ध किया गया कार्य होने के कारण 'क्रान्ति विरोधी' और 'प्रतिक्रियावादी' है और व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका के समान ही न्यायपालिका का भी कर्त्तव्य है कि वे इस प्रकार के क्रान्ति विरोधियों तथा 'प्रतिक्रियावादियों' का दमन करें। अत: न्यायाधीश अराजनीतिज्ञ होने के स्थान पर साम्यवादी दल के प्रमुख सदस्य होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

33.2.3 लोक उत्तरदायित्व – पाश्चात्य राज-व्यवस्थाओं में न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा की जाती है और वे व्यवस्थापिका या कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। लेकिन चीन में न्यायाधीशों के सम्बन्ध में लोक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को अपनाया गया है। अनुच्छेद 128 के अनुसार, ''जन न्यायालय अपने-अपने स्तर पर जन कांग्रेस और उनके स्थायी अंग (स्थायी समिति) के प्रति उत्तरदायी है। विभिन्न स्तरों पर जन कांग्रेस द्वारा जनवादी न्यायालय के अध्यक्षों की नियुक्ति की जाती है और पदच्युति की जा सकती है। व्यवस्थापिका के प्रति न्यायाधीशों का उत्तरदायित्व समाजवादी व्यवस्था वाले देशों का विशिष्ट सिद्धान्त है।

33.2.4 योग्यताओं का अभाव – उदार लोकतान्त्रिक देशों में न्यायाधीशों के लिए संविधान या कानून द्वारा निश्चित योग्यतायें निर्धारित की जाती हैं। परन्तु चीन का संविधान न्यायाधीशों के लिए कोई योग्यतायें निर्धारित नहीं करता। यह कहा जा सकता है कि समाजवादी सिद्धान्तों अथवा मार्क्स-लेनिन-माओ के विचारों में निपुण नागरिकों को ही न्यायाधीश निर्वाचित किया जाता है।

33.2.5 समझौते और मध्यस्थता की प्रणाली – चीन के न्याय प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता समझौते और मध्यस्थता की प्रणाली है। सामान्य किस्म के झगड़ों का निबटारा करने के लिए प्राथमिक न्यायालय के निरीक्षण में 'समझौता समितियाँ' (Conciliation Commissions) स्थापित की जाती है। इन समितियों में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं और ये समितियाँ वादी और प्रतिवादी की सहमति से बहुत बड़े पैमाने पर छोटे-छोटे झगड़ों का निपटारा करती हैं। इससे न्यायालय का कार्यभार कम हो जाता है तथा वादी और प्रतिवादी को भी लाभ पहुँचता है। इन समितियों के निर्णय की अपील न्यायालय में भी की जा सकती है।

33.2.6 कानूनी पेशे का समाजवादीकरण – साम्यवाद की स्थापना के पूर्व कोमिन्तांग शासन व्यवस्था में कानूनी पेशे के लोग सम्पत्तिशाली या अभिजात्य वर्ग से आते थे और इस कारण क्रान्ति के बाद शुरू के दिनों में कानूनी पेशे को शत्रुता की दृष्टि से देखा गया। लेकिन 1954 ई. के दिनों में कानूनी पेशे के प्रति सरकारी दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। कानूनी पेशे से सम्बन्धित नियम बनाये गये और इस पेशे को सहकारी आधार पर गठित करते हुए 'वकील संघों' (Bar Associations) का निर्माण किया गया। इन संघों द्वारा 'कानूनी परामर्शदात्री कार्यालयों' की स्थापना की गयी। इन कार्यालयों की आय को सम्बन्धित वकीलों में उनके कार्य की मात्रा और योग्यतानुसार बाँट दिया जाता है। इस प्रकार कानूनी पेशे के सम्बन्ध में अर्द्ध-सरकारी व्यवस्था को अपनाया गया है।

33.2.7 न्यायालयों की पिरामिड जैसी संरचना – चीन की न्याय-व्यवस्था का संगठन एकीकृत आधार पर किया गया है और 'जनवादी केन्द्रवाद' का सिद्धान्त न्यायपालिका पर भी लागू होता है। संविधान द्वारा सर्वोच्च जन न्यायालय, स्थानीय जन न्यायालय और विशेष न्यायालय इन तीन-स्तरीय ढाँचे को एक ही सूत्र में पिरोया गया है। प्रोक्यूरेटोरियल विभाग किसी न्यायालय में मुकदमा ले जा सकता है और सर्वोच्च जन न्यायालय को स्थानीय न्यायालयों और विशेष न्यायालयों की कार्यवाही के निरीक्षण-नियन्त्रण का अधिकार है। यह व्यवस्था समाजवाद, समाजवादी क्रान्ति और समाजवादी वैधानिकता को सुदृढ़ करने की दृष्टि से अपनायी गयी है।

33.2.8 न्यायाधीशों का अल्प कार्यकाल – पाश्चात्य देशों में न्यायालय की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता को बनाये रखने के लिए न्यायाधीशों के लम्बे कार्यकाल अथवा सेवानिवृति काल तक सेवा करने को आवश्यक समझा जाता है। इन देशों में न्यायधीशों को केवल कदाचार या भ्रष्ट आचरण के आधार पर ही समय से पूर्व पदच्युत किया जा सकता है। परन्तु चीन में न्यायाधीशों का वहाँ की राष्ट्रीय जन काँग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के द्वारा 5 वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचन किया जाता है। कोई भी न्यायाधीश लगातार दो बार से अधिक काल तक अपने पद पर बना नहीं रह सकता है।

33.2.9 न्यायिक पुनरावलोकन का अभाव – चीन की न्यायपालिका स्वतन्त्र नहीं है और उसकी स्थिति भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसे संविधान और कानून की व्याख्या करने की वह शक्ति प्रदान नहीं की गयी है, जो सामान्यतया अन्य राज्यों में प्राप्त होती है। चीन में कानूनों की व्याख्या करने की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान करने के बजाय राष्ट्रीय जन काँग्रेस की स्थायी समिति को प्रदान की गयी है। इस प्रकार न्यायपालिका संविधान में संरक्षक और नागरिक अधिकारों के रक्षक के रूप में कार्य नहीं कर सकती है। न्यायपालिका की स्थिति को कमजोर बनाने वाला एक अन्य तथ्य यह है कि चीन में 'बन्दी प्रत्यक्षीकरण' की व्यवस्था नहीं है।

33.2.10 खुली न्यायिक कार्यवाही – चीनी न्यायाधीश, पूर्व सोवियत संघ के न्यायाधीशों की भांति, एक शिक्षा शास्त्री की भूमिका निभाते है। जनवादी न्यायालयों के अधिवेशन गुप्त रूप से न होकर सब लोगों के सामने होते है। जिन मुकदमों से देश की रक्षा खतरे में पड़ती है, केवल उनकी सुनवाई ही गुप्त रूप से की जा सकती है। वे मुकदमे जो खुले तौर पर होते हैं, उनमें जनता के किसी भी व्यक्ति को न्यायालय में न्यायाधीश के सम्मुख विचार प्रस्तुत करने का अधिकार है। अपराधी को अपनी रक्षा का अधिकार है।

Jain Vishva Bharati Institute/Deemed University/Ladnun

33.2.11 स्थानीय भाषा में कार्य संचालन – संविधान चीन में निवास करने वाली सभी राष्ट्रीयताओं के नागरिकों को न्याय – प्रक्रिया में राष्ट्री– भाषा के प्रयोग का अधिकार देता है। यदि कोई व्यक्ति किसी स्थानीय न्यायालय में प्रयुक्त होने वाली भाषा से अनभिज्ञ है, तो न्यायालय उसके लिए दुभाषिये का प्रबन्ध करता है। क्षेत्रीय या स्थानीय न्यायालयों में कार्यवाही वहाँ की स्थानीय भाषा में चलायी जाती है।

33.2.12 नजीरों का प्रयोग नहीं – पाश्चात्य देशों में न्यायालय नजीरों (न्यायालय के पूर्व के निर्णय) का प्रयोग साक्षी के रूप में करती है। परन्तु चीन में न्यायालय इसका प्रयोग नहीं करते। जहाँ पाश्चात्य देशों में नजीरें न्यायालय के निर्णय को प्रभावित करती हैं और उन्हें विधि का एक स्रोत माना जाता है वहाँ चीन में न्यायालय पूर्व सोवियत संघ के न्यायालय की भांति प्रत्येक विवाद का निपटारा अपने विवेक से करती है। चीन में न्यायालय न्यायिक कार्यवाही के दौरान किन्हीं कानूनी प्रतिमानों को स्थापित नहीं करती। वह पहले से उपस्थित एवं चालू प्रतिमानों का प्रयोग अवश्य करती है। परन्तु वह निर्णयों में कभी सामान्य निर्देश नहीं देती है और न ही सादृश्यता का प्रयोग करती है। वह प्रत्येक मामले में कानून का प्रयोग करती हैं। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि साम्यवादी चीन की न्याय–व्यवस्था पाश्चात्य देशों से आधारभूत विभिन्नता रखती है।

33.3 चीन के न्यायालयों का संगठन

चीन में न्यायिक सत्ता का प्रयोग सर्वोच्च जन न्यायालय और भिन्न–भिन्न स्तरों पर स्थापित जन न्यायालय करते है इन न्यायालयों के अतिरिक्त चीन का संविधान सैनिक न्यायालय और विशेष जन न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था भी करता है, परन्तु गणराज्य की न्यायिक सत्ता का प्रयोग केवल जन न्यायालय ही करते है। इन न्यायालयों की रचना कानून द्वारा निर्धारित की जाती है। प्रत्येक वर्ग के न्यायालय का अपना एक अध्यक्ष होता है, जिनका कार्यकाल 5 वर्ष होता है। सभी स्तर के जन न्यायालय अपने स्तर की जन काँग्रेस और उसके स्थायी निकाय के प्रति उत्तरदायी होते है।

33.3.1 सर्वोच्च जन न्यायालय – सर्वोच्च जन न्यायालय, चीन का सबसे बड़ा न्यायालय है, जिसमें एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा अन्य न्यायाधीश होते है। इसका अध्यक्ष 5 वर्ष के लिए राष्ट्रीय जन काँग्रेस द्वारा निर्वाचित होता है और जन काँग्रेस ही उसे पदच्युत भी कर सकती है। उपाध्यक्ष तथा अन्य न्यायाधीशों को जन काँग्रेस की स्थायी समिति नियुक्त तथा पदच्युत करती है। न्यायाधीशों की संख्या संविधान द्वारा निश्चित नहीं की गयी है। इसमें एक दीवानी विभाग, फौजदारी विभाग तथा कुछ अन्य विभाग होते है।

संविधान में सर्वोच्च जन न्यायालय की शक्तियाँ एवं अधिकार क्षेत्र का विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है। संविधान में केवल इतना ही कहा गया है कि "सर्वोच्च जन न्यायालय उच्चतम न्यायिक संगठन है और यह स्थानीय न्यायालयों और विशेष न्यायालयों के न्यायिक कार्यों की देखरेख करेगा।" सर्वोच्च जन न्यायालय राष्ट्रीय जन कांग्रेस अथवा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी है। उन्हें वह अपने कार्यों की सूचना देता रहता है।

सर्वोच्च जन न्यायालय के मुख्य कार्य एवं शक्तियाँ निम्नलिखित हैं –

(1) उन मामलों में प्राथमिक न्यायालय के रूप में कार्य करना जिन्हें कानून और सविधियों द्वारा इसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रखा गया है।

(2) उन मामलों पर विचार करना जिन पर न्यायालय स्वयं विचार करना चाहती है।

(3) उच्च न्यायालयों और विशेष न्यायालयों के निर्णयों और आदेशों के विरूद्ध अपीलों और विरोधों की सुनवाई करना।

(4) उच्चतम जनवादी प्रोक्यूरेटोरेट के द्वारा 'न्यायिक निरीक्षण की प्रक्रिया' के अनुसार विरोध पत्र (प्रतिवाद) की सुनवाई करना।

(5) सर्वोच्च जन न्यायालय अपने से निम्न न्यायालयों के कार्यों की देखभाल करता है।

33.3.2 स्थानीय जन न्यायालय – स्थानीय जन न्यायालयों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है –

(1) बुनियादी जन न्यायालय – बुनियादी या मूल जन न्यायालय काउण्टी, नगरपालिका एवं जिला स्तर पर स्थापित किये जाते हैं। इस प्रकार के प्रत्येक न्यायालय में एक अध्यक्ष, दो उपाध्यक्ष तथा अन्य न्यायाधीश होते हैं। फौजदारी और दीवानी अभियोगों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की सुनवाई हेतु अलग–अलग न्यायाधीशों की व्यवस्था की जाती है, परन्तु आवश्यक होने पर वे संयुक्त रूप से भी अभियोग सुन सकते है। मूल जन न्यायालय छोटे–छोटे मुकदमों को सुनता और निपटाता है। ऐसे अनेक छोटे–छोटे विवाद भी ये न्यायालय निपटाते हैं, जिनमें मुकदमों की आवश्यकता नहीं होती है। ये न्यायालय समझौता समितियों और अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत न्याय प्रशासन को भी देखभाल करते हैं। अपने कार्यों के लिए यह न्यायालय अपने क्षेत्र की जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होता है।

(2) मध्यवर्ती जन न्यायालय – प्रान्तों, स्वायत्त प्रदेशों, केन्द्रीय सरकार के प्रत्यक्ष रूप से अधीन नगरपालिकाओं और स्वायत्त चाऊ या क्षेत्रों तथा बड़ी नगरपालिकाओं में मध्यवर्ती जन न्यायालय स्थापित किये जाते हैं इस प्रकार के प्रत्येक न्यायालय में एक प्रधान, एक या दो उप–प्रधान, खण्डों के मुख्य न्यायाधीश तथा कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। मध्यवर्ती जन न्यायालय आवश्यकतानुसार फौजदारी, दीवानी तथा अन्य विभाग या खण्ड स्थापित कर सकते हैं। ये न्यायालय आज्ञप्तियों और विधियों द्वारा उनके क्षेत्राधिकार में पड़ने वाले मुकदमें, मूल जन न्यायालय द्वारा भेजे गये मुकदमें अथवा उनके निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार रखते हैं।

(3) उच्चतर जन न्यायालय – प्रत्येक प्रान्त में एक उच्चतर जन न्यायालय की व्यवस्था है। इसमें एक अध्यक्ष, एक या अधिक उपाध्यक्ष, बैंचों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीश होते है। अन्य न्यायालयों की भांति उच्चतर जन न्यायालय में भी एक फौजदारी विभाग और एक दीवानी विभाग होता है तथा आवश्यकतानुसार अन्य विभाग स्थापित किये जा सकते है। ये न्यायालय उन मुकदमों को सुनते हैं, जो कानून के अनुसार इनके मौलिक क्षेत्राधिकार में आते है। ये उन मुकदमों को सुनते हैं, जो निम्न न्यायालयों से इनके पास हस्तान्तरित किये जाते हैं। ये न्यायालय निम्न न्यायालयों के निर्णयों तथा आदेशों के विरुद्ध अपील सुनते है। न्यायिक निरीक्षण की प्रक्रिया के अन्तर्गत यदि जन प्रोक्यूरेटोरेट द्वारा किसी मामले पर कोई आपत्ति उठायी जाये, तो उस मामले पर भी ये विचार करते हैं।

33.3.3 विशेष जन न्यायालय – सैनिक न्यायालय, रेल परिवहन न्यायालय तथा जल परिवहन न्यायालय विशेष जन न्यायालय की श्रेणी में शामिल है। इन सबके संगठन की रूपरेखा राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति निर्धारित करती है। इस प्रकार के न्यायालय प्रशासनिक स्तर पर सर्वोच्च जन न्यायालय के अधीन होते हैं।

33.3.4 प्रोक्यूरेटोरेट का पद – पूर्व सोवियत संघ के संविधान की भांति चीन का वर्तमान संविधान भी एक प्रोक्यूरेट कार्यालय की व्यवस्था करता है। इस कार्यालय के शीर्ष पर प्रोक्यूरेटर जनरल तथा उसके अधीन प्रोक्यूरेटरों की एक श्रृंखला है।

चीन की न्याय व्यवस्था में, पूर्व सोवियत संघ की न्याय व्यवस्था की भांति, पीपुल्स प्रोक्यूरेट एक अद्वितीय (विलक्षण) संस्था हैं। प्रोक्यूरेटर जनरल की शक्तियाँ इतनी विशाल (विस्तृत) और उसकी सत्ता इतनी व्यापक है कि प्रशासन के सभी अंग, सशस्त्र सेनायें, सार्वजनिक संगठन, सभी उद्यम और संगठन तथा नागरिक उसके क्षेत्राधिकार में आ जाते है। अपने निरीक्षणात्मक कार्यों के तहत प्रोक्यूरेट इस बात को सुनिश्चित करता है कि सभी मन्त्रालय, आयोग और सभी स्तरों पर राज्य शक्ति के सभी अंग और सभी पदाधिकारी एवं चीन के नागरिक संविधान और कानून का सही प्रयोग करें और उनका कठोर अनुपालन करें। चीन का प्रोक्यूरेट अपनी शक्ति का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से करता है और किसी भी स्तर पर किसी भी प्रशासनिक अंग, सार्वजनिक संगठन या व्यक्ति को उसके कार्य में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। अपने कर्त्तव्यों के लिए वह राष्ट्रीय जन काँग्रेस और स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी होता है।

सर्वोच्च जन प्रोक्यरेटर के कार्य एवं शक्तियाँ

सर्वोच्च जन प्रोक्यरेटर के कार्य तथा शक्तियों को निम्नलिखित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है–

(1) सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटर भिन्न–भिन्न स्तरों पर स्थापित स्थानीय जन प्रोक्यूरेट्स और विशेष जन प्रोक्यूरेट्स के कार्यों का निर्देशन करता है। उच्च स्तरों पर स्थापित जन प्रोक्यूरेट्स निम्न स्तरों पर स्थापित जन प्रोक्यूरेट्स के कार्यों का निर्देशन करते हैं।

(2) प्रोक्यूरेटर सरकारी विभागों व प्रशासनिक अधिकारियों के आचरण पर भी निगाह रखते हैं।

(3) प्रोक्यूरेट्स फौजदारी मामलों की छानबीन करते हैं, अभियोग चलाते हैं और अभियोग को प्रमाणित करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(4) वे इस बात की देख-रेख करते हैं कि जन न्यायालय की गतिविधियाँ, फौजदारी मामलों में दण्ड की क्रियान्विति और सुधार के प्रभारी विभाग की गतिविधियाँ कानून के अनुरूप हों।

(5) वे उन महत्त्वपूर्ण दीवानी मामलों में कानूनी कार्यवाही करते हैं या हस्तक्षेप करते हैं जो राज्य और नागरिकों के हितों को प्रभावित करते हैं।

(6) प्रोक्यूरेटरों को यह अधिकार है कि वे कानून की अवज्ञा करने वालों के विरुद्ध गिरफ्तारी के वारंट जारी कर सकें।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जनवादी चीन की न्यायिक व्यवस्था में इस पद का अद्वितीय स्थान है।

33.4 सारांश

इस प्रकार जनवादी चीन के सर्वोच्च जन न्यायालय की स्थिति भारत या संयुक्त राज्य अमरीका की तुलना में बहुत अधिक शक्तिहीन या कमजोर है, क्योंकि इसे न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है। इस प्रकार उसके द्वारा संविधान के व्याख्याकार या संरक्षक का कार्य नहीं किया जा सकता है। सर्वोच्च जन न्यायालय राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रति या उसके सत्रावसान काल में स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी होता है। अत: चीन में न्यायपालिका न्यायालय से अधिक एक शिक्षालय है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनवादी चीन की न्याय-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
2. चीनी न्यायपालिका के संगठन का विश्लेषण कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चीनी स्थानीय जन न्यायालयों का संगठन और कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. विशेष जन न्यायालय के प्रमुख कार्य बताइये।
3. चीन के प्रोक्यूरेटर पद पर टिप्पणी कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सर्वोच्च जन न्यायालय का संगठन कैसे होता है ?
2. चीन में स्थानीय जन न्यायालय कितने प्रकार के हैं ?
3. चीन में प्रोक्यूरेटरों के प्रमुख कार्य बताइये।
4. चीन में कितने प्रकार के न्यायालय हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 34
लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण

संरचना

34.0 उद्देश्य

34.1 प्रस्तावना

34.2 लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण का अर्थ

34.3 सम्यवादी दल और लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण

34.4 सारांश

34.0 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर के आप यह समझ सकेंगे कि

- आज विश्व के बदलते परिदृश्य के पश्चात् भी चीन में लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण की क्या प्रासंगिकता है ?
- 1982 ई. के संविधान में लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण की स्थिति को समझ सकेंगे।

34.1 प्रस्तावना

पूर्व सोवियत संघ के साम्यवादी दल की तरह चीन का साम्यवादी दल भी पूर्ण केन्द्रीकृत और कठोर, अनुशासनयुक्त और एकाधिकार पूर्ण संगठन है, जो लोकतन्त्रात्मक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता है। इसके अन्तर्गत दल के सभी पदाधिकारियों का निर्वाचन होता है और प्रत्येक स्तर पर नीति निर्धारण में सदस्यों को भाग लेने और अपना मत प्रकट करने का अधिकार है, कम से कम जब तक कि कोई निर्णय न लिया जाए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सदस्य को दलीय नीति की आलोचना करने का भी अधिकार है। इन लोकतन्त्रीय तत्त्वों के साथ दल में केन्द्रवादी तत्त्व भी हैं जिनके अनुसार उच्चतर दलीय उपकरणों के निर्णय निम्नस्तर दलीय निकायों को सदैव ही मान्य होते हैं। व्यवहार में, दल के अन्तर्गत केन्द्रीकरण अधिक है, और लोकतन्त्र कम।

34.2 लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण का अर्थ

लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण दो परस्पर विरोधी शब्दों लोकतन्त्र और केन्द्रीकरण से मिलकर बना है। दोनों शब्द भिन्न-भिन्न विचारों, सिद्धान्तों एवं मूल्यों को प्रकट करते हैं। लोकतान्त्रिक शासन से जनता की प्रत्यक्ष साझेदारी नियतकालिक एवं प्रतियोगी निर्वाचन, सीमित और उत्तरदायी शासन, सत्ता के विकेन्द्रीकरण, शासन की निम्न इकाइयों की संवैधानिक स्वायत्तता आदि प्रकट होती है, जबकि केन्द्रीकरण में शक्तियों के केन्द्रीकरण, कड़े अनुशासन, पिरामिड एवं श्रेणीबद्ध शासन, अनुत्तरदायी शासन, शासन की निम्न इकाइयों की उच्च इकाइयों के समक्ष अधीनता आदि का अभ्यास होता है। केन्द्रीकरण में शासन की निम्न इकाइयों की कोई संवैधानिक स्वायत्तता नहीं होती और यदि केन्द्रीय इकाइयों अथवा कानून द्वारा उन्हें कुछ स्वायत्तता प्रदान की जाती है तो वह उस समय तक ही रहती है जब तक शासन की उच्च इकाइयाँ उन पर प्रतिबन्ध नहीं लगा देती। ऑग और जिंक के अनुसार लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण का अर्थ है कि ''स्थानीय इकाइयाँ उस समय तक अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकती हैं जब तक उनके उच्चतर शासन के उपकरण उनके कार्यों पर अपत्ति न करें।''

लोकतन्त्र और केन्द्रीकरण परस्पर विरोधी मूल्य है, फिर भी जनवादी चीन की राजनीतिक व्यवस्था में इन्हें मिलाने का प्रयास किया गया है। चीन की राष्ट्रीय जन काँग्रेस और निम्न स्तरों पर स्थापित की गयी जन कांग्रेसों के पारस्परिक सम्बन्ध, साम्यवादी दल के उच्च और निम्न निकायों के सम्बन्ध लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित हैं। यह चीन की राजनीतिक व्यवस्था का मूलाधार है। यह सर्वत्र व्याप्त है। यह सभी राजकीय और पार्टी निकायों के संगठन और कार्य का आधार है। यह एक निर्देशक सिद्धान्त है जिसे बड़ी कड़ाई और सावधानी से लागू किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

34.3 चीन का साम्यवादी दल और लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण

चीन के साम्यवादी दल के संगठनात्मक ढाँचे का निर्देशक सिद्धान्त लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण है। पार्टी संगठन में इस सिद्धान्त को निम्नलिखित अर्थों में प्रयोग किया जाता है।

(1) निम्न से निम्न स्तर से लेकर उच्च से उच्च स्तर तक पार्टी की सभी नेतृत्वकारी संस्थाओं का निर्वाचन।

(2) निम्न संस्थाओं की अपने से उच्च संस्थाओं के प्रति नियतकालिक जवाबदेही अर्थात् निम्नस्तरीय संस्थायें अपने कार्य सम्बन्धी रिर्पोट पार्टी की उच्च स्तरीय संस्थाओं को नियमित रूप से भेजती है।

(3) कठोर पार्टी अनुशासन और अल्पमत द्वारा बहुमत की बात को मानना अर्थात् अल्पमत बहुमत के निर्णय को मानने के लिए बाध्य है।

(4) निम्न स्तरीय संस्थाओं द्वारा उच्च स्तरीय संस्थाओं के निर्णयों का बाध्यकारी अनुपालन अर्थात् उनके लिए उच्च स्तरीय संस्थाओं के निर्णयों का अनुपालन करना अनिवार्य है।

साम्यवादी दल के सभी स्तरों पर नीति के मुद्दों पर विचार-विमर्श की स्वतन्त्रता दी जाती है, वाद-विवाद को प्रोत्साहन दिया जाता है, मुद्दों के पक्ष और विपक्ष में विचार प्रकट किये जाते हैं और आलोचना प्रति-आलोचना को स्वीकार किया जाता है परन्तु इन सब की स्वतन्त्रता उस समय तक दी जाती है जब तक निर्णय नहीं लिया जाता। जब मतदान द्वारा बहुमत की राय का पता लग जाता है और निर्णय ले लिया जाता है तो केन्द्रीकरण अर्थात् पार्टी अनुशासन और सर्वसत्तावाद का आगमन हो जाता है। निर्णय लेने के बाद विरोध को जारी रखना या विमत प्रकट करना न केवल अनुचित और अनुशासनहीनता है बल्कि यह एक जघन्य (घोर) अपराध है जिसका कड़ाई से दमन होना चाहिए। दल के अन्दर किसी भी प्रकार की अराजकता, गुटबन्दी या दबाव समूहों की रचना की आज्ञा नहीं दी जाती। अनुशासन भंग करने वाला दण्ड का भागी होता है। साम्यवादी दल समष्टि अर्थात् एक व्यक्ति की तरह कार्य करता है।

अनुशासन के सम्बन्ध में पार्टी का संविधान सदस्यों को स्पष्ट निर्देश देता है कि ''वे बिना शर्त पार्टी के निर्णयों का पालन करें। पार्टी के सदस्य पार्टी संगठन की आज्ञाओं का पालन करें, अल्पमत बहुमत का पालन करें, पार्टी के निम्न स्तरीय अंग पार्टी के उच्च स्तरीय अंगों की आज्ञाओं का पालन करें और देश में सभी स्तरों पर स्थित पार्टी के घटक राष्ट्रीय दल कांग्रेस और केन्द्रीय समिति की आज्ञाओं का पालन करें।''

34.4 सारांश

चीन के संविधान की उपर्युक्त व्यवस्था से स्पष्ट है कि वहाँ नीचे से लेकर ऊपर तक राज्य-सत्ता के सभी निकाय (जन काँग्रेसें) निर्वाचित होती हैं। वे जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं। निम्न निकायों का यह उत्तरदायित्व है कि वे उच्चतर निकायों के निर्णयों को स्वीकार करें अर्थात् निम्न इकाइयों के लिए उच्चतर इकाइयों के निर्णयों का पालन करना अनिवार्य है। लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त में केन्द्रीय नेतृत्व को स्थानीय पहलकदमी और रचनात्मक कार्यों के साथ और प्रदत्त कार्य के लिए प्रत्येक राजकीय निकाय और पदाधिकारी के उत्तरदायित्व के साथ मिलाया गया है। इस प्रकार चीन की राजनीतिक व्यवस्था एक साथ लोकतान्त्रिक और केन्द्रीकृत है। ऐसा अनूठा समन्वय अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनवादी चीन में 'लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद' की व्यवस्था पर एक टिप्पणी लिखो।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चीन के साम्यवादी दल और लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण में सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण से क्या तात्पर्य है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 35

साम्यवादी दल

संरचना

35.0 उद्देश्य

35.1 प्रस्तावना

35.2 साम्यवादी दल का उदय और विकास

35.3 साम्यवादी दल की सदस्यता

35.4 साम्यवादी दल की विशेषताएँ

35.4.1 संविधान में उल्लेख

35.4.2 सदस्यता के कठोर नियम एवं आज्ञापालन

35.4.3 निश्चित् उद्देश्य

35.4.4 सत्ता का सर्वोच्च केन्द्र

35.4.5 लोकतन्त्रात्मक केन्द्रीकरण

35.5 साम्यवादी दल का संगठन

35.5.1 प्रारम्भिक संगठन सेल

35.5.2 केन्द्रीय समिति

35.5.3 पॉलिट ब्यूरो

35.5.4 सचिवालय

35.5.5 दल नियन्त्रण आयोग

35.6 सारांश

35.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत चीनी साम्यवादी दल का संगठन एवं भूमिका का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- साम्यवादी दल का उदय एवं विकास समझ सकेंगे,
- साम्यवादी दल की विशेषताऐं समझ सकेंगे,
- वर्तमान में साम्यवादी दल की वास्तविक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

35.1 प्रस्तावना

जनवादी चीन में साम्यवादी दल का अत्यधिक महत्त्व है। चीनी जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं जिस पर दल का नियन्त्रण न हो अथवा जिसका वह निर्देशन या निरीक्षण न करता हो। सरकारी ढाँचा, उसके सभी-निकाय और अन्य सभी सार्वजनिक संगठन (ट्रेड यूनियन, युवा कम्युनिस्ट लीग, आदि) साम्यवादी दल के सहायक संगठन हैं। ये सब इसके कार्यों के निष्पादन और उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हैं। जहाँ उदारवादी देशों में राजनीतिक दल संविधान से बाहर रहकर काम करते हैं, वहाँ साम्यवादी देशों में राजनीतिक दल संविधान के अभिन्न अंग होते है। 1982 ई. के संविधान की प्रस्तावना में यह इंगित किया गया है कि साम्यवादी दल सम्पूर्ण चीनी जनता का नेतृत्व करने वाला केन्द्रीय अंग है।

चीन की राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत विधायी क्षेत्र की सर्वप्रमुख संस्था राष्ट्रीय जन काँग्रेस और कार्यपालिका क्षेत्र की सर्वप्रमुख संस्था राज्य परिषद् है। 1982 ई. के संविधान द्वारा इन दोनों ही संस्थाओं पर साम्यवादी दल के नेतृत्व को स्वीकार किया गया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। संविधान में कहा गया है कि ''राष्ट्रीय जन कांग्रेस चीन के साम्यवादी दल के नेतृत्व में चीन की राज्य सत्ता का उच्चतम अंग है।'' राष्ट्रीय जन काँग्रेस चीन के साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति के सुझाव पर राज्य परिषद् के प्रधानमंत्री और अन्य सदस्यों की नियुक्ति तथा पदच्युति करती है।

चीन में भी पूर्व सोवियत संघ की भांति साम्यवादी दल और शासन में अन्तर करना कठिन है और दोनों के बीच विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। इन दोनों ही देशों में दल ही वास्तविक शासन शक्ति है और विभिन्न शासकीय संस्थाएँ दल की नीति को क्रियान्वित करने के साधन मात्र हैं। साम्यवादी दल के पोलिट् ब्यूरो के एक सदस्य तुंग पीवू ने स्पष्टतया घोषित किया था कि ''क्रान्ति का नेतृत्व करने, सत्ता प्राप्त करने और लोकतन्त्रात्मक अधिनायकवाद की स्थापना करने में साम्यवादी दल राज्य के अंगों का निर्देशक दल बन गया है।''

प्रशासकीय नीति से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्न चाहे वे आन्तरिक प्रशासन से सम्बन्धित हों चाहे वैदेशिक सम्बन्धों से, पहले दल के उच्चतम अंगों में निश्चित किये जाते हैं और बाद में वे राज्य के अंगों द्वारा घोषित किये जाते व क्रियान्वित किये जाते हैं। शेन यू डाई के शब्दों में, ''चीनी शासन पर चीन के साम्यवादी दल का पूर्ण नियन्त्रण आधुनिक सर्वसत्तावादी राजनीति का सर्वाधिक विस्मयकारी तथ्य है।'' न केवल सामान्य प्रशासन, वरन् न्यायपालिका और सेना पर भी साम्यवादी दल का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। चीन में न्यायपालिका सरकार की एक स्वतन्त्र शाखा न होकर, सामान्य प्रशासन का एक अंग मात्र है, जिसका सर्वप्रथम कार्य व्यक्तियों को समाजवाद के ढाँचे में ढालना है, सर्वोच्च जन न्यायालय के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, अन्य न्यायाधीश और प्रोक्यूरेटोरेट सभी साम्यवादी दल के सक्रिय सदस्य होते हैं। सेना पर भी साम्यवादी दल का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। केन्द्रीय सैनिक आयोग के सदस्य दल के सक्रिय सदस्य होते है। सैनिक यूनिटों में भी पार्टी की यूनिटें होती है। नवीन संविधान के द्वारा तो सेना पर दल के नियन्त्रण को औपचारिक मान्यता भी प्रदान की गई है। इस संविधान के अनुसार, ''चीन की मुक्ति सेना और जन सेना पर चीन के साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति के अध्यक्ष को देश के समस्त सशस्त्र बलों पर नेतृत्व की स्थिति प्राप्त है।'' इस प्रकार अब चीन की राजनीतिक व्यवस्था में साम्यवादी दल तथा उसके अध्यक्ष को औपचारिक और कानूनी रूप में वह स्थिति प्राप्त हो गयी है जो स्थिति उसे सोवियत रूस अथवा अन्य किसी साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्था में प्राप्त नहीं थी।

साम्यवादी दल के एकछत्र नियन्त्रण के सम्बन्ध में वार्ड और मैकरीडीज का कथन है। कि ''चीन की राजनीति में साम्यवादी दल ही नीति निर्धारित करने वाला और उसे कार्य रूप में परिणित करने वाला केन्द्र है, जो सत्ता के एकाधिकार में किसी भी प्रतियोगी को सहन नहीं करता। शासन और समाज में सभी प्रमुख पदों पर इसके सदस्य आसीन हैं। इसका दर्शन ही एकमात्र सरकारी तौर पर प्रचारित दर्शन है, जो सदस्यों और असदस्यों सभी के लिए समान रूप से मान्य है। यद्यपि दल और शासन एकरूप नहीं है, परन्तु व्यवहार में, साम्यवादी दल ही शासन पर अपना एकाधिकारपूर्ण प्रभुत्व कायम किये हुये हैं।'' इस प्रकार साम्यवादी दल के द्वारा चीन की समस्त शासन व्यवस्था पर एकाधिकारपूर्ण नियन्त्रण रखा जाता है। साम्यवादी दल ही वास्तविक शासक है।

35.2 साम्यवादी दल का उदय और विकास

चीन में साम्यवादी विचारधारा का उद्भव एवं विकास 1920 ई. के बाद से माना जा सकता है। 1920 ई. में एक चीनी शिक्षक चेन–ट्यू–स्यू ने मार्क्सवाद के प्रचार एवं प्रसार के लिए एक संस्था की स्थापना की थी। चीन के साम्यवादी दल का गठन 1921 ई. में हुआ। इसी वर्ष शंघाई में साम्यवादी दल का प्रथम सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में कुल 13 सदस्यों ने भाग लिया जिनमें से कुछ अराजकतावादी, कुछ परिवर्तनवादी तथा शेष मार्क्सवादी थे।

1925 ई. में इस दल की सदस्य संख्या में कुछ वृद्धि होना प्रारम्भ हुई। लेकिन दल के प्रारम्भिक नेता चेन नूशे और ली ली सान इसे सफल नेतृत्व प्रदान नहीं कर सके और साम्यवादी दल के पतन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। 1933 में जब इस दल का नेतृत्व माओत्से तुंग के हाथ में आया, तभी से इसकी शक्ति में वृद्धि होना प्रारम्भ हुआ। जापान के विरुद्ध युद्ध के कारण कोमिन्तांग दल और साम्यवादी दल में सहयोग प्रारम्भ हुआ और इस बात ने साम्यवादी दल को अपनी स्थिति मजबूत करने का सुअवसर दिया। परिणामत: द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति तक दल के सक्रिय सदस्यों की संख्या 10 लाख हो गयी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कोमिन्तांग दल और साम्यवादी दल ने भ्रष्ट और प्रतिक्रियावादी कोमिन्तांग शासन के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा। मुक्ति युद्ध के वर्षों (1945–49) में इसकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शक्ति में बहुत तेजी से वृद्धि हुई और 1949 ई. में जबकि चीन की मुख्य भूमि की शासन सत्ता इसके हाथ में आयी, उस समय तक इसके सदस्यों की संख्या 45 लाख हो गयी। उसके बाद साम्यवादी दल की शक्ति में और भी तेजी से वृद्धि होती गई और चीन की मुख्य भूमि पर कम्युनिस्टों का शासन स्थापित हो गया। बीसवीं सदी के आठवें–नवें दशक में चीन के साम्यवादी दल ने विश्व की सबसे बड़ी राजनीतिक शक्ति की स्थिति को प्राप्त कर लिया है।

35.3 साम्यवादी दल की सदस्यता

चीन के साम्यवादी दल की नियमावली के अनुसार चीन का कोई भी नागरिक जो (1)– 18 वर्ष की आयु ग्रहण कर चुका है, (2) कार्य करता है और दूसरे के श्रम का शोषण नहीं करता, पार्टी का सदस्य बन सकता है। परन्तु किसी भी नागरिक को पार्टी का सदस्य तब तक नहीं बनाया जाता जब तक पार्टी के दो पूर्ण सदस्य उसके नाम की सिफारिश नहीं कर देते। यदि पार्टी की शाखा और अगली पार्टी समिति उसके नाम को स्वीकर कर लेती है तो उसे एक वर्ष अस्थायी स्थिति या परीक्षा काल में रखा जाता है। इस काल में जहाँ उसे ''प्रारम्भिक शिक्षा'' दी जाती है वहाँ उसकी राजनीतिक योग्यताओं को बड़ी सावधानी से परखा जाता है। इस परीक्षा काल में सफल होने के बाद उसे उस समूह का पूर्ण सदस्य बना दिया जाता है जिसने उसकी अस्थाई स्थिति को स्वीकार किया होता है।

सदस्यों की भर्ती के बाद उन्हें पूर्णरूपेण प्रशिक्षित किया जाता है, उनके आचरण पर कड़ी दृष्टि रखी जाती है और उनकी योग्यता के अनुसार उनकी दल में पदोन्नति होती है। हैराल्ड हिण्टन का विचार है कि ''दल की एकता और अनुशासन की भावना पर चीनी साम्यवादी दल में विशेष ध्यान दिया जाता है। त्रुटियाँ करने पर सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाहियाँ की जाती हैं और अपराध के अनुसार उन्हें दण्डित किया जाता है। चेतावनी से लेकर दल के निष्कासन तक दण्ड के भिन्न–भिन्न स्वरूप हैं। गम्भीर अपराध के लिए जन न्यायालय की सहायता से सदस्यों को दण्डित करता है।''

35.4 साम्यवादी दल की विशेषताएँ

जनवादी चीन के साम्यवादी दल की निम्नांकित विशेषताएँ है :–

35.4.1 संविधान में उल्लेख – चीन के संविधान में साम्यवादी दल का स्पष्ट उल्लेख है। 1954 ई. के संविधान में साम्यवादी दल की भूमिका का कोई उल्लेख नहीं था, लेकिन 1975 के संविधान द्वारा शासन में दल की नेतृत्वकारी भूमिका को स्पष्टतया स्वीकार कर लिया गया था। इस संविधान के अनुच्छेद 2 में कहा गया है, ''चीन के साम्यवादी दल को चीन की समस्त जनता की नेतृत्वकारी स्थिति प्राप्त है। श्रमजीवी वर्ग राज्य पर अपना नेतृत्व अपने अग्रणी साम्यवादी दल के माध्यम से ही रखता है।''

1982 ई. के नये संविधान की प्रस्तावना में साम्यवादी दल के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। और कहा गया है कि ''चीन के साम्यवादी दल के नेतृत्व में चीनी जनता समाजवादी मार्ग का अनुसरण करती रहेगी।''

35.4.2 सदस्यता के कठोर नियम एवं आज्ञापालन – साम्यवादी दल की सदस्यता के कठोर नियम है। इसकी सदस्यता सीमित है। इसका प्रमुख कारण यह है कि दल के सदस्यों की भर्ती बड़े कठोर नियमों के अनुसार की जाती है और सदस्यों के लिए वफादारी के स्तर बहुत कड़े हैं। साम्यवादी दल के सदस्य केवल वे ही व्यक्ति बन सकते हैं जो साम्यवादी सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान रखते हैं, उनमें आस्था रखते हैं और उनके अनुसार काम करने को उत्सुक रहते है।

चीन में आज्ञा की उल्लंघना को अर्थात् अनुशासनहीनता को एक घोर (जघन्य) अपराध समझा जाता है। दल के सामान्य कार्यक्रम में इस वाक्य को बार–बार दोहराया गया है कि ''पार्टी एक एकीकृत लड़ाकू संगठन है जो अनुशासन द्वारा जुड़ी हुई हैं और जो अनुशासन सभी सदस्यों पर बाध्यकारी है।'' ऐसा कठोर अनुशासन केवल निरंकुश राज्यों की दलीय व्यवस्था में ही देखा जा सकता है।

35.4.3 निश्चित उद्देश्य – साम्यवादी दल के निश्चित उद्देश्य हैं। यह मार्क्स, लेनिन एवं माओ के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसका उद्देश्य वर्ग विहीन साम्यवादी समाज निर्मित करना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

35.4.4 सत्ता का सर्वोच्च केन्द्र – जनवादी चीन के शासन में साम्यवादी दल का सर्वोच्च स्थान है। वहाँ दल ही राष्ट्र का वास्तविक शासक है, शासन की अन्य समस्त संस्थाएँ इसके अधीन हैं तथा अपनी नीतियों से नागरिकों को नियंत्रित करते हुए उन्हें राज्य के प्रति निष्ठावान बनाता है। दूसरे शब्दों में, राज्य के प्रति निष्ठा, दल के प्रति निष्ठा व्यक्त करता है।

35.4.5 लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण – यह साम्यवादी सिद्धान्त का मूलाधार है। विश्व में जहाँ कहीं भी साम्यवादी सिद्धान्त को अपनाया गया है वहाँ लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त को सभी स्तरों पर सरकार, पार्टी, सामाजिक स्तरों पर बड़ी कड़ाई और सावधानी से लागू किया जाता है। इसके अन्तर्गत दल के सभी पदाधिकारियों का निर्वाचन होता है और प्रत्येक स्तर पर नीति निर्धारण में सदस्यों को भाग लेने और अपना मत प्रकट करने का अधिकार है, कम से कम जब तक कि कोई निर्णय न लिया जाए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सदस्य को दलीय नीति की आलोचना करने का भी अधिकार है। इन लोकतन्त्रीय तत्त्वों के साथ दल में केन्द्रवादी तत्त्व भी हैं, जिनके अनुसार उच्चतर दलीय उपकरणों के निर्णय निम्नस्तर दलीय निकायों को सदैव ही मान्य होते हैं। व्यवहार में, दल के अन्तर्गत केन्द्रीयकरण अधिक है और लोकतन्त्र कम। दल के सदस्यों में मतों और कार्यों पर केन्द्रीय नेतृत्व का पूर्ण नियन्त्रण रहता है।

35.5 साम्यवादी दल का संगठन

चीन के साम्यवादी दल का संगठनात्मक ढाँचा एक पिरामिड की तरह है जो निम्न स्तर पर अत्यधिक व्यापक और शीर्ष पर अत्यधिक सूक्ष्म (एक नेता या महासचिव) है। इसके संगठन के मुख्य पहलू निम्नलिखित प्रकार से हैं –

35.5.1 प्रारम्भिक संगठन सेल – चीन में साम्यवादी दल के सबसे निचले स्तर पर स्थानीय सेल हैं। ये सेल काम के सभी स्थलों पर विद्यमान हैं। ये दल के बुनियाद हैं, उसके लिए रीढ़ की हड्डी है। ये कार्य स्थलों पर पार्टी और सरकार की आँखें है। ये ऐसे सम्पर्क स्थल हैं जिनके माध्यम से दल समाज के निम्न से निम्न स्थान और साधारण से साधारण व्यक्ति तक पहुँचता है।

पार्टी की प्रारम्भिक शाखायें (सेल) काउण्टी या म्युनिसिपल पार्टी कांग्रेस के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करती हैं। काउण्टीज प्रादेशिक कांग्रेस को और ये काँग्रेस राष्ट्रीय कांग्रेस को चुनती है। 'राष्ट्रीय दल काँग्रेस' के सदस्यों की संख्या 1000 है। संविधान के अनुसार राष्ट्रीय काँग्रेस के कार्य और उसकी शक्तियाँ सर्वोच्च सत्ताधारी अंग जैसी हैं, जिनमें ये प्रमुख हैं –केन्द्रीय समिति का चुनाव, दल के संविधान और कार्यक्रम को दोहराना तथा उनमें आवश्यक संशोधन करना, चालू नीति के मुख्य प्रश्नों का निर्णय करना और विभिन्न अंगों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को स्वीकार करना।

35.5.2 केन्द्रीय समिति – राष्ट्रीय दल काँग्रेस का एक बड़ा निकाय है और आवश्यकता होने पर शीघ्रता के साथ उसकी बैठक आमन्त्रित भी नहीं की जा सकती। अतः राष्ट्रीय काँग्रेस की एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की गयी है। जिसका निर्वाचन राष्ट्रीय दल काँग्रेस करती है। यह अपेक्षाकृत छोटा निकाय है। जिसके सदस्यों की संख्या वर्तमान समय में 201 है तथा जिसमें 73 वैकल्पिक सदस्य होते हैं।

दल के संविधान के अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि जब राष्ट्रीय दल काँग्रेस का अधिवेशन न हो रहा हो, तो यह समिति दल का संचालन करेगी। केन्द्रीय समिति केन्द्रीय राजनीतिक ब्यूरो, सचिवालय एवं दल नियन्त्रण आयोग का निर्वाचन करती है।

35.5.3 पॉलिट ब्यूरो – यह केन्द्रीय समिति की तुलना में छोटा निकाय है जिसकी सदस्य संख्या वर्तमान समय में 23 है। यह अत्यन्त प्रभावी और महत्त्वपूर्ण अंग है जो दल के संगठन को संचालित करता है। पोलिट ब्यूरो दल की केन्द्रीय समिति के अधिवेशन आमन्त्रित करता है और अपने निर्णयों को उसके पास भेजता है।

परन्तु पोलिट ब्यूरो में भी अन्तिम शक्ति 7 सदस्यों की स्थायी समिति में केन्द्रित होती है। जिसमें पार्टी के सर्वोच्च नेता होते हैं। केन्द्रीय समिति को 'दल का मस्तिष्क' कहा जाता है।

35.5.4 सचिवालय – सचिवालय नीति को लागू करने वाली संस्था है। इसमें 8 नियमित और 3 वैकल्पिक सदस्य होते है और दल का महासचिव इसका अध्यक्ष होता है। यह प्रतिदिन दल के केन्द्रीय अंगों, ब्यूरो एवं समितियों द्वारा दल के कार्य संचालन के विषय में निर्देश देता रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

35.5.5 दल नियन्त्रण आयोग – यह भी केन्द्रीय समिति का एक अंग है जिसमें 17 नियमित और 4 वैकल्पिक सदस्य होते हैं। दल नियन्त्रण आयोग का कार्य यह देखना है कि दल की नीतियों और आदेशों का ठीक से सभी अंग पालन कर रहे हैं अथवा नहीं। इसके द्वारा अनुशासन सम्बन्धी मामलों पर विचार कर अनुशासन लागू करने के लिए आवश्यक कदम उठाये जाते हैं। दल के सदस्यों की शिकायतों और अपीलों को निपटाने की शक्ति इस आयोग को सौंपी गयी है।

35.6 सारांश

चीन के साम्यवादी दल की भूमिका अत्यधिक व्यापक, महत्त्वपूर्ण और निर्णायक है। इसकी शक्ति निर्बाध और असीमित है। यह देश के शासन की धुरी एवं चीनी जीवन की प्रेरक शक्ति है। देश के शासन और चीनी जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र या पहलू नहीं जिसमें इसका प्रभाव नहीं अथवा जिसमें इसके प्रभाव को महसूस नहीं किया जाता। यह ''चीन के सम्पूर्ण लोगों के अग्रणी भाग का सार तत्त्व है'' और ''श्रमिक वर्ग राज्य पर अपनी नेतृत्वकारी भूमिका को चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के अग्रणी दस्ते के माध्यम से निभाता है।'' इस प्रकार साम्यवादी दल अन्तिम राजनीतिक सत्ता और सभी निर्णयों का स्रोत है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनवादी चीन में साम्यवादी दल की संरचना और उसकी भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. जनवादी चीन के साम्यवादी दल की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. साम्यवादी दल की सदस्यता के लिए आवश्यक शर्तों का वर्णन कीजिए।
2. प्रारम्भिक संगठन (सेल) की रचना कैसी होती है ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चीन में प्रमुख राजनीतिक दल कौनसा है ?
2. पॉलिटब्यूरो की रचना कैसे होती है ?
3. केन्द्रीय समिति का प्रमुख कार्य बताइयें।
4. दल नियन्त्रण आयोग का संगठन कैसे होता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. बी. एल. फड़िया – ''प्रमुख राज व्यवस्थाएँ,'' कॉलेज बुक हाऊस, चौड़ा रास्ता, जयपुर
डॉ. पुखराज जैन – ''आधुनिक शासन व्यवस्थाएँ,'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
वीरकेश्वर प्रसाद सिंह – विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना
पी. के. चड्ढ़ा – आदर्श प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
डॉ. प्रभूदत्त शर्मा – ''संविधानों की दुनिया,'' कॉलेज बुक डिपो, जयपुर
पी. के. श्रीवास्तव – ''विश्व के प्रमुख संविधान,'' रंजन प्रकाशन गृह, नई दिल्ली
डॉ. इकबाल नारायण – ''विश्व के प्रमुख संविधान''
आर. सी. अग्रवाल – ''विश्व के प्रमुख संविधान''
ए. सी. कपूर – ''आधुनिक संविधान''

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्नातक (द्वितीय वर्ष)

विषय : राजनीति शास्त्र

द्वितीय पत्र : आधुनिक संविधान

संवर्ग

संवर्ग–1 ब्रिटेन का संविधान : विशेषताएँ, अभिसमय, राजा का पद, शक्तियाँ और स्थिति – राजा और मुकुट, प्रधानमंत्री एवं मंत्रि परिषद्, संसद – कॉमन सभा तथा लॉर्ड सभा: संगठन, शक्तियाँ, संसद एवं प्रधानमंत्री, स्पीकर, विधि निर्माण की प्रक्रिया, सिविल सेवा, राजनीतिक दल।

संवर्ग–2 अमेरिका का संविधान : विशेषताएँ एवं स्वरूप, राष्ट्रपति, चुनाव, शक्तियाँ, संघीय व्यवस्था का स्वरूप, शक्ति पृथक्करण तथा नियन्त्रण एवं सन्तुलन। कांग्रेस – प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट, शक्तियाँ, सीनेट का महत्त्व। संघीय न्यायपालिका की शक्तियाँ – न्यायिक पुनरावलोकन, राजनीतिक दल।

संवर्ग–3 स्विट्जरलैण्ड का संविधान : संविधान की विशेषताएँ, संघीय व्यवस्था की विशेषताएँ, संघीय विधान सभा, संघीय परिषद्, संघीय न्यायपालिका, स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र।

संवर्ग–4 जापान का संविधान : संविधान की विशेषताएँ, सम्राट का पद एवं उसकी शक्तियाँ, प्रधानमंत्री एवं मन्त्रि परिषद्, डायट (संसद के दोनों सदन) संगठन एवं शक्तियाँ, नागरिकों के अधिकार एवं कर्त्तव्य।

संवर्ग–5 साम्यवादी चीनी गणतन्त्र : संविधान के विशिष्ट लक्षण, व्यवस्थापिका कार्यपालिका एवं न्यायपालिका – संगठन एवं शक्तियाँ। चीन में लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण। साम्यवादी दल – संगठन एवं भूमिका।

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. पी.सी. भाटी**
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
2. **प्रो. रमेश दाधीच**
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **प्रो. बेला भणोत**
   बीकानेर
4. **डॉ. धर्मचंद जैन**
   भीलवाड़ा
5. **डॉ. जुगल दाधीच**
   जैन विश्वभारती संस्थान,लाडनूँ

लेखक
डॉ. जुगलकिशोर दाधीच

संपादक
प्रो. धर्मचन्द जैन

कॉपीराइट
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 2100

प्रकाशक
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ–341 306 (राजस्थान)

Printed at
M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विषय - सूची

क्र. सं.	इकाई	पृष्ठ-संख्या
1.	ब्रिटेन का संविधान	01—09
2.	अभिसमय	10—13
3.	राजा का पद - राजा और मुकुट	14—21
4.	ब्रिटिश मन्त्रि परिषद्	22—29
5.	ब्रिटिश प्रधानमंत्री	30—33
6.	संसद - कॉमन सभा तथा लॉर्ड सभा	34—44
7.	संसद एवं प्रधानमंत्री	45—47
8.	ब्रिटेन में स्पीकर का पद	48—50
9.	ब्रिटेन में विधि-निर्माण की प्रक्रिया	51—55
10.	सिविल सेवा	56—61
11.	राजनीतिक दल	62—66
12.	अमेरिका का संविधान	67—72
13.	अमेरिकी राष्ट्रपति	73—80
14.	अमेरिका की संघीय व्यवस्था का स्वरूप	81—84
15.	शक्ति पृथक्करण तथा नियंत्रण एवं सन्तुलन का सिद्धान्त	85—88
16.	कॉंग्रेस - प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट	89—98
17.	संघीय - न्यायपालिका की शक्तियाँ-न्यायिक पुनरावलोकन	99—103
18.	राजनीतिक दल	104—108
19.	स्विट्जरलैण्ड का संविधान	109—114
20.	स्विस संघीय व्यवस्था	115—118
21.	संघीय विधान सभा	119—125
22.	संघीय परिषद्	126—132
23.	संघीय न्यायपालिका	133—136
24.	स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र	137—145
25.	जापान का संविधान	146—150
26.	सम्राट का पद	151—153
27.	प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद्	154—159
28.	डायट (संसद)	160—165
29.	नागरिकों के अधिकार एवं कर्त्तव्य	166—169
30.	साम्यवादी चीन का संविधान	170—179
31.	व्यवस्थापिका - राष्ट्रीय जन कांग्रेस	180—184
32.	कार्यपालिका - राष्ट्रपति	185—188
33.	न्यायपालिका	189—194
34.	लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण	195—196
35.	साम्यवादी दल	197—201

*** ** ***

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun